हिंदी साहित्य का रीतिकाल और आधुनिक काल

Edited By

Dr. Vinod Kumar

Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम

(SYLLABUS)

हिंदी साहित्य का रीतिकाल और आधुनिक काल

उद्देश्य

- छात्रों में साहित्य समझने, उसका आस्वादन करने तथा मूल्यांकन करने की दृष्टि को बढ़ाना।
- छात्रों को साहित्य के संदर्भ में विभिन्न साहित्यिक विधाओं के विकास क्रम का परिचय देना।
- छात्रों को युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी से अवगत कराना।

Sr. No.	Content
1	रीतिकाल की प्रमुख प्रवृतियाँ, दरबारी संस्कृति एवं लक्षण ग्रंथों की परम्परा रीतिकालीन काव्य: रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य और उनकी प्रवृतियाँ
2	रीतिकाल के प्रमुख कवि और उनकी काव्यगत प्रवृतियाँ, आधुनिक काल: 1857ई. का स्वाधीनता संग्राम एवं हिन्दी नवजागरण
3	भारतेंद युग के प्रमुख कवि और उनकी काव्यगत प्रवृतियाँ, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनका युग और राष्ट्र काव्यधारा की कविता
4	छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता: स्वरूप और प्रवृतियाँ, हिन्दी गद्य का उदभव और विकास, हिन्दी उपन्यास और कहानी का विकास
5	हिन्दी नाटक, निबंध, आलोचना का विकास, गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ: रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा और रिपोर्ताज का विकास

विषय-सूची

इकाई (Units) **(CONTENTS)** **पृष्ठ संख्या (Page No.)**

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1	रीतिकाल की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त *Hardeep Kaur, Lovely Professional University*	1
2.	रीतिकालीन कवियों का जीवन – प्रमुख कवि एवं उनकी काव्यगत विशेषताएँ *Reeta Singh , Lovely Professional University*	7
3.	आधुनिक काल : 1857 का स्वाधीनता संग्राम एवं हिंदी नवजागरण *Vinod Kumar, Lovely Professional University*	22
4.	भारतेंदु युग : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ *Vinod Kumar, Lovely Professional University*	28
5.	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनका युग : राष्ट्र काव्यधारा एवं समकालीन कविता *Hardeep Kaur, Lovely Professional University*	38
6.	छायावाद तथा उत्तर छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ *Reeta Singh, Lovely Professional University*	45
7.	आधुनिक काल (गद्य साहित्य) : हिंदी गद्य का उद्भव एवं विकास *Vinod Kumar, Lovely Professional University*	80
8.	हिंदी उपन्यास : विकास के प्रमुख चरण, हिंदी कहानी का विकास *Hardeep Kaur, Lovely Professional University*	86
9.	हिंदी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार *Hardeep Kaur, Lovely Professional University*	108
10.	हिंदी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार *Reeta Singh, Lovely Professional University*	121
11.	हिंदी आलोचना का विकास एवं प्रमुख आलोचक *Reeta Singh, Lovely Professional University*	134
12.	गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ – रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण का विकास *Vinod Kumar, Lovely Professional University*	158
13.	आत्मकथा एवं रिपोर्ताज का विकास *Reeta Singh, Lovely Professional University*	180
14.	साक्षात्कार एवं फीचर लेखन का विकास *Hardeep Kaur, Lovely Professional University*	192
15	स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य का विकास *Vinod Kumar, Lovely Professional University*	205
16.	आधुनिक युग का गद्य साहित्य *Reeta Singh, Lovely Professional University*	233

नोट

इकाई–1 : रीतिकाल की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ–रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
1.1 रीतिकाल की विविध काव्यधाराएँ
1.1.1 रीतिबद्ध काव्य
1.1.2 रीतिसिद्ध काव्य
1.1.3 रीतिमुक्त काव्य
1.2 सारांश (Summary)
1.3 शब्दकोश (Keywords)
1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रीतिकाल की विविध काव्य धाराएँ जानने में।
- रीतिबद्ध कवियों का उद्देश्य जानने में।
- रीतिसिद्ध काव्य तथा रीतिमुक्त काव्य धाराएँ समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

रीतिकाल काव्य की विविध काव्य धाराएँ हैं, इनको मूलत: तीन वर्गों में विभक्त किया है। यह तीन धाराएँ हैं–रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य। रीतिकाल के कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की। रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं–बिहारी। बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति की जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णत: मुक्त हैं–रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं।

1.1 रीतिकाल की विविध काव्य धाराएँ

रीतिकालीन काव्य को मूलत: तीन वर्गों में विभक्त किया गया है जिन्हें रीतिकाल की धाराएँ भी कहा जा सकता है। ये तीन धाराएँ हैं–

नोट

1. रीतिबद्ध काव्य
2. रीतिसिद्ध काव्य
3. रीतिमुक्त काव्य

यहाँ इन तीनों का परिचय देना आवश्यक है–

1.1.1 रीतिबद्ध काव्य

रीतिकाल के वे कवि जिन्होंने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की, रीतिबद्ध कवि कहलाए। राजाश्रय में रहकर रचना करने वाले ऐसे सैकड़ों कवि रीतिकाल में हुए जिन्होंने आचार्य बनने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की, भले ही उनका रीति निरूपण एकांगी, अधकचरा एवं अधूरा ही क्यों न रहा हो। इसीलिए ऐसे कवियों के रीति ग्रंथों पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है–"इन रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना।"

रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय देना था अत: वे लक्षणों पर उतना ध्यान नहीं देते जितना उदाहरणों पर। यही कारण है कि इनके द्वारा किए गए काव्यांगों के लक्षण अपर्याप्त एवं असंगत हैं।

ऐसे प्रमुख कवि एवं उनके ग्रंथों के नाम हैं–**चिंतामणि** (काव्य विवेक), **मतिराम** (ललित ललाम, अलंकार पंचाशिका), **भूषण** (शिवराज भूषण), **देव** (भाव-विलास, काव्य रसायन), **भिखारीदास** (काव्य निर्णय), **पद्माकर** (जगद्विनोद), आदि।

इन सभी कवियों के द्वारा किया गया रीति निरूपण एकांगी, अधूरा एवं अपरिपक्व है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन कवियों के आचार्यत्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"हिंदी में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे।"

वस्तुत: इन कवियों ने सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र का सामान्य ज्ञान कराने के उद्देश्य से रीति ग्रंथ लिखे जिनमें मौलिकता का नितांत अभाव है, क्योंकि ये सारे ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र को उपजीव्य बनाकर लिखे गए। न तो इन्होंने कोई मौलिक उद्भावना की और न इनसे काव्यशास्त्र का कोई उल्लेखनीय विकास हुआ। शृंगार रस निरूपक कवियों में मतिराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शृंगार रस का विस्तृत विवेचन एवं उसके विभिन्न अंगोपांगों का वर्णन इन्होंने किया है।

हिंदी रीति ग्रंथों में अलंकार विवेचन को सर्वाधिक स्थान मिला। अधिकांश कवियों ने अलंकार निरूपक ग्रंथ संस्कृत **आचार्य जयदेव** के **'चंद्रालोक'** और **अप्पय दीक्षित** के **'कुवलयानंद'** का आधार ग्रहण कर लिखे। इनके द्वारा दिए गए लक्षण भले ही भ्रामक हों, किंतु उदाहरण अत्यंत सरस बन पड़े हैं। कुछ कवियों ने छंद एवं नायिका भेद का विवेचन भी रीति ग्रंथों में किया है।

टास्क रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य क्या था? वर्णन कीजिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी में काव्य शास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रंथकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगों की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. रीतिकालीन काव्य की तीन धाराएँ हैं– रीतिबद्ध काव्य, ... और रीतिमुक्त काव्य।
2. रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य अपनी .... का परिचय देना था।
3. कुछ कवियों ने छंद एवं नायिका भेद का विवेचन भी .... में किया है।

1.1.2 रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग में उन कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने यद्यपि कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा, तथापि रीति की उन्हें जानकारी थी जिसका उपयोग करते हुए उन्होंने अपने काव्य ग्रंथों की रचना की। ये 'रीति' में पारंगत या सिद्ध कवि थे, इसीलिए इन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया। इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं–बिहारी।

बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति का जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। जब तक किसी को काव्यांगों की तथा नायिक भेद, आदि की जानकारी नहीं होगी। तब तक वह बिहारी सतसई के दोहों का अर्थ नहीं कर पाएगा। उदाहरण के लिए निम्न दोहे को ले सकते हैं–

कत लपटैयतु मो गेर सोनजुही निसि सैन।
जिहि चंपक बरनी किए मुल्लाला रंग नैन।।

इस दोहे का अर्थ तब तक समझ में नहीं आ सकता जब तक व्यक्ति को 'खंडिता' नायिका की जानकारी न हो। खंडिता नायिका उस नायिका को कहा जा सकता है जिसका पति किसी अन्य स्त्री के साथ रात बिताकर प्रातः काल रमण के चिह्नों से युक्त होकर घर पहुँचता है और अपनी करनी को छिपाने का प्रयास करता है। ऐसी ही खंडिता का यह कथन अपने पति से है–"आपके द्वारा मेरे गले से क्यों लिपटा जा रहा है? मैं वह नहीं हूँ जो रात्रि को शयन करते समय आपके साथ थी और जिस चंपकवर्णी ने आपको रात भर जगाकर आपके नेत्रों को मुल्लाला के फूल की भाँति लाल कर दिया है।"

इस दोहे में मुद्रा अलंकार का प्रयोग भी किया गया है, क्योंकि उपर्युक्त अर्थ के साथ-साथ इसमें विभिन्न पुष्पों के नाम भी दिए गए हैं।

क्या आप जानते हैं बिहारी सतसई श्रृंगार रस प्रधान एक ऐसा ही रीतिसिद्ध काव्य ग्रंथ है जिसमें भावों, अनुभावों, हावों, आदि के उदाहरण खोजे जा सकते हैं साथ ही विविध अलंकार एवं नायिका भेद के उदाहरण भी बिहारी सतसई में उपलब्ध होते हैं।

हाव-अनुभाव योजना की दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक उल्लेखनीय कृति है। भाषा की समास शक्ति एवं कल्पना की समाहार शक्ति के बल पर ही बिहारी दोहे जैसे छोटे छंद में इतने भावों का समावेश कर सके हैं। इसीलिए उनके विषय में कहा गया है कि **उन्होंने गागर में सागर भर दिया है।** भक्ति, नीति, प्रकृति, आदि का चित्रण भी बिहारी सतसई में प्रचुरता से हुआ है। मूलतः बिहारी सतसई श्रृंगार रस का ग्रंथ है। नायक-नायिका किस प्रकार गुरुजनों से भरे सभा भवन में नेत्रों के माध्यम से वार्तालाप कर लेते हैं इसका चित्रण उन्होंने निम्न दोहे में किया है–

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब बात।।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. .... कवियों के वर्ग में उन कवियों को लिया जा सकता है जिन्होंने यद्यपि कोई रीति ग्रंथ नहीं लिखा।

   (क) रीतिबद्ध (ख) रीतिसिद्ध

   (ग) रीतिमुक्त (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

5. बिहारी किस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं?

   (क) रीतिमुक्त (ख) रीतिसिद्ध

   (ग) रीतिमुक्त काव्य (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

6. किसके विषय में कहा गया है कि उन्होंने गागर में सागर भर दिया?

   (क) लाल कवि (ख) सूदन

   (ग) सबलसिंह चौहान (घ) बिहारी

1.1.3 रीतिमुक्त काव्य

रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णत: मुक्त हैं–रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं। इन्होंने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न रीति की जानकारी का उपयोग अपने काव्य में किया, अपितु इन कवियों ने हृदय की स्वतंत्र वृत्तियों को काव्य निबद्ध किया। रीति के बंधन से मुक्त होने के कारण ही इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। इन कवियों में प्रमुख हैं–घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर।

रीतिमुक्त कवियों को पुन: अनेक वर्गों में विभक्त किया गया है। यथा–

1. रीतिमुक्त शृंगारी कवि
2. रीतिमुक्त प्रबंधकार
3. रीतिमुक्त सूक्तिकार
4. रीतिमुक्त पद्यकार
5. रीतिमुक्त फुटकल कवि

रीतिमुक्त शृंगारी कवियों में स्वच्छंद प्रेम का चित्रण करने वाले कवि घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर के नाम लिए जा सकते हैं। रीतिमुक्त प्रबंधकारों में लाल कवि (छत्र प्रकाश), सूदन (सुजान चरित), सबलसिंह चौहान (महाभारत) को रखा जाता है जबकि रीतिमुक्त सूक्तिकारों में वृंद, गिरधरदास, घाघ, बेताल जैसे कवि हैं।

रीतिमुक्त कवियों में सर्वप्रमुख हैं घनानंद। इनके काव्य में प्रेम का अत्यंत एवं उदात्त एवं वासना रहित स्वरूप उपलब्ध होता है। सुजान प्रेमी घनानंद ने प्रेममार्ग की सरलता एवं अकृत्रिमता का उल्लेख करते हुए लिखा है–

अति सूधो सनेह को मारग है जहं नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ साचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।

घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

प्रणय विभोर मन की ऐसी कोई वृत्ति नहीं है जिसका चित्रण घनानंद ने न किया हो। इनके प्रेम चित्रण में विरह की प्रधानता परिलक्षित होती है। उनकी विरह वेदना स्वानुभूत एवं अकृत्रिम है इसीलिए वह अत्यंत मार्मिक, हृदयद्रावक एवं चित्ताकर्षक बन पड़ी है। रीतिमुक्त धारा के ये कवि प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। इनका सौंदर्य

नोट

चित्रण स्थूल एवं मांसल न होकर सूक्ष्म एवं चित्ताकर्षक है। यथा–

लट लोल कपोल कलोल करै कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग-अंग तरंग उठै द्युति की परिहै मनौ रूपु अबै धरि च्वै।।

प्रेम निरूपण में रीतिकाल के अन्य कवियों ने जहाँ शास्त्रीय परंपरा का आधार ग्रहण किया वहीं इन्होंने शास्त्रीय परंपरा का त्याग किया। इनके काव्य में प्रकृति की ही मनोहारी छटा अंकित की गई है। प्रकृति चित्रण प्राय: उद्दीपन रूप में हुआ है, यथा–

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।

रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. रीति के बंधन से मुक्त होने के कारण ही रीतिकाल के कवियों को सिद्ध कवि कहा गया है।
8. रीतिमुक्त कवियों में प्रमुख हैं बोधा।
9. रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है।

1.2 सारांश (Summary)

- हिंदी में काव्य शास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रंथकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगों की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।
- हाव-अनुभाव योजना की दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक उल्लेखनीय कृति है। भाषा की समास शक्ति एवं कल्पना की समाहार शक्ति के बल पर ही बिहारी दोहे जैसे छोटे छंद में इतने भावों का समावेश कर सके हैं। इसीलिए उनके विषय में कहा गया है कि **उन्होंने गागर में सागर भर दिया है।** भक्ति, नीति, प्रकृति, आदि का चित्रण भी बिहारी सतसई में प्रचुरता से हुआ है। मूलत: बिहारी सतसई शृंगार रस का ग्रंथ है।
- रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है।

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **महत्त्वपूर्ण**–उपयोगी, विशेष
2. **वार्तालाप**–बातचीत करना
3. **प्रकृति**–स्वभाव, गुण, प्रकार

1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. रीतिबद्ध काव्य का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. रीतिबद्ध काव्य रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्य से किस प्रकार भिन्न है? उल्लेख कीजिए।
3. रीतिमुक्त काव्य तथा इसके प्रमुख कवियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. रीतिसिद्ध काव्य	2. काव्य प्रतिभा	3. रीति ग्रंथों
4. (क)	5. (ख)	6. (ग)
7. सत्य	8. असत्य	9. सत्य

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास–*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*

नोट

इकाई–2 : रीतिकालीन कवियों का जीवन–प्रमुख कवि एवं उनकी काव्यगत विशेषताएँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
2.1 रीतिकाल के प्रमुख कवि एवं उनकी काव्यगत विशेषताएँ
2.1.1 केशवदास
2.1.2 मतिराम
2.1.3 भूषण
2.1.4 बिहारीलाल
2.1.5 देव
2.1.6 घनानंद
2.1.7 पद्माकर
2.2 सारांश (Summary)
2.3 शब्दकोश (Keywords)
2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रीतिकाल के प्रमुख कवियों के विषय में जानने में।
- रीतिकाल के कवियों की काव्यगत विशेषताएँ समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

रीतिकाल के कवियों में पद्माकर का नाम आदर से लिया जाता है। बिहारी के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रीतिकाल के हैं। रीतिकाल के अन्य कवियों ने लोकजीवन की उपेक्षा की है। दरबारी वातावरण, शृंगारप्रियता एवं रसिकता के कारण उन्हें साधारण जनता के दुख-दर्द की न तो अनुभूति थी और न ही जनता से उनका कोई जुड़ाव था, इसलिए रीतिकाल में लोकजीवन उपेक्षित रहा है। त्यौहारों का कुछ चित्रण अवश्य पदमाकर जैसे कवियों ने किया।

2.1 रीतिकाल के प्रमुख कवि एवं उनकी काव्यगत विशेषताएँ

नोट

2.1.1 केशवदास (1560–1617 ई.)

आचार्य केशवदास को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने समय-विभाग की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल में स्थान दिया है तथापि प्रवृत्ति की दृष्टि से वे रीतिकाल के अंतर्गत आते हैं। वस्तुत: केशव से हिंदी की रीति परंपरा प्रारंभ होती है। वे हिंदी के प्रमुख अलंकारवादी आचार्य माने जाते हैं।

केशव का जन्म 1560 ई. और मृत्यु 1617 ई. में हुई। ये ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इंद्रजीत सिंह के आश्रय में रहते थे। केशव को अलंकारवादी इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे अलंकारहीन कविता को सुंदर ही नहीं मानते–

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिंदु न विराजई कविता बनिता मित्त।।

आचार्य केशवदास के लिखे नौ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं–

रचना का नाम	**रचनाकाल**
1. रसिकप्रिया	1591 ई.
2. रामचंद्रिका	1601 ई.
3. कविप्रिया	1601 ई.
4. रतन बावनी	1607 ई.
5. वीरसिंह देव चरित	1607 ई.
6. विज्ञानगीता	1607 ई.
7. जहाँगीर जसचंद्रिका	1612 ई.
8. नख-शिख	–
9. छंदमाला	–

इनमें **रसिकप्रिया, कविप्रिया** और **छंदमाला**–रीतिपरक ग्रंथ हैं। रसिकप्रिया 16 प्रकाशों में विभक्त लक्षण ग्रंथ जिसका मूल प्रतिपाद्य शृंगार विवेचन है। इस ग्रंथ के **13 प्रकाशों** में तो शृंगार चर्चा है तथा शेष तीन प्रकाशों में अन्य रसों, वृत्तियों एवं काव्य दोषों का विवेचन है।

कविप्रिया की रचना केशव ने अपने आश्रयदाता राजा इंद्रजीत सिंह की राजनर्तकी **'राय प्रवीन'** को काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से की थी। अलंकार निरूपण के साथ-साथ इसमें काव्य रीति, काव्य दोष आदि का भी विशद विवेचन है। केशव के आचार्यत्व एवं कवित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति इसी ग्रंथ में हुई है।

छंदमाला में कवि ने 77 छंदों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए है। **'रामचंद्रिका'** के केशवदास द्वारा रामकथा पर लिखा गया उत्कृष्ट महाकाव्य है जबकि **विज्ञानगीता** एक **आध्यात्मिक ग्रंथ** है जिसमें कवि के दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्ति मिली है।

केशव ने अलंकार विवेचन **'दंडी'** के **काव्यादर्श** तथा **केशव मिश्र** द्वारा रचित **'अलंकार शेखर'** नामक संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया है। केशव द्वारा किया गया अलंकार विवेचन यद्यपि सूक्ष्म एवं व्यापक है। तथापि कुछ अलंकारों के लक्षण अस्पष्ट हैं तथा लक्षण और उदाहरण में असंगति मिलती है।

केशव की कविता में अलंकरण, चमत्कार प्रदर्शन एवं पांडित्य प्रदर्शन की प्रमुखता है। उनकी कविता में क्लिष्टता आ गई है जिसके कारण उन्हें **'कठिन काव्य का प्रेत'** कहा जाता है। उनकी कविता की क्लिष्टता के विषय में यह उक्ति प्राय: कही जाती है।

कवि कों देन न चहै विदाई। पूछे केशव की कविताई।।

नोट

आचार्य शुक्ल ने उनके संबंध में कहा है–''केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। कवि कर्म में सफलता के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था। केशव केवल उक्ति वैचित्र्य एवं शब्द क्रीड़ा के प्रेमी थे।''

केशव की कविता में प्रबंध रचना के गुण भी नहीं थे। शुक्ल जी ने प्रबंध काव्य के लिए तीन बातें अनिवार्य मानी हैं–1. संबंध निर्वाह, 2. कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान और 3. दृश्यों की स्थान गत विशेषता। केशव में इन तीनों का अभाव है। **प्रबंध रचना के योग्य न तो केशव में शक्ति थी और न अनुभूति–**ऐसा निष्कर्ष शुक्ल जी का है।

रामचंद्रिका से केशव को सर्वाधिक सफलता मिली है, संवाद योजना में। संवादों में पात्रानुकूल क्रोध, उत्साह आदि की सुंदर व्यंजना है। **केशव की रचनाओं में सूर, तुलसी जैसी सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।**

केशव की रचना से कुछ प्रसिद्ध **पंक्तियाँ** यहाँ प्रस्तुत हैं–

1. *मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।*
   होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय।।
   दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिलगति सरितन ही में।
   श्री फल कौ अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में।।

2. *कौन के सुत, बालि के, वह कौन बालि, न जानिए।*
   काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखनिये।।

3. *सिंधु तर्‌यो उनको बनरा,*
   तुमपै धनुरेख गई न तरी।
   बानर बाँधत सा न बंध्यो उन,
   वारिधि बांधि के बाटकरी।

   अजहूं रघुनाथ प्रताप की बात,
   तुम्हें दसकंठ न जानि परी।
   तेलनि तूलनि पूंछ जरी न,
   जरी जरी लंक जराइ जरी।।

4. *कै स्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।*
   यह ललित लाल कैंधो लसत दिगभामिनि के भाल को।।

5. *तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक हीन।*
   जलजहार सोभित न जहं प्रगट पयोधर पीन।।

6. *विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस*
   विविध विवुधयुत मेरु सो अचल है।
   दीपति दिपति अति सातों दीप दीपियतु,
   दूसरो दिलीप सा सुदक्षिणा को बलु है।

2.1.2 मतिराम (1604–1701 ई.)

मतिराम रीतिकाल के प्रमुख कवियों में हैं तथा प्रसिद्ध कवि भूषण और चिंतामणि के भाई कहे जाते हैं। डॉ. नगेंद्र ने इनका जन्म 1604 ई. के आसपास माना है। इनके पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था तथा ये सम्राट जहाँगीर, बूँदी नरेश राव भावसिंह हाड़ा, कुमायूँ नरेश ज्ञानचंद तथा बुंदेलखण्ड के स्वरूप सिंह बुंदेला के आश्रय में रहे थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं–

1. फूलमंजरी	रचनाकाल 1619 ई., जहाँगीर के आश्रय में लिखी गई
2. ललित ललाम	रचनाकाल 1661–64 ई., भावसिंह के आश्रय में

नोट

3. सतसई	रचनाकाल 1681 ई., भोगनाथ के आश्रय में
4. अलंकार पंचाशिका	रचनाकाल 1690 ई., ज्ञानचंद के आश्रय में
5. वृत्तकौमुदी	रचनाकाल 1701 ई., स्वरूप सिंह बुंदेला के आश्रय में
6. रसराज	रचनाकाल 1633-43 ई., स्वतंत्र रूप से लिखा गया।
7. लक्षणशृंगार	उपलब्ध नहीं है।
8. साहित्यसार	उपलब्ध नहीं है।

रीतिग्रंथों की दृष्टि से इनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं–रसराज और ललित ललाम। आचार्य शुक्ल के अनुसार–''रस और अलंकार की शिक्षा में इनका उपयोग बराबर चलता आया है।''

'रसराज' में शृंगार रस एवं नायिका भेद का विवेचन **'भानुदत्त की 'रसमंजरी'** और **'रहीम' के बरवै नायिका भेद'** के आधार पर किया गया है। पहले दोहे में लक्षण देकर फिर कवित्त और सवैये में सरस उदाहरण दिए गए हैं। इनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है–''रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में पद्माकर को छोड़ और किसी कवि में मतिराम की सी चलती भाषा और सरल व्यंजना नहीं मिलती। उनकी भाषा में नाद सौंदर्य भी विद्यमान है।''

मतिराम की कविता में न तो भावों की कृत्रिमता है और न भाषा की। भाषा शब्दाडम्बरों से पूरी तरह मुक्त है। केवल आनुप्रासिकता के लिए अशक्त शब्दों की भरती इन्होंने नहीं की। दूर की कौड़ी लाने के फेर में भी वे नहीं पड़े इसलिए उन्होंने नायिका के विरहताप का वैसा वर्णन नहीं किया जैसा बिहारी ने करके उसे मजाक की हद तक पहुँचा दिया।

'रसराज' और **'ललित ललाम'** अपने विषय के अनुपम ग्रंथ हैं **'ललित ललाम'** में अलंकारों के उदाहरण बहुत सरस एवं स्पष्ट हैं। मतिराम सतसई के दोहे भी बिहारी सतसई की टक्कर के हैं।

उनके दोहों को लोग भ्रमवश बिहारी का दोहा समझ बैठते हैं, क्योंकि ये बिहारी सतसई के दोहों से किसी भांति कम नहीं आंके जा सकते।

मतिराम के दो सवैये यहाँ प्रस्तुत हैं–

1. *कुंदन को रंग फीको लगै,*
   झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
   आँखिन में अलसानि चितौन में,
   मंजु विलासनि की सरसाई।।
   को बिनु मोल बिकात नहीं,
   मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
   ज्यौं-ज्यौं निहारिए नेरे ह्वै नैननि,
   त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई।।
2. *केलि कें राति अघाने नहीं,*
   दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
   'प्यास लगी, कोउ पानी दै जाइयो,
   भीतर बैठि कें बात सुनाई।।
   जेठी पठाई गई दुलही, हंसि,
   हेरि हरैं मतिराम बुलाई।
   कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं,
   सुगेह की देहरि पै धरि आई।।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. केशव द्वारा किया गया अलंकार विवेचन यद्यपि .... एवं .... है।
2. केशव केवल उक्ति वैचित्र्य एवं .... के प्रेमी थे।
3. मतिराम सतसई के .... भी बिहारी सतसई की टक्कर के हैं।

2.1.3 भूषण (1613-1715 ई.)

भूषण छत्रपति शिवाजी और पन्ना के राजा छत्रसाल बुंदेला के आश्रय में रहने वाले ऐसे रीतिकालीन कवि हैं जिन्होंने वीररस की कविताएँ लिखकर अपूर्व ख्याति अर्जित की। चित्रकूट के राजा रुद्रसाह सोलंकी ने इन्हें **'भूषण'** की **उपाधि दी थी** और वे इस नाम से इतने प्रसिद्ध हुए कि इनका वास्तविक नाम ही किसी को नहीं पता। इनका जन्मकाल 1613 ई. माना गया है। भूषण के विषय में कहा जाता है कि इनकी पालकी में स्वयं महाराज छत्रसाल ने अपना कंधा लगाया था।

भूषण ने जिन दो नायकों को अपने वीरकाव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन में तत्पर, हिंदू धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर महाराज शिवाजी एवं छत्रसाल बुंदेला थे। अत: उनके द्वारा वर्णित प्रशस्तियाँ रीतिकाल के अन्य कवियों जैसी झूठी खुशामद नहीं थी, अपितु भूषण के उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति बन गए। आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है। वे हिंदू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं।''

भूषण ने **शिवराज भूषण** और **शिवा बावनी** की रचना महाराज शिवाजी के आश्रय में रहकर की। इनमें से शिवराज भूषण **अलंकार ग्रंथ** है, जिसमें 105 अलंकारों के लक्षण और उदाहरण **जयदेव** कृत **'चंद्रालोक'** के आधार पर दिए गए हैं। अलंकारों के लक्षण दोहों में तथा उदाहरण कवित्त-सवैयों में हैं। उदाहरण कहीं-कहीं लक्षण के अनुरूप नहीं हैं। **छत्रसाल दशक** में महाराज **छत्रसाल** की वीरता का वर्णन है तो **शिवा बावनी में शिवाजी** का बखान है।

अब तक भूषण के लिखे उक्त तीन ग्रंथ ही उपलब्ध हुए हैं। कुछ लोग इनके लिखे तीन और ग्रंथों का उल्लेख करते हैं, जिनके नाम हैं–**भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हजारा।** भूषण की ख्याति आचार्य के रूप में उतनी नहीं है जितनी वीररस के कवि के रूप में है। युगधर्म के अनुरूप उन्होंने अलंकार विषयक ग्रंथ अवश्य लिखा तथापि मूलत: वे ओजस्वी कवि ही हैं। उनकी भाषा ओजपूर्ण तो है, किंतु वह अव्यवस्थित है। उनकी कविता में राष्ट्रीयता विद्यमान है। वे भारतीय संस्कृति के रक्षकों की प्रशंसा में छंद लिखने वाले कवि के रूप में समग्र हिंदू जनता के द्वारा सराहे गए कवि हैं।

भूषण की कविता के उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. *इंद्र जिमि जृंभ पर वाड़व सुअंभ पर*
   रावन सदंभ पर रघुकुलराज हैं।
   पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
   ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
   दावा द्रुमदंड पर चीता मृगझुंड पर,
   भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
   तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर
   त्यों म्लेच्छ वंस पर सेर सिवराज हैं।
2. *मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,*
   खोटी भई संपत्ति चकत्ता के घराने की।।

नोट

3. *ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन बारी,*
   ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
   भूषण भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
   नगन जड़ातीं तीं वे नगन जड़ाती हैं।।
4. *दारा की न दौर यह रार नहिं खजुए की,*
   बांधिबो नहीं है कैंधो मीर सहबाल को।
   बूढ़ति है दिल्ली सो संभारै क्यों न दिल्लीपति
   धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को।।

2.1.4 बिहारीलाल (1595-1663 ई.)

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिनका जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में हुआ था। बिहारी के एकमात्र ग्रंथ का नाम 'बिहारी सतसई' है जिसकी रचना सन् 1662 ई. में संपन्न हुई। बिहारी का देहावसान 1663 ई. में हुआ। बिहारी ने यद्यपि कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्हें रीतिशास्त्र की अच्छी जानकारी थी जिसका उपयोग उन्होंने अपनी सतसई में किया है।

बिहारी की ख्याति का मूल आधार उनका अन्यतम ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** है जिसमें कुल मिलाकर 713 दोहे हैं। इस ग्रंथ का निर्माण **'गाथा सप्तशती', 'अमरुक शतक', 'आर्या सप्तशती'** की प्रेरणा से हुआ है। बिहारी जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि जिस समय बिहारी जयपुर में पहुँचे उस समय महाराज जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि राजकाज भूलकर महल से बाहर तक न निकलते थे। तब बिहारी ने यह दोहा लिखकर उनके पास भिजवा दिया–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं विंध्यौ आगे कौन हवाल।।

दोहे में निहित व्यंग्यार्थ को समझकर राजा जयसिंह तुरंत बाहर निकल आए और राजकाज में संलग्न हो गए। तब से बिहारी का मान बहुत बढ़ गया। राजा ने उन्हें ऐसे ही सरस दोहे बनाने का निर्देश दिया तथा प्रत्येक दोहे के बदले उन्हें एक अशर्फी (स्वर्ण मुद्रा) दी जाने लगी।

'बिहारी सतसई' मूलत: शृंगार रस से ओतप्रोत मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक दोहा हिंदी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है। बिहारी सतसई की **पचासों टीकाएँ** लिखी गईं जिनमें से चार-पाँच टीकाएँ अति प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं–

1. कृष्ण कवि की टीका जो कवित्तों में है।
2. हरिप्रकाश टीका
3. लल्लूजी लाल की लालचंद्रिका
4. सरदार कवि की टीका
5. सुरति मिश्र की टीका

इनके अतिरिक्त **'बिहारी'** नामक ग्रंथ में **पंडित अम्बिकादत्त व्यास** ने बिहारी के दोहों का भाव पल्लवन रोला छंद में किया है। पंडित परमानंद ने **'शृंगार सप्तशती'** नाम से बिहारी के दोहों का अनुवाद संस्कृत में किया है। मुंशी देवी प्रसाद ने बिहारी के दोहों का अनुवाद उर्दू के शेरों में किया है। **'बिहारी सतसई'** का पाठानुसंधान एवं संपादन ब्रजभाषा मर्मज्ञ बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने **'बिहारी रत्नाकर'** नाम से किया है।

मुक्तक कविता में जो गुण होने चाहिए, वे सभी बिहारी सतसई में उपलब्ध होते हैं। ''मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, अपितु इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं कि हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना गुलदस्ता है।'' आचार्य शुक्ल ने यह कहकर मुक्तक काव्य की कसौटी का निर्धारण कर दिया है तथा बिहारी सतसई इस कसौटी पर पूर्णत: खरी उतरती है। वे आगे पुन: कहते हैं–'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति

नोट

जितनी ही अधिक होगी उतना ही यह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप से विद्यमान थी।'

बिहारी सतसई के दोहों की प्रशंसा करते हुए किसी ने कहा है–

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर।।

बिहारी की रस व्यंजना का पूर्ण वैभव उनकी हाव-अनुभाव योजना में दिखाई पड़ता है। अनुभावों और हावों की ऐसी सुंदर योजना कोई अन्य शृंगारी कवि नहीं कर सका है। कुछ दोहे उल्लेखनीय हैं–

1. *बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।*
   सौंह करै भौंहनु हंसै कहै नटि जाइ।।
2. *त्रिबली नाभि दिखाइ कर सिर ढकि सकुचि समाहि।*
   गली अली की ओट कै चली भली विधि चाहि।।
3. *नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह।*
   कांटे सी कसकै हिए गड़ी कंटीली भौंह।।
4. *ललन चलन सुनि पलन में अंसुआ झलकै आइ।*
   भई लखाई न सखिन्ह हू झूठे ही जमुहाइ।।

बिहारी की कविता में भक्ति और नीति का भी सम्यक् समावेश हुआ है। उनके नीति संबधी कुछ प्रसिद्ध दोहे इस प्रकार हैं–

1. *नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय।*
   जेतो नीचौ ह्वै चलै तेतो ऊँचो होय।।
2. *तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।*
   अन बूड़े-बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग।।
3. *आवत जात न जानियतु तेजहि तजि सियरानु।*
   घरह जंवाई लौं घट्यो खरौ पूस दिनमानु।।

बिहारी की भक्ति भावना में भी उक्ति वैचित्र्य एवं आलंकारित का समावेश है। उन्होंने लगभग 70 दोहे भक्ति के लिखे हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

1. *मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।*
   जा तन की झांई परै स्यामु हरित दुति होय।।
2. *मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल।*
   इहि बानक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल।।
3. *करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल।*
   दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगीलाल।।

बिहारी की अलंकार योजना भी उच्चकोटि की है। असंगति और विरोधाभास अलंकारों की छटा निम्न दोहों में विद्यमान हैं–

1. *दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।*
   परति गाँठि दुरजन हिए दई नई यह रीति।।
2. *या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।*
   ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग त्यों-त्यों उज्जलु होय।।

बिहारी के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्होंने 'गागर में सागर भर दिया है'। कम शब्दों में अधिक भाव व्यक्त कर सकने की क्षमता को गागर में सागर भरना कहा जाता है। बिहारी के दोहों में व्यंजना सौंदर्य भी विद्यमान है यथा–

नोट

स्वारथु सुकृतु न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तूं पच्छीनु न मारि।।

बिहारी के विरह वर्णन में शारीरिक कृशता एवं विरहताप का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण हुआ है। आचार्य शुक्ल के अनुसार यह विरह-वर्णन कहीं-कहीं मजाक तक पहुँच गया है। ऐसे कुछ वर्णन निम्न दोहों में हैं–

1. *औंधाई सीसी सुलखि विरह वरनि विललात।*
   बिच ही सूखि गुलाबु गौ छींटौ छुई न गात।।
2. *इस आवति चलि जात उत चली छ: सातक हाथ।*
   चढ़ी हिंडोरैं सी रहै लगी उसासन साथ।।
3. *आड़े दै आले वसन जाड़े हू की राति।*
   साहस कै कै नेह बस सखी सबै ढिंग जाति।।

बिहारी दूरारूढ़ कल्पना के कवि माने जाते हैं। शुक्लजी के अनुसार बिहारी की कृति का जो मूल्य आंका गया है, उसका कारण उनका शिल्प विधान एवं शब्दों की कारीगरी है, किंतु जो लोग भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर मग्न होना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार था। शब्द और वर्ग उनके दोहों में नगों की भाँति जड़े हैं।

2.1.5 देव (1673–1767 ई.)

कवि देव का पूरा नाम **देवदत्त** था तथा ये इटावा के रहने वाले थे। इनका जन्म 1673 ई. में हुआ था तथा इन्होंने अनेक राजा-रजवाड़ों का आश्रय प्राप्त किया था। इनकी मृत्यु अनुमानत: 1767 ई. के आसपास हुई। देव को कोई अच्छा उदार आश्रयदाता नहीं मिला। जहाँ ये टिककर रहते, परिणामत: ये बराबर अपना आश्रयदाता बदलने को विवश हुए।

देव ने प्रचुर मात्रा में ग्रंथों की रचना की, जिनकी संख्या कुछ लोग 72 बताते हैं, किंतु अभी तक केवल 15 ग्रंथ ही उपलब्ध हुए हैं जिनके नाम हैं–

1. **भाव विलास**–इस ग्रंथ को इन्होंने औरंगजेब के बड़े पुत्र आजमशाह को सुनाया था, जो हिंदी कविता के प्रेमी थे।
2. **अष्टयाम**–यह ग्रंथ अजयशाहू को सुनाया था।
3. **भवानी विलास**–भवानीदत्त वैश्य के नाम पर लिखा गया।
4. **कुशल विलास**–फफूंद रियासत के राजा कुशल सिंह के नाम पर लिखा।
5. **प्रेम चंद्रिका**–राजा उद्योत सिंह वैस के लिए लिखी।
6. **जाति विलास**–भिन्न-भिन्न प्रांतों एवं जातियों की स्त्रियों का वर्णन।
7. **रस विलास**–राजा भोगीलाल के आश्रय में लिखा।
8. **राग रत्नाकर**–संगीत विषयक लक्षण ग्रंथ है।
9. **देवशतक**–अध्यात्म विषयक ग्रंथ है जिसमें जीवन और जगत की असारता का चित्रण है।
10. **देवचरित्र**–कृष्ण के जीवन पर आधारित प्रबंध काव्य है।
11. **शब्द रसायन**–लक्षण ग्रंथ है तथा सर्वांग निरूपक रीति ग्रंथ है।
12. **सुजान विनोद**–सुजानमणि के आश्रय में लिखा।
13. **सुख सागर तरंग**–रस, नायिकाभेद आदि से सम्बद्ध कवित्त, सवैयों का संग्रह।
14. **देवमाया प्रपंच**–प्रबोध चंद्रोदय नामक संस्कृत नाटक का पद्यानुवाद।
15. **प्रेमतरंग**–प्रेम के महात्म्य का वर्णन।

नोट

देव एक समर्थ कवि एवं प्रतिभा संपन्न आचार्य के रूप में समादृत रहे हैं। आचार्यत्व की अपेक्षा देव का कवित्व अधिक सशक्त है। **इनके काव्य का मूल विषय शृंगार रहा है।** इनकी रचनाओं में कल्पना की चारूता और अर्थ वैभव का सुंदर सामंजस्य हुआ है। विषयानुकूल शब्द चयन, आनुप्रासिकता के कारण इनकी अभिव्यंजना शैली भी प्रशंसनीय बन पड़ी है। कहीं-कहीं शब्दों की अनावश्यक तोड़-मरोड़ एवं व्याकरणिक अव्यवस्था के बावजूद उनकी कविता सरस, भावपूर्ण एवं हृदयग्राही बन पड़ी है। देव की कविता का उदाहरण प्रस्तुत है।

धार में धाय धंसी निरधार ह्वै,
जाय फंसी उकसी न उघेरी।
री अगराय गिरी गहरी गहि,
फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी।।

देव कहू अपनो बस ना रस,
लालच लाल चितै भइ चेरी।
बेगि ही बूहि गईं पखियाँ अँखियाँ,
मधु की मखियाँ भईं मेरी।।

देव की भाषा प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा है। 'रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभा संपन्न कवि थे' ऐसा शुक्ल जी का मत है। इनका एक प्रसिद्ध सवैया इस प्रकार है–

सांसन ही में समीर गयो अरु,
आंसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु,
भूमि गई तनु की तनुता करि।।

'देव' जियै मिलिबेई की आसकै,
आसहु पास अकास रहयौ भरि।
जा दिन तैं मुख फेरि हरै हंसि,
हेरि हियेजु लियो हरिजू हरि।।

सवैये का अर्थ यह है कि वियोग में उस नायिका के शरीर को संघटित करने वाले पंचभूत धीरे-धीरे निकलते जा रहे हैं। **'वायु'** दीर्घ विश्वासों के द्वारा निकल गई, **जल** तत्व आँसुओं में बह गया, **तेज** भी न रह गया क्योंकि शरीर कांतिहीन हो गया। **पार्थिव** (पृथ्वी) तत्व के निकल जाने से शरीर क्षीण हो गया, अब तो उसके चारों ओर आकाश ही आकाश रह गया है। अर्थात् चारों ओर शून्य ही दिखाई पड़ रहा है। जिस दिन से श्रीकृष्ण ने उसकी ओर मुँह फेर के देखा है और मंद-मंद हँसकर उसके मन को हर दिया है, उसी दिन से उसकी यह दशा हो गई है।

अब तो जीवन में सर्वत्र शून्य व्याप्त है, ऐसा कहते हुए विरह की जो व्यंजना यहाँ की गई है वह अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है। देव की विरह विषयक ये उक्तियाँ बिहारी की उन उक्तियों से कहीं अधिक सबल एवं सटीक हैं जिनमें विरहिणी के शरीर के पास ले जाने पर गुलाबजल सूख जाता है और उसके विरह ताप से बचने के लिए माघ की रात्रि में गीले वस्त्र पहनकर सखियाँ पास जा पाती हैं। निश्चय ही देव बिहारी से कुछ मामलों में श्रेष्ठ हैं।

देव के रीतिग्रंथों पर मम्मट के काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण, भानुदत्त की रसमंजरी, केशव की रसिकप्रिया और रहीम के 'बरवै नायिका भेद' का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। शब्द शक्ति विवेचन में वे अभिधा को उत्तम मानते हैं तथा तात्पर्य नाम एक चौथी शब्दशक्ति की उद्‌भावना करते हैं। उनके अनुसार–

अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणाहीन।
अधम व्यंजना रस-विरस उलटी कहत नवीन।।

रस क्षेत्र में देव ने 'छल' नामक नवीन संचारी भाव की उद्‌भावना की किंतु आचार्य शुक्ल के अनुसार 'छल' का समाहार 'अवहित्था' नामक संचारी भाव के अंतर्गत हो जाता है। नायिका भेद का विवेचन भी देव ने अत्यंत

सूक्ष्म ढंग से किया है। इस विवेचन पर भानुदत्त की 'रसमंजरी' का प्रभाव साफ झलकता है। अलंकार निरूपण में वे भामह एवं दंडी के ग्रंथों से प्रभावित हैं। देव 'रसवादी' आचार्य थे तथा इसका निर्वाह उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में किया भी है। रीति निरूपण की दृष्टि से कवि देव उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितने कवि के रूप में हैं। उनकी कवित्व शक्ति की तुलना कुछ विद्वानों ने बिहारी से करते हुए हिंदी क्षेत्र में एक विवाद खड़ा कर दिया कि देव बड़े या बिहारी? इस विषय के पक्ष-विपक्ष में अनेक पुस्तकें तक लिखी गईं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. छत्रसाल दशक में महाराज छत्रसाल की वीरता का वर्णन है तो शिवा बावनी में .... का बखान है।

   (क) साहूजी महाराज (ख) महाराणा प्रताप

   (ग) शिवाजी (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

5. बिहारी सतसई की पचासों टीकाएँ लिखी गई जिनमें से .... टीकाएँ अति प्रसिद्ध हैं।

   (क) आठ-दस (ख) चार-पाँच

   (ग) दो-तीन (घ) पाँच-छह

6. अलंकार निरूपण में देन भामह एवं दंडी के .... ग्रंथों से प्रभावित है।

   (क) काव्यों (ख) मुहावरों

   (ग) ग्रंथों (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

2.1.6 घनानंद (1689-1739 ई.)

घनानंद रीतिमुक्त धारा के श्रृंगारी कवि हैं। इनका जन्म 1689 ई. और मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण के समय 1739 ई. में हुई। ये दिल्ली के बादशाह **मुहम्मदशाह** के यहाँ **मीर मुंशी** थे और जाति के कायस्थ थे। ये **'सुजान'** नामक वेश्या से प्रेम करते थे। एक दिन दरबार के कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। जब बादशाह ने इन्हें गाना सुनाने को कहा तो ये टालमटोल करने लगे। तब लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गाएँगे, यदि इनकी प्रेमिका 'सुजान' कहे तब गाएँगे। वेश्या बुलाई गई और तब घनानंद ने उसकी ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके गाना सुनाया। बादशाह इनके गाने पर तो प्रसन्न हुआ किंतु इनकी बेअदबी पर इतना नाराज हुआ कि उसने इन्हें शहर से बाहर निकल जाने का हुक्म दे दिया। जब इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। इस पर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और ये वृंदावन आकर निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गए। नादिरशाह के आक्रमण के समय हुए कत्लेआम में ये मारे गए। लोगों ने नादिरशाह के सैनिकों से कहा कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है उसके पास बहुत-सा माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें जा घेरा और उनसे 'ज़र, ज़र, ज़र', (अर्थात् धन, धन, धन) कहा तो इन्होंने शब्द को उलटकर रज, रज, रज' कहकर तीन मुट्ठी धूल उन पर फेंकी। सैनिकों ने क्रोध से इनका हाथ काट डाला और इनकी मृत्यु हो गई।

घनानंद की कविता में 'सुजान' शब्द का बारंबार प्रयोग हुआ है जो कहीं तो कृष्णवाची है तो कहीं 'सुजान' नामक उस वेश्या के लिए है जो इनकी प्रेयसी थी। घनानंद के लिखे पाँच ग्रंथों का पता चलता है–**1. सुजान सागर, 2. विरहलीला, 3. लोकसार, 4. रसकेलिवल्ली,** और **5. कृपाकांड।** आचार्य शुक्ल के अनुसार, इसके अतिरिक्त इनके कवित्त और सवैयों के फुटकर संग्रह भी मिलते हैं जिनमें 150 से लेकर 400 तक छंद संकलित हैं। डॉ. नगेंद्र के अनुसार, घनानंद के कुछ उपलब्ध कवित्त-सवैयों की संख्या 752 है, पदों की संख्या 1,057 तथा दोहे-चौपाइयों की संख्या 2,354 है।

नोट

घनानंद के विषय में अन्य उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं–

1. प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।
2. भाषा पर जैसा अचूक अधिकार घनानंद का था वैसा और किसी कवि का नहीं।
3. घनानंद उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की लाक्षणिक पदावली की शक्ति से परिचित हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार–"भाषा के लक्षण एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।"
4. घनानंद ने यद्यपि संयोग और वियोग दोनों का चित्रण किया है तथापि इनका वियोग वर्णन अति प्रसिद्ध हैं। घनानंद के वियोग वर्णन अति प्रसिद्ध हैं। घनानंद के वियोग वर्णन में बिहारी की तरह बाहरी ताप की नाप-जोख नहीं है अपितु जो कुछ हलचल है, वह भीतर की है।
5. घनानंद अंतर्वृत्तियों के निरूपक कवि हैं। वियोग में हृदय अंतर्मुखी हो जाता है। विरह वेदना में हृदय की पीड़ा, छटपटाहट एवं कसक कितनी बढ़ जाती है, इसका पता घनानंद के कवित्त सवैयों में प्रमुखता से चलता है।
6. लाक्षणिक मूर्तिकला एवं प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा घनानंद की भाषा में दिखाई पड़ती है, वह बाद में आधुनिक काल की छायावादी कविता में ही उपलब्ध होती है, अन्यत्र नहीं।

घनानंद की कविता के कुछ सरस उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. *अति सूधो सनेह को मारग हैं,*
   जहं नेकु सयानप बांक नहीं।।
   तहां सांचे चले तजि आपुनपौ,
   झिझकें कपटी जो निसाँक नहीं।।
   घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ,
   इत एक तै दूसरों आँक नहीं।।
   तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला,
   मनु लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

2. *परकारज देह कों धारैं फिरौ,*
   परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
   निधि नीर सुधा के समान करौ,
   सबही विधि सुंदरता सरसौ।
   घनआनंद जीवनदायक हौ,
   कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ।।
   कबहूं वा विसासी सुजान के आंगन,
   मो अंसुवान कौं लै बरसौ।।

3. *एरे वीर पौन तेरो सबै ओर गौन वीरी*
   तो सो और कौन मनै ढरकौंही बानि दै।
   जगत के प्रान छोटे-बड़े सौ समान, घन
   आनंद-विधान-सुखदान दुखियानि दै।।
   जान उजियारे गुनभारे अति मोहि प्यारे
   अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
   विरह बिधा की मूरि, आँखिन में राखौं पूरि
   धूरि तिन पांयन की हा-हा नैकु आनि दै।।

घनानंद को स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का कवि इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने रीति की बंधी-बंधाई परिपाटी का अनुकरण न करके हृदय की स्वच्छंद वृत्तियों पर काव्य रचना की।

2 .1.7 पद्माकर (1753-1833 ई.)

रीतिकाल के कवियों में पद्माकर का नाम आदर से लिया जाता है। बिहारी के बाद ये सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रीतिकाल के हैं। इनकी जैसी लोकप्रियता बहुत कम कवियों को प्राप्त होती है। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट एक महान विद्वान एवं कवि थे। **पद्माकर का जन्म बाँदा में 1753 ई.** में हुआ और 80 वर्ष की आयु पाकर 1833 ई. में इनका स्वर्गवास हुआ।

पद्माकर किसी एक स्थान पर टिककर नहीं रह पाए। हिम्मत बहादुर अवध के बादशाह की सेना के बड़े अधिकारी थे। उनकी वीरता पर मुग्ध होकर पद्माकर ने **'हिम्मत बहादुर विरुदावली'** की रचना की। यह वीररस की फड़कती हुई रचना है। सतारा के महाराज रघुनाथ राव (राघोबा) से इन्हें एक हाथी, एक लाख रुपया और दस गाँव प्राप्त हुए थे। तत्पश्चात् पद्माकर जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के यहाँ रहे। उनके पुत्र जगत सिंह के संरक्षण में रहकर पद्माकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **'जगद्विनोद'** की रचना की। यहीं पर इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ **'पद्माभरण'** की रचना की। महाराजा जगतसिंह के स्वर्गवास के बाद ये ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सिंधिया के दरबार में भी रहे। **'हितोपदेश' का भाषा अनुवाद** इन्होंने ग्वालियर में रहकर किया। बाद में ये ग्वालियर से बूँदी गए और वहाँ कुछ काल तक रहने के बाद बाँदा आ गए। अंतिम समय में ये रोगग्रस्त रहते थे। तभी इन्होंने **'प्रबोधपचासा'** की रचना की। अंतिम समय निकट जानकर ये कानपुर में गंगातट पर रहने लगे और वहीं इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **गंगालहरी** की रचना की।

इस प्रकार पद्माकर के लिखे ग्रंथ निम्नवत् हैं–

1. हिम्मत बहादुर विरुदावली – वीर रस प्रधान चरित काव्य
2. प्रताप सिंह विरुदावली – चरित काव्य
3. कलि पच्चीसी – कलियुग का वर्णन
4. जगद्विनोद – श्रृंगार रस का ग्रंथ (रस निरूपक रीतिग्रंथ)
5. पद्माभरण – अलंकार ग्रंथ (लक्षण ग्रंथ)
6. प्रबोध पचासा – वैराग्य निरूपण
7. गंगा लहरी – गंगा माहात्म्य

'जगद्विनोद' में छः प्रकरण और 731 छंद हैं। श्रृंगार रस एवं नायिका भेद का विशद विवेचन किया गया है। काव्यांगों के लक्षण दोहों में हैं तथा उदाहरण कवित्त-सवैयों में हैं। इस ग्रंथ की रचना के लिए आधार सामग्री भानुदत्त की रसमंजरी, केशव की रसिकप्रिया और विश्वनाथ के साहित्यदर्पण से ली गई है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि लक्षण सुबोध हैं तथा उदाहरण सरस हैं।

पद्माकर की गणना अच्छे कवियों में होती है। उनकी रचनाओं में कवित्व का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। मधुर और स्वाभाविक कल्पना, सजीव मूर्ति विधान एवं उपयुक्त शब्द चयन के कारण इनकी कविता का भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों की सशक्त बन पड़े हैं। भाषा की प्रवाहमयता एवं विषय की सरसता के कारण पद्माकर रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाते रहे हैं। इनका होली विषयक एक प्रसिद्ध सवैया निम्न प्रकार है–

फागु की भीर अभीरन में गहि,
गोविंद लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मन की पद्माकर,
ऊपर नाय अबीर की झोरी।।

छीनि पितंबर कम्मर तें सु,
विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।

नैन नचाय कही मुसकाय लला,
फिरि आइयो खेलन होरी।।

पद्माकर की कविता में आनुप्रासिकता के साथ-साथ कोमल भाव तरंग, मधुकल्पना, साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से वे अनुभूति को सशक्त रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. *एहो नंदलाल! ऐसी व्याकुल परी है बाल,*
   हाल ही चलौ तौ चलौ जोरे जुरि जायगी।
   कहैं पद्माकर नहीं तो ये झकोरे लगे,
   औरे लौं अचाका बिनु घोरे घुरि जायगी।
   सीरे उपचारन घनेरे घनसारन सों,
   देखत ही देखौ दामिनी लौं दुरि जायगी।
   तौही लगि चैन जौ लौं चेतिहैं न चंदमुखी,
   चेतैगी कहूं तौ चाँदनी में चुरि जायगी।
2. *मोहि लखि सोवत विथारिगो सुबेनी बनी,*
   तोरिगो हिए को हार छोरिगो सुगैया को।
   कहैं पद्माकर त्यों घोरिगो घनेरो दुख,
   बोरिगो विसासी आज लाज ही की नैया को।।
   अहित अनैसा ऐसो कौन उपहास यातैं,
   सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।
   बूझिहैं चबैया तब कैहौं कहा, दैया!
   इत पारिगो को मैया! मेरी सेज पै कन्हैया को।।

रीतिकाल के कवियों में से कुछ कवि ही ऐसे हैं जिन्होंने लोकजीवन को अपना काव्य विषय बनाया। इस प्रकार के कवि अधिकतर वे हैं जो नीतिकार एवं सूक्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं–वृंद कवि, गिरधर कविराय, दीनदयाल गिरि, वेताल कवि आदि।

वृंद कवि (1704 ई.) में 'वृंद सतसई' नामक नीतिग्रंथ में सात सौ दोहों की रचना की। इनके ये दोहे अत्यंत लोकप्रिय हैं तथा कभी-कभी तो लोग इनके दोहों को बिहारी के दोहे समझ लेते हैं। इनके दो दोहे प्रस्तुत हैं–

फीकौ पै नीकौ लगै, कहिए समय बिचारि।
सबको मन हरषित करै, ज्यों विवाह में गारि।।

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाँहिं।
जानि परत है काग पिक ऋतु वसंत के माहिं।।

बैताल चरखारी (बुंदेलखंड) के राजा प्रतापसिंह (रसिक विक्रम साहि के नाम से प्रसिद्ध) के सभाकवि थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में विक्रम को संबोधित करते हुए नीतिकाव्य की रचना की। उनका एक कवित्त प्रस्तुत हैं–

राजा चंचल होय मुकुल को सर करि लावै।
पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवे।।

हाथी चंचल होय समर में सूँड़ि उठावै।
घोड़ा चंचल होय झपट मैदान दिखावै।।

ये चारों चंचल भले राजा, पंडित, गज, तुरी।
बैताल कहैं विक्रम सुनौ तिरिया चंचल अति बुरी।

खेतीबाड़ी से संबंधित अनेक कहावतें **घाघ** ने कहकर लोकजीवन का चित्रण काव्य में किया है। जीवन के निगूढ़तम रहस्य को व्यावहारिक जीवन में नीति के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

रीतिकाल के नीतिकारों में दीनदयाल गिरि (1802 ई.) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लौकिक विषयों पर लिखी इनकी अन्योक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध रही हैं। इनके ग्रंथ का नाम है–**'अन्योक्ति कल्पद्रुम'**। क्रूर व्यक्ति कोमल नहीं हो सकता इसका उल्लेख उन्होंने निम्न पंक्तियों में किया है–

केतौ सोम कला करौ करौ सुधा को दान।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान।।

बरनै दीन दयाल चंद्र तुम ही चित चेतौ।
कूर न कोमल होहिं कला जौ कीजै केतौ।।

गिरधर कविराय की कुंडलिया भी बहुत प्रसिद्ध है। इनकी एक नीतिपरक कुंडलिया निम्नवत् है–

रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय।
छाँह न बाकी बैठिए जो तरु पतरो होय।।

तो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै।।

कह गिरधर कविराय छाँह मोटे की कहिए।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया मैं रहिए।।

रीतिकाल के अन्य कवियों ने लोकजीवन की उपेक्षा की है। दरबारी वातावरण, शृंगारप्रियता एवं रसिकता के कारण उन्हें साधारण जनता के दुख-दर्द की न तो अनुभूति थी और न ही जनता से उनका कोई जुड़ाव था, इसलिए रीतिकाल में लोकजीवन उपेक्षित ही रहा है। त्यौहारों का कुछ चित्रण अवश्य पद्माकर जैसे कवियों ने किया है। इन्हें तो सर्वज्ञ नायिका की रस भरी चितवन, उन्नत उरोज एवं सुंदर गात ने ही उद्वेलित किया अतः लोकजीवन के सरस चित्रण में इनकी वृत्ति नहीं रम सकी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. भाषा पर जैसा अचूक अधिकार घनानंद का था वैसा और किसी कवि का नहीं।
8. तत्पश्चात् पद्माकर जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के यहाँ नहीं रहे।
9. लौकिक विषयों पर लिखी इनकी अन्योक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध रही हैं।

2.2 सारांश (Summary)

- रामचंद्रिका से केशव को संवाद योजना में सर्वाधिक सफलता मिली है। संवादों में पात्रानुकूल क्रोध, उत्साह आदि की सुंदर व्यंजना है। केशव की रचनाओं में सूर, तुलसी जैसी सरसता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।
- भूषण की ख्याति आचार्य के रूप में उतनी नहीं है जितनी वीररस के कवि के रूप में है। युगधर्म के अनुरूप उन्होंने अलंकार विषयक ग्रंथ अवश्य लिखा तथापि मूलतः वे ओजस्वी कवि ही हैं। उनकी भाषा ओजपूर्ण तो है, किंतु वह अव्यवस्थित है। उनकी कविता में राष्ट्रीयता विद्यमान है। वे भारतीय संस्कृति के रक्षकों की प्रशंसा में छंद लिखने वाले कवि के रूप में समग्र हिंदू जनता के द्वारा सराहे गए कवि हैं।
- बिहारी दूरारूढ़ कल्पना के कवि माने जाते हैं। शुक्लजी के अनुसार बिहारी की कृति का जो मूल्य आंका गया है, उसका कारण उनका शिल्प विधान एवं शब्दों की कारीगरी है, किंतु जो लोग भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर मग्न होना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार था। शब्द और वर्ग उनके दोहों में नगों की भाँति जड़े हैं।

- देव 'रसवादी' आचार्य थे तथा इसका निर्वाह उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में किया भी है। रीति निरूपण की दृष्टि से कवि देव उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितने कवि के रूप में हैं। उनकी कवित्व शक्ति की तुलना कुछ विद्वानों ने बिहारी से करते हुए हिंदी क्षेत्र में एक विवाद खड़ा कर दिया कि देव बड़े या बिहारी? इस विषय के पक्ष-विपक्ष में अनेक पुस्तकें तक लिखी गईं।
- घनानंद को स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का कवि इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने रीति की बंधी-बंधाई परिपाटी का अनुकरण न करके हृदय की स्वच्छंद वृत्तियों पर काव्य रचना की।
- रीतिकाल के अन्य कवियों ने लोकजीवन की उपेक्षा की है। दरबारी वातावरण, शृंगारप्रियता एवं रसिकता के कारण उन्हें साधारण जनता के दुख-दर्द की न तो अनुभूति थी और न ही जनता से उनका कोई जुड़ाव था, इसलिए रीतिकाल में लोकजीवन उपेक्षित ही रहा है।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अव्यवस्थित**—सब कुछ गड़बड़ होना, ठीक ढंग से नहीं होना
2. **उच्चकोटि**—बहुत उत्तम, बहुत बढ़िया
3. **विवाद**—झगड़ा

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. केशवदास और मतिराम की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. भूषण और बिहारीलाल का जीवन परिचय दीजिए।
3. देव और पद्‌माकर के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. सूक्ष्म/व्यापक	2. शब्द क्रीड़ा	3. दोहे
4. (ग)	5. (ख)	6. (ग)
7. सत्य	8. असत्य	9. सत्य

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*

इकाई–3 : आधुनिक काल : 1857 का स्वाधीनता संग्राम एवं हिंदी नवजागरण

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ
  3.1.1 सन् 1857 की क्रांति
  3.1.2 हिंदी नवजागरण की अवधारणा
3.2 सारांश (Summary)
3.3 शब्दकोश (Keywords)
3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी नवजागरण की अवधारणा को समझने में।
- आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल में ऐसी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं जिसने देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को झकझोर दिया। 1849 ई. में सिक्खों को पराजित करने के बाद सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजों का शासन हो गया था। 1857 की क्रांति एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। डलहौजी द्वारा देशी राज्यों का विलय और अवध प्रदेश का अंग्रेजी राज्य में समाहार महत्त्वपूर्ण घटनाएं थी। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। ईसाई धर्म प्रचारक भारतीय धर्म एवं समाज की मान्यताओं की खिल्ली उड़ा रहे थे। वे भारतीय धर्म तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों का मजाक उड़ाकर भारतीयों को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे थे। यही नहीं अपितु आर्थिक लालच देकर भोले-भाले भारतीयों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित भी कर रहे थे। देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद आदि महापुरुषों ने सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से भारतीय जनता को जाग्रत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

नोट

3.1 आधुनिक काल की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

3.1.1 सन् 1857 की क्रांति

1849 ई. में सिक्खों को पराजित करने के बाद संपूर्ण देश पर अंग्रेजों का शासन हो गया था। 1856 ई. में अवध भी अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इससे अंग्रेज मदोन्मत्त हो गए और देशी राजाओं द्वारा एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह करते हुए ध्वस्तप्राय: मुगल साम्राज्य को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया गया।

देशी राज्यों का विलय और अवध प्रदेश का अंग्रेजी राज्य में समाहार लॉर्ड डलहौजी की नीति की ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थीं जिनसे जनता की भावना पर कठोर प्रहार हुआ। जनता, सिपाहियों एवं रजवाड़ों में जो असंतोष व्याप्त था वही 1857 की राज्य क्रांति (विद्रोह) के रूप में सामने आया। इस राज्य क्रांति का पूरे देश पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को झकझोर दिया। अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया तो दूसरी ओर भारतीय जनमानस में भी नवीन चेतना जाग्रत हुई जिसने भारत को सांस्कृतिक रूप से पुन: जाग्रत कर दिया। क्रांति की लपटों ने साहित्य को भी प्रभावित किया और साहित्यकारों में स्वातंत्र्य चेतना, राष्ट्रीय चेतना को काव्य में व्यक्त करने की बलवती इच्छा साफ दिखाई देने लगी। साहित्यकारों द्वारा व्यक्त इन भावनाओं ने जनता में राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध करने में पर्याप्त योगदान दिया।

ईसाई धर्म प्रचारक भारतीय धर्म एवं समाज की मान्यताओं की खिल्ली उड़ा रहे थे। वे भारतीय धर्म तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों का मजाक उड़ाकर हमें नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे थे यही नहीं अपितु आर्थिक लालच देकर भोले-भाले भारतीयों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए लालायित भी कर रहे थे। अत: ऐसे माहौल में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आवश्यकता अनुभव की गई। राजा राममोहनराय, देवेंद्रनाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद आदि महापुरुषों ने सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से भारतीय जनता को जाग्रत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। देश के प्रबुद्धजनों, चिंतकों ने जनता को नई प्रेरणा दी। विधवा विवाह को उचित बताया, बाल विवाह को अनुचित बताया, सती प्रथा पर रोक लगाई गई, देश की उन्नति के लिए अछूतोद्धार का प्रयास किया गया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी की स्थापना की गई।

क्या आप जानते हैं 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी और भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया।

1857 की राज्यक्रांति को भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नाम दिया गया है। मेरठ में मंगल पांडे के नेतृत्व में विद्रोह का बिगुल फूँक दिया गया जिसने अंग्रेजों को यह बता दिया कि अब भारतीयों को बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। कविता में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना, नए विषयों की ओर उन्मुखता दिखाई देने लगी। कविता रीतिकालीन परिवेश से मुक्त होकर नवयुग का द्वार खोलने लगी। अंग्रेजी साम्राज्य में होने वाली भारत की दुर्दशा का चित्रण भी इन शब्दों में होने लगा–

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्यारी।

निश्चय ही 1857 की राज्यक्रांति ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण का बिगुल साहित्य में भी फूँक दिया, ऐसा कहना असंगत न होगा।

नोट्स 1857 की राज्यक्रांति को भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नाम दिया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. जनता, सिपाहियों एवं रजवाड़ो में जो .... व्याप्त था वही 1857 की राज्य क्रांति के रूप में सामने आया।
2. .... भारतीय धर्म एवं समाज की मान्यताओं की खिल्ली उड़ा रहे थे।
3. कविता रीतिकालीन परिवेश से मुक्त होकर .... का द्वार खोलने लगी।

टास्क 1857 की क्रांति से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में समझाइए।

3.1.2 हिंदी नवजागरण की अवधारणा

19वीं शताब्दी में भारतीय समाज संक्रमण के जिस तीव्र दौर से गुजरा, उसे कुछ चिंतक पुनर्जागरण कहते हैं, कुछ पुनरुत्थान तो कुछ अन्य नवजागरण। ये सभी शब्द इतिहास के प्रति विशेष दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। **पुनरुथान** 'पुन:' तथा 'उत्थान' से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य है फिर उठ खड़े होना। जो विचारक अतीत को स्वर्णकाल मानते हैं और वर्तमान से असंतुष्ट होकर अतीत को ही पुनः लौटा लाना चाहते हैं, वे पुनरुत्थानवादी कहलाते हैं। कुछ विचारकों के अनुसार आर्य समाज का नारा 'वेदों की ओर लौटो' ऐसे ही दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है, हालाँकि आर्यसमाजी इसकी भिन्न व्याख्या करते हैं। **पुनर्जागरण** का अर्थ है फिर से जागना। यह शब्द रेनेसाँ (Renaissance) का अनुवाद है। यूरोप में प्राचीन काल श्रेष्ठ था जबकि मध्यकाल अंधकार का समय था। इसलिए यह नारा काफी अर्थपूर्ण था। इसका तात्पर्य है कि हम अतीत में जागे हुए थे, फिर सो गए थे, अब पुनः जागने का समय आ गया है। कुछ लोग भारतीय समाज की व्याख्या इसी शब्द से करते हैं। उनका तर्क है कि प्राचीन काल स्वर्णिम युग था जहाँ दर्शन, साहित्य व विज्ञान का सर्वोच्च विकास हुआ, किंतु इस्लामी आक्रमण के बाद भारतीय समाज पतनोन्मुखी हो गया। अब पुनः जागने का समय आ गया है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' प्रायः इसी भाव को लेकर लिखी गई है। कुछ आधुनिक विचारक भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इन दोनों को ही अपर्याप्त मानते हैं तथा एक भिन्न दृष्टिकोण '**नवजागरण**' का प्रतिपादन करते हैं। इनका अर्थ है—नए तरीके से जागना। इसमें निहित है कि पहले भी हम जागे हुए थे, किंतु अब जागने का दृष्टिकोण बदल गया है। यह व्याख्या मध्यकाल के इतिहास को इस्लाम व हिंदुत्व की टकराहट नहीं मानती और न ही उसे अंधकार या पतन का काल मानती है। डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि चिंतकों ने 19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों की व्याख्या हेतु इसी शब्द को उचित माना है।

नोट्स पुनर्जागरण का अर्थ है फिर से जागना, यह शब्द रेनेसाँ का हिंदी अनुवाद है।

नवजागरण एक विशेष प्रकार के सांस्कृतिक संक्रमण का दौर है जिसमें कोई समाज किसी अन्य संस्कृति से टकरा कर नए दृष्टिकोण से जीने का प्रयास करता है। जिन देशों के पास गौरवमय अतीत है, उनमें अतीत की स्मृतियाँ

नोट

भी नवजागरण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनती हैं। शेष समाजों में अन्य संस्कृतियों से परिचित होना और उनकी तुलना में अपना मूल्यांकन करना नवजागरण का कारण बनता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में कहें तो नवजागरण दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है। इस ऊर्जा के प्रभावस्वरूप दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे की अच्छाइयाँ ग्रहण करना चाहती हैं और अपनी बुराइयाँ छोड़ना चाहती हैं यही संपूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया समाज के इतिहास में नवजागरण कहलाती है।

भारतीय समाज के इतिहास में ऐसे दो जागरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। पहला जागरण मध्यकाल से संबंधित है। जब भारत में इस्लाम का आगमन हुआ। इस्लामी संस्कृति समतामूलक किंतु कट्टर धार्मिक विचारों पर आधारित थी, जबकि भारतीय संस्कृति धार्मिक लचीलेपन किंतु विषमतामूलक सामाजिक संरचना पर आधारित थी। इन दोनों की टकराहट से भक्तिकालीन जागरण हुआ और सामाजिक संस्कृति उद्भूत हुई। संस्कृतियाँ पहले टकराती हैं, फिर तटस्थ होती हैं और अंत में धीरे-धीरे परिचित होकर परस्पर घुल-मिल जाती हैं। घुलने-मिलने का यही स्तर सामाजिक संस्कृति को जन्म देता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. .... में प्राचीन काल श्रेष्ठ जबकि मध्यकाल अंधकार का समय था।

   (क) यूरोप (ख) एशिया

   (ग) अफ्रीका (घ) पूर्वी एशिया

5. .... की 'भारत-भारती' प्राय: इसी भाव को लेकर रखी गई है।

   (क) सूरदास (ख) कबीरदास

   (ग) पद्माकर (घ) मैथिलीशरण गुप्त

6. संस्कृतियाँ पहले टकराती हैं, फिर .... होती हैं और अंत में धीरे-धीरे परिचित होकर घुल-मिल जाती हैं।

   (क) जागृत (ख) तटस्थ

   (ग) निरस्त (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

19वीं शताब्दी का नवजागरण हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा जागरण है जिसमें एक ओर भारतीय सामाजिक संस्कृति है तो दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति। इस समय **भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान** व **मध्यकालीन दौर** से गुजर रही थी जबकि **पाश्चात्य संस्कृति वैज्ञानिक** तथा **मशीनी क्रांति** के आधार पर भौतिकवाद तथा पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व कर रही थी। उसका आध्यात्मिक पक्ष तुलनात्मक रूप से कमज़ोर था। उसके पास वैज्ञानिक तार्किक शिक्षा थी, इहलौकिक मानसिकता थी, समानता, स्वतंत्रता, न्यास व बंधुत्व के आधुनिक आदर्श थे जो तत्कालीन भारतीय समाज के लिए अनर्जित थे। इन दोनों की टकराहट से भारतीय संस्कृति ने आधुनिक शिक्षा व भौतिकता सीखी तो पाश्चात्य संस्कृति यहाँ के अध्यात्म से प्रभावित हुई।

किसी साहित्य में नवजागरण की चेतना कुछ विशेष रूपों में दिखाई पड़ती है। ये इस प्रकार हैं–

1. आत्ममूल्यांकन का भाव नवजागरण का केंद्रीय भाव है क्योंकि दूसरी संस्कृति से परिचित होने पर समाज उसकी तुलना में आत्म-मूल्यांकन करता है। इसके साथ-साथ आत्म-आलोचना तथा आत्मपरिष्कार जैसी मानसिकता भी नवजागरण में अनिवार्यत: पनपती है, क्योंकि अपनी कमियों को पहचान कर उन पर चोट करना तथा कुछ नई चीजें सीखना इस स्थिति में स्वाभाविक होता है।
2. अपने अतीत के प्रति रोमानी बोध भी नवजागरण में सामान्यत: दिखता है क्योंकि समाज को रचनात्मक

प्रेरणा देने के लिए ऐतिहासिक या मिथकीय प्रसंग बेहद कारगर भूमिका निभाते हैं। यहाँ इतिहास तटस्थ रूप में नहीं आता बल्कि एक आदर्श तथा रोमानियत भरे रूप में प्रयुक्त होता है।

3. जो संस्कृति हमारे समक्ष उपस्थित है, उसके सकारात्मक तत्वों को ग्रहण करने की चेतना नवजागरण में काफी प्रमुख होती है। 19वीं सदी के नवजागरण में यूरोपीय संस्कृति के जिन तत्वों का प्रभाव दिखता है, वे हैं–वैज्ञानिक तार्किक शिक्षा, आधुनिक व इहलोकवादी दृष्टिकोण, समानता, स्वतंत्रता, न्याय व बंधुत्व जैसे सामाजिक-राजनीतिक आदर्श इत्यादि। जहाँ-जहाँ साहित्य में ये तत्व नजर आते हैं, वे सभी बिंदु नवजागरण के प्रभाव के रूप में देखे जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. 19वीं शताब्दी में भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान व मध्यकालीन दौर से गुजर रही थी जबकि पाश्चात्य संस्कृति वैज्ञानिक तथा मशीनी क्रांति के आधार पर भौतिकवाद तथा पूँजीवाद का प्रतिनिधित्व कर रही थी।
8. किसी साहित्य में नवजागरण की चेतना कुछ विशेष रूपों में दिखाई देती है।
9. जहाँ-जहाँ साहित्य में ये तत्व नज़र आते हैं, वे सभी बिंदु नवजागरण के प्रभाव के रूप में नहीं देखे जाते हैं।

3.2 सारांश (Summary)

- 1857 की राज्यक्रांति को भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का नाम दिया गया है। मेरठ में मंगल पांडे के नेतृत्व में विद्रोह का बिगुल फूँक दिया गया जिसने अंग्रेजों को यह बता दिया कि अब भारतीयों को बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। कविता में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना, नए विषयों की ओर उन्मुखता दिखाई देने लगी। कविता रीतिकालीन परिवेश से मुक्त होकर नवयुग का द्वार खोलने लगी।
- 19वीं शताब्दी का नवजागरण हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा जागरण है जिसमें एक ओर भारतीय सामाजिक संस्कृति है तो दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति। इस समय भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान व मध्यकालीन दौर से गुजर रही थी जबकि पाश्चात्य संस्कृति वैज्ञानिक तथा मशीनी क्रांति के आधार पर भौतिकवाद तथा पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **विद्रोह**–बगावत, लड़ाई छेड़ देना
2. **स्वतंत्रता संग्राम**–स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सन् 1857 की क्रांति के साहित्य पर पड़े प्रभाव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. सन् 1857 की क्रांति के मुख्य कारण क्या थे? उल्लेख कीजिए।
3. हिंदी नवजागरण की अवधारणा तथा इसके दो महत्त्वपूर्ण जागरणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. असंतोष	2. ईसाई धर्म प्रचारक	3. नवयुग	4. (क)
5. (घ)	6. (ख)	7. सत्य	8. सत्य
9. असत्य			

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*

नोट

इकाई–4 : भारतेंदु युग : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 भारतेंदु युग
4.1.1 भारतेंदु मंडल के साहित्यकार
4.1.2 भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ
4.2 सारांश (Summary)
4.3 शब्दकोश (Keywords)
4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारतेंदु युग की व्याख्या करने में।
- भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों को जानने में।
- भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेंदु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान रखकर किया गया। भारतेंदु जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रज भाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाज हित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है।

भारतेंदु जी मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाए जो हिंदी भाषा जनता की बोली थी, अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था वह कुछ सुलझ गया।

4.1 भारतेंदु युग

आधुनिक काल को कई उप-कालों में विभक्त किया गया है। **डॉ. नगेंद्र** के अनुसार ये उप-काल निम्नवत् हैं–

1. पुनर्जागरण काल (भारतेंदु युग) – 1857 ई.–1900 ई.
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग) – 1900 ई.–1918 ई.

3. छायावादी युग – 1918 ई.–1938 ई.
4. छायावादोत्तर काल
   (अ) प्रगति-प्रयोग काल – (1938 ई.–1953 ई.)
   (ब) नवलेखन काल – (1953 ई. ·········)

उक्त वर्गीकरण काव्य की दृष्टि से है। गद्य में हुए विकास को अलग ढंग से समझा जा सकता है। आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेंदु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेंदु जी का रचनाकाल सन् 1850 ई. से 1885 ई. तक रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन 1903 ई. में संभाला था। सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारंभ हुआ था अत: 1850 ई. से 1900 ई. तक की अवधि को 'भारतेंदु युग' कहना समीचीन है।

भारतेंदु जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य-विन्यास में भी व्याप्त था तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध एवं मधुर होते हुए भी आगरा की बोली का पुट लिए हुए थी। भारतेंदु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया अपितु पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।"

> *नोट्स* भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया।

भारतेंदु जी मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाए जो हिंदी भाषा जनता की बोली थी, अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था वह बहुत कुछ सुलझ गया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. जागरण सुधार काल ························ 1857 ई. से 1900 ई. तक।
2. सरस्वती का प्रकाशन सन् ························ से प्रारंभ हुआ था।
3. भारतेंदु जी ने ························ करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा।
4. देशहित एवं समाजहित की भावना का ························ सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ।

4.1.1 भारतेंदु मंडल के साहित्यकार

भारतेंदु जी ने यद्यपि 35 वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की किंतु इस अल्पकाल में ही उनके बीच लेखकों का एक अच्छा-खासा मंडल तैयार हो गया था जिसमें **पं. प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह और पं. बालकृष्ण भट्ट** के नाम लिए जा सकते हैं।

नोट

भारतेंदु जी की शैली के दो रूप हैं—1. भावावेश शैली, 2. तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गए वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल एवं बोलचाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अंतर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

पं. प्रतापनारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे, अतः उनकी भाषा में स्वच्छंदता एवं बोलचाल की चपलता और भावभंगिमा दिखाई पड़ती है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के लेखों में गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है।

पं. बालकृष्ण भट्ट की भाषा वैसी है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है।

ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा-शैली शब्द-शोधन और आनुप्रासिकता से युक्त है।

> *क्या आप जानते हैं* भारतेंदु जी के समकालीन सभी लेखकों में एक सामान्य गुण है सजीवता और जिंदादिली। सभी लेखकों में हास्य-विनोद का पुट है। भारतीय संस्कृति का उद्घोष इन सब लेखकों की कृतियों में है।

भारतेंदु युग में गद्य का प्रारंभ भी नाटकों से हुआ। **भारतेंदु जी** ने बंगला के नाटक **'विद्यासुंदर'** का हिंदी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उद्योग भी पहले पहल भारतेंदु मंडल के लेखकों ने किया। यही नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। **पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी** कृत **'जानकी मंगल नाटक'** में भारतेंदु जी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने स्वयं काशीनरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। प्रतापनारायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए मूँछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी।

इस काल में अनेक अच्छे निबंधकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गए।

बंगभाषा के अनुकरण पर हिंदी में उपन्यासों की ओर झुकाव बढ़ रहा था। हिंदी का पहला उपन्यास **'लाला श्री निवास दास'** द्वारा लिखा गया। जिसका नाम है—**'परीक्षा गुरु'**। इसके उपरांत **राधाकृष्ण दास** ने **'निस्सहाय हिंदू** और **पं. बालकृष्ण भट्ट** ने **'नूतन ब्रह्मचारी'** तथा **'सौ अजान एक सुजान'** नामक उपन्यासों की रचना की।

इस काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनूदित उपन्यासों की भाषा उन्नत नहीं थी तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र (1850-1885)

भारतेंदु जी का जन्म 1850 ई. में तथा मृत्यु 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई. में हुई। इस अल्पकाल में ही इस महान साधक ने माँ भारती के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उनके संपूर्ण कृतित्व का विवरण निम्नवत् है—

मौलिक नाटक

1. वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति
2. चंद्रावली नाटिका
3. विषस्य विषमौषधम्
4. भारत दुर्दशा
5. नीलदेवी
6. अंधेर नगरी
7. प्रेम जोगिनी
8. सती प्रताप (अधूरा)।

नोट

अनूदित नाटक

1. विद्यासुंदर
2. पाखंड विडंबन
3. धनंजय विजय
4. कर्पूर मंजरी
5. मुद्राराक्षस
6. सत्य हरिश्चंद्र
7. भारत जननी
8. दुर्लभ बंधु
9. रत्नावली।

काव्य कृतियाँ

1. प्रेमाश्रुवर्णन
2. प्रेम माधुरी
3. प्रेम तरंग
4. उत्तरार्द्ध भक्त माल
5. प्रेम प्रलाप
6. गीत गोविंदानंद
7. सतसई सिंगार
8. होली
9. मधुमुकुल
10. रागसंग्रह
11. वर्षा विनोद
12. विनय प्रेम पचासा
13. फूलों का गुच्छा
14. प्रेम फुलवारी
15. कृष्ण चरित्र
16. तन्मय लीला
17. दान लीला
18. प्रबोधिनी
19. प्रातसमीरन
20. बकरी विलाप
21. रामलीला।

उपन्यास

1. हमीर हठ
2. रामलीला
3. सुलोचना
4. शीलवती
5. सावित्री चरित्र।

निबंध

1. सबै जाति गोपाल की
2. मित्रता
3. सूर्योदय
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती
5. जयदेव
6. बंग भाषा की कविता।

इतिहास ग्रंथ

1. कश्मीर कुसुम
2. बादशाह दर्पण।

भारतेंदु जी के पिता **गोपालचंद्र** भी अच्छे कवि थे और **'गिरधरदास'** नाम से कविता करते थे। भारतेंदु जी के काव्यगुरु पं. लोकनाथ थे।

भारतेंदु जी के नाटकों, निबंधों में विषय वैविध्य था। चंद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषधम् में देशी रजवाड़ों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण है। उनकी कविता में भक्ति भावना, शृंगारिकता के साथ-साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम है। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्रों-पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अंधविश्वासों पर कुठाराघात किया।

टास्क भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं। भारतेंदुजी के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का अंकन किया गया है तो दूसरी ओर वर्तमान अधोगति का चित्रण है। प्रतापनारायण मिश्र की 'हरगंगा' 'हिंदी की हिमायत', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। बदरीनारायण चौधरी की कविताओं में भी समकालीन विषयों का उद्‌घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

बहुविकल्पीय प्रश्न–

5. भारतेंदु जी की भावावेश शैली में लिखे गए वाक्य कैसे हैं?
   (क) बड़े-बड़े (ख) छोटे-छोटे (ग) प्रासंगिक (घ) हास्यप्रद
6. भारतेंदु जी ने बंगला के नाटक विद्यासुंदर का अनुवाद किस भाषा में किया?
   (क) हिंदी (ख) गुजराती (ग) मराठी (घ) उड़िया
7. हिंदी का प्रथम उपन्यास किसके द्वारा लिखा गया?
   (क) बाबू गुलाबराय (ख) द्विवेदी (ग) शुक्ल जी (घ) लाला श्रीनिवास

4.1.2 भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

भारतेंदुयुगीन कवियों ने अपने कर्तव्य का भलीभाँति निर्वाह करने हेतु जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं का उद्घाटन अपनी कविता में किया। भाव, भाषा, छंद आदि सभी दृष्टियों से परिष्कार की प्रवृत्ति इस काल के साहित्यकारों में विद्यमान थी। उनकी काव्य प्रवृत्तियों का उद्घाटन अग्र शीर्षकों में किया जा सकता है–

1. राष्ट्रीयता की भावना

विदेशी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने का प्रयास भारतेंदुयुगीन कवियों ने किया है। **राधाचरण गोस्वामी** की कविता 'हमारो उत्तम भारत देस', राधाकृष्णदास की कविता **'भारत बारहमासा'** और **बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'** की कविता 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' इसी भावना से ओतप्रोत हैं। भारतेंदु जी ने निम्न पंक्तियों में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण का चित्र अंकित किया है–

भीतर-भीतर सब रस चूसै,
हंसि-हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।।

देशभक्ति और राजभक्ति का अद्‌भुत समन्वय भारतेंदु जी में मिलता है। अंग्रेज कुशल शासन व्यवस्था कर रहे थे पर भीतर-ही-भीतर भारत का आर्थिक शोषण भी कर रहे हैं, इसका उल्लेख भारतेंदु जी ने निम्न पंक्तियों में किया है–

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।।

वस्तुतः द्विवेदी युग में जिस राष्ट्रीयता का उदय, कवियों में हुआ उसका बीजारोपण भारतेंदु युग में हो गया था। **मैथिलीशरण गुप्त** जैसे कवि **'भारत-भारती'** की रचना संभवतः भारतेंदुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही कर सके।

2. समाज की दुर्दशा का चित्रण

रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आँखें बंद कर ली थीं, किंतु भारतेंदुयुगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई है। आर्यसमाज एवं ब्रह्मसमाज जैसे सामाजिक आंदोलनों के प्रभाव से इस काल में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ और विधवा विवाह, नारी शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाली कविताएँ लिखी गईं। सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछूत को काव्य विषय बनाया गया और सामाजिक कुरीतियों, छल-कपट

एवं पाखंड का खंडन करने में इन कवियों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया। भारतेंदु जी ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया—

रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाई।
हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले साहबों पर व्यंग्य करते हुए लिखा—

चूसहु चुरुट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून।
अच्छर चारि पढ़े अंगरेजी बन गए अफलातून।।

बाल विधवाओं की दुर्दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा—

'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।'

राधाचरण गोस्वामी ने भी भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है—

मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं रोई।
भारत की डूबी नाव उबारौ कोई।।

वस्तुत: वे अपनी पीढ़ी को सचेत करते हुए भारत की डूबी नैया को उबारने की बात कह रहे हैं।

3. शृंगारिकता

भारतेंदु युग के कवियों ने शृंगाार की मर्यादित अभिव्यक्ति की है। रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन एवं नायिका भेद का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही है, साथ ही कृष्ण को नायक मानकर तथा राधा को नायिका मानकर उनकी प्रेमलीलाओं का चित्रण भी किया है। भारतेंदु जी की रचनाओं—प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वयसंधि को प्राप्त नायिका का सुंदर चित्र दृष्टव्य है—

सिसुताई अजौं न गई तन तें,
तऊ जीवन जोति बटोरैं लगीं।
सुनि कै चरचा हरिचंद की कानन,
कूक दै भौंह मरोरैं लगीं।।

बचि सासु जेठानिन सौं पियतैं,
दुरि घूँघट मैं दृग जोरैं लगीं।
दुलही उलही सब अंगन तै,
दिन द्वै ते पीयूष निचौरैं लगीं।।

इन कवियों ने वियोग शृंगार का भी सुंदर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। **ठाकुर जगमोहन सिंह** ने अपनी रचना 'प्रेम संपत्ति ललिता' में नायिका के विरह का निरूपण इन पंक्तियों में किया है—

अब यौं उर आवत है सजनी,
मिलि जाऊँ गरे लगि कैं छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ,
मिलि कीजिए री रस की बतियाँ।।

हम हारि अरी करि कोटि उपाय,
लिखी बहु नेह भरी पतियां।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिना,
कैसें कटैं दुख की रतियाँ।।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं **राधाकृष्णदास** जैसे कवियों ने शृंगार को अपना काव्य विषय नहीं बनाया।

4. भक्ति भावना

भारतेंदु जी को भक्ति भावना पैतृक विरासत में मिली थी। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में प्रमुख हैं—भक्ति सर्वस्व, वैशाख माहात्म्य एवं कार्तिक स्नान। इसीलिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में समर्थ हो सके—

"मेरे तो साधन एक ही हैं जग नंदलला वृषभानु दुलारी।।" **—भारतेंदु**

राधाकृष्ण की मधुर छवि का अंकन उनके अनेक पदों में उपलब्ध होता है। यथा—

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी।
मनमोहन सुंदर नर नागर श्री वृषभानु किसोरी।
कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वह सांवर यह गोरी।। **—भारतेंदु**

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास के काव्य में भक्तिभावना का वह स्वरूप दिखाई पड़ता है, जो निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में विद्यमान था। उन्होंने संसार की नश्वरता, माया-मोह के बंधन, और विषय वासना की निस्सारता, आदि का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, यथा—

जो विषया संतन तजी ताहि मूढ़ लपटात।
जो नर डारत वमन करि स्वान सौं खात।। **—राधाकृष्णदास**

ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए भारतेंदु जी ने अपनी दीनता का उल्लेख किया है और उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना की है—

उधारौ दीनबंधु महराज।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।। **—भारतेंदु**

इस काल की कुछ अन्य भक्तिपरक रचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. अलौकिक लीला — बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
2. कंसवध — अंबिकादत्त व्यास
3. सूर्य स्तोत्र — बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
4. नवभक्तमाल — राधाचरण गोस्वामी
5. भक्ति सर्वस्व — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
6. वैशाख माहात्म्य — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
7. कार्तिक स्नान — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

नोट्स भारतेंदु जी पुष्टिमार्गीय भक्त थे और बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे।

5. प्रकृति चित्रण

भारतेंदुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया, यद्यपि कहीं-कहीं परंपरा निर्वाह करते हुए प्रकृति निरूपण भी किया गया है। एक ओर तो वसंत, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्र अंकित किए गए तो दूसरी ओर गंगा, यमुना, चाँदनी आदि का सुंदर चित्रण किया है। भारतेंदु कृत 'वसंत होली' में 'वसंत' का वर्णन है तथा श्री चंद्रावली नाटिका में 'यमुना' वर्णन किया गया है। प्रकृति के माध्यम से नायक-नायिका की शृंगार चेष्टाओं का निरूपण भी किया गया है। भारतेंदु जी द्वारा किया गया यमुना वर्णन अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है, यथा—

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सौं जल परसन हित मनहुँ सुहाए।।

6. हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके माध्यम से अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट की। भारतेंदु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया है। 'अंधेर नगरी' में चूरनवाला कहता है–

चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा 'हिंद' हजम कर जाता।।

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के संबंध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए–

मुँह जब लागे तब नहिं छूटै,
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहि करै खराब,
क्यों सखि साजन नहीं सराब।।

प्रतापनारायण मिश्र की कविताएँ हर गंगा, बुढ़ापा, उर्दू का स्यापा, हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुईं।

7. समस्या पूर्ति

भारतेंदु काल के कवि समस्या पूर्ति के रूप में ही काव्य रचना करते थे। कोई एक पंक्ति या पद्यांश 'समस्या' के रूप में दिया जाता था और कविजन विलक्षण कल्पनाएँ करते हुए उस समस्या पूर्ति का प्रमुख नियम यह था कि दी गई पंक्ति छंद या कविता के अंत में ही आनी चाहिए। समस्या पूर्ति की यह परंपरा कवियों की प्रतिभा को परखने एवं उनके रचना-कौशल की थाह पाने को कसौटी समझी जाती थी। कवि गोष्ठियों में समस्या पूर्ति की प्रतियोगिताएँ होती थीं और रसिक समाज इन्हें बड़े चाव से सुनता था। समस्या पूर्ति के लिए जो विषय दिए जाते थे वे प्राय: शृंगार से संबंधित होते थे। कानपुर की एक संस्था 'रसिक समाज' में एक बार समस्या पूर्ति के लिए एक पंक्ति दी गई–''पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ'' इस समस्या की पूर्ति पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने इस प्रकार की–

बन बैठि है मान की मूरति सी,
मुख खोलत बोलै न नाहीं न हां।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे,
सखियान की कौन चलाई तहां।।

वरषा है प्रतापजू' धीरे धरौ,
अबलौ मन कौं समझायौ जहाँ।
वह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,
पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ।।

समस्या पूर्ति के माध्यम से उक्ति वैचित्र्य, अलंकरण एवं कल्पना का मनोहारी प्रयोग करने की रीतिकालीन प्रवृत्ति को काव्य में पर्याप्त प्रश्रय मिला। समस्यापूर्ति से संबंधित इस काल के कुछ प्रमुख काव्य संग्रह हैं–**अंबिकादत्त व्यास कृत 'समस्या पूर्ति सर्वस्व'** द्विजगंग कृत 'समस्या प्रकाश' और गोविंद गिल्ला भाई कृत 'समस्यापूर्ति प्रदीप'।

टास्क भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

नोट

8. ब्रजभाषा का प्रयोग

भारतेंदु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में प्रारंभ हो गया था। इन कवियों की भाषा पद्‌माकर एवं घनानंद जैसी परिष्कृत भाषा तो नहीं है, किंतु उसमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। पंडित प्रतापनारायण की ब्रजभाषा में कन्नौजी का प्रभाव तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग साफ झलकता है। भारतेंदु जी ने यद्यपि साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया तथापि उनकी रचना 'फूलों का गुच्छा' में उर्दू के पर्याप्त शब्द हैं। इस काल के कुछ कवियों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ लिखीं पर वे कला एवं भाव की दृष्टि से उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं।

क्या आप जानते हैं भारतेंदु युग में मुक्तक काव्य की प्रधानता रही। सामयिक विषयों पर उपदेशपरक फुटकर पद्य लिखे गए जिनमें भाव की गहनता एवं कला का उत्कर्ष दिखाई नहीं पड़ता। कुछ रचनाएँ तो तुकबंदियाँ मात्र प्रतीत होती हैं।

अधिकांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुंडलियां, रोला, सवैया, हरिगीतिका, कवित्त जैसे परंपरित छंदों में काव्य रचना की। छंदों की दृष्टि से इनके काव्य में विविधता है।

भारतेंदु युग के कवियों ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया है। भारतेंदु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते है।** राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

8. देशभक्ति और राजभक्ति का अद्‌भुत समन्वय भारतेंदु जी में नहीं मिलता है।
9. भारतेंदु जी की रचनाओं-प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में श्रृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।
10. भारतेंदुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छंद रूप में चित्रण किया, यद्यपि कहीं-कहीं परंपरा निर्वाह करते हुए प्रकृति निरूपण भी किया गया है।

4.2 सारांश (Summary)

- भारतेंदु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेंदु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे।
- भारतेंदु काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनूदित उपन्यासों की भाषा मझी हुई नहीं थी तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।
- भारतेंदु जी के नाटकों, निबंधों में विषय वैविध्य था। चंद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषधम् में

नोट

देशी रजवाड़ों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण है।

- भारतेंदु युग के कवियों ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं से जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया है। भारतेंदु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते हैं।** राष्ट्र और समाज को उद्बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्त्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अल्पायु**–कम उम्र, अवयस्क
2. **बहुमुखी प्रतिभा**–विभिन्न योग्यताओं से पूर्ण, विविध प्रतिभा संपन्न

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों के साहित्य का वर्णन कीजिए।
2. भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवन परिचय दीजिए।
3. भारतेंदुयुगीन काव्य प्रवृत्तियों से क्या तात्पर्य है? उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. द्विवेदी युग	2. 1900 ई.	3. भाषा संस्कार	4. समावेश	5. (ख)
6. (क)	7. (घ)	8. असत्य	9. सत्य	10. सत्य

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास–*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*

Hardeep Kaur, Lovely Professional University

नोट

इकाई–5 : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनका युग : राष्ट्र काव्यधारा एवं समकालीन कविता

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
5.1 द्विवेदी युग, हिंदी नवजागरण और सरस्वती, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि
 5.1.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
 5.1.2 हिंदी नवजागरण और सरस्वती
 5.1.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि
5.2 सारांश (Summary)
5.3 शब्दकोश (Keywords)
5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- द्विवेदी युग को समझने में।
- हिंदी नवजागरण का वर्णन करने में।
- राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवियों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतेंदु युग यदि आधुनिक काल का प्रवेश द्वार है तो द्विवेदी युग उसका विस्तृत प्रांगण जहाँ उन प्रवृत्तियों को विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ जो भारतेंदु युग में प्रारंभ हुई थीं। विशेषत: भारतीय जनमानस में स्वदेशानुराग एवं नवजागरण के जो बीज भारतेंदु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए।

उन्नीसवीं शती का अंत होते-होते भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति एवं नीरस तुकबंदियों से सहृदय विमुख होने लगे तथा लंबे समय से काव्य भाषा के रूप में व्यवहृत ब्रजभाषा का आकर्षण भी लुप्त होने लगा और उसका स्थान खड़ी बोली हिंदी ने ले लिया।

नोट

5.1 द्विवेदी युग, हिंदी नवजागरण और सरस्वती, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

5.1.1 महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामंडित व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत की महान सेवा की और हिंदी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती पत्रिका के संपादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी। काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने **'कवि कर्त्तव्य'** जैसे निबंधों द्वारा कवियों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा-निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छंद योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विरामचिह्नों के प्रयोग द्वारा हिंदी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए **भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया** तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ························ सरस्वती पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत् की महान सेवा की और हिंदी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया।
2. द्विवेदी जी ने ······························ के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी।
3. द्विवेदी जी की ························· से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े।

नोट्स हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल वस्तुत: जागरण का संदेश लेकर आया।

5.1.2 हिंदी नवजागरण और सरस्वती

सन् 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने नवजागरण का बिगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं। भारतेंदु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गईं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इसीलिए हिंदी नवजागरण

नोट

को हिंदू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त प्रभा, मर्यादा पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई. से प्रारंभ हुआ तथा सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका संपादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका से उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ने वाले अनेक कवि सामने आए जिनमें प्रमुख हैं–**मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'** और **लोचनप्रसाद पांडेय** आदि। यही नहीं अपितु बहुत सारे ऐसे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे तथा उनकी विषय वस्तु एवं शैली प्राचीन पद्धति पर थी, अब द्विवेदी जी एवं 'सरस्वती' से प्रेरित होकर काव्य के चिर-परिचित उपादानों को छोड़कर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं–**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर'** तथा **राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।** इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण, राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग एवं स्वदेशी भावना से परिपूर्ण हैं।

द्विवेदी युग में केवल भाषा क्षेत्र में ही परिवर्तन नहीं हुआ अपितु छंदों के क्षेत्र में भी परिवर्तन परिलक्षित है। अब परंपरागत छंद प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग भी कविगण प्रचुरता से करने लगे।

'सरस्वती' पत्रिका ने कवियों की एक नई पौध तैयार की। उनकी प्रेरणा से अनेक कवियों ने नवीन विषयों पर कविता लिखी। उनके एक निबंध से प्रेरित होकर **मैथिलीशरण गुप्त** ने चिर उपेक्षिता उर्मिला को महत्त्व देने हेतु **'साकेत'** नामक महाकाव्य की रचना की। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है–

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद?
महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।।

खड़ी बोली को परिमार्जित करने, संस्कारित करने तथा व्याकरणिक शुद्धता प्रदान करने में 'सरस्वती' पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। आचार्य द्विवेदी के भाषा परिष्कार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–"खड़ी बोली के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा। बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी। द्विवेदी जी ऐसे कवियों की भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरुस्त करके 'सरस्वती' में छापा करते थे। इस प्रकार कवियों की भाषा साफ होती गई और द्विवेदी जी के अनुकरण में अन्य लेखक भी शुद्ध भाषा लिखने लगे।"

वस्तुत: 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार, देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुईं। **देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।**

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. हिंदी नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में .... पत्रिका का विशेष योगदान है।

   (क) विनय (ख) तेजस्वती (ग) मृगावती (घ) सरस्वती

5. द्विवेदी जी की प्रेरणा से अनेक कवियों ने .... विषयों पर कविताएँ लिखी।

   (क) गंभीर (ख) नवीन (ग) प्राचीन (घ) दार्शनिक

नोट

6. .... के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा।

(क) मैथिली बोली (ख) संस्कृत बोली

(ग) खड़ी बोली (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

5.1.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

माखनलाल चतुर्वेदी–माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) का जन्म मध्यप्रदेश के जिला होशंगाबाद के गाँव बाबई में हुआ था। इनके पिता गाँव के स्कूल में अध्यापक थे, इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही व्यक्ति थे और आरंभ से ही देश की दशा के प्रति जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली 'मीर', स्वामी रामतीर्थ और माधवराज सप्रे का विशेष प्रभाव था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। अपने जीवन का आरंभ इन्होंने एक अध्यापक के रूप में किया था, किंतु ये पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का संपादन किया। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था आरंभ में ये क्रांति के दर्शन से प्रभावित हुए थे, किंतु बाद में इनकी आस्था गाँधीवाद की ओर हुई। इनकी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बंदी बनाया गया। जेल के जीवन-काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। छायावाद-युग के इनके प्रमुख कविता-संग्रह हैं–'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना दिखाई देती है। इस मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाए। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी कई रचनाओं में–विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति को भी वाणी मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और आत्मोत्सर्ग का प्रभाव है।

सियारामशरण गुप्त–सियारामशरण गुप्त (1895-1963) का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। रोग एवं पारिवारिक दुखों के कारण इनका जीवन अत्यंत दु:खमय रहा। वैसे ये सरसता एवं नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनकी पहली रचना सन् 1910 में 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई इसके बाद 'सरस्वती' में कई रचनाएँ छपीं। 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मंथी', 'बापू', 'दैनिकी' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शाँति आदि गाँधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहाँ भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखाई देते हैं। विषय-प्रतिपादन और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से जहाँ इन पर एक ओर द्विवेदीयुगीन रचना-पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षत: प्रभावित हैं। इनकी भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है तथा इन्होंने बड़ी सफलता के साथ मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'–'नवीन' जी (1897-1960) का जन्म ग्वालियर राज्य के **भयाना गाँव** में हुआ था। ग्यारह वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का आरंभ हुआ। सन् 1917 में हाई स्कूल पास करने के बाद ये कानपुर पहुँचे, जहा गणेशशंकर विद्यार्थी ने इन्हें कॉलेज में दाखिल करा दिया। किंतु सन् 1920 में ये गाँधी जी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। अपने लंबे राजनीतिक जीवन के दौरान इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर ये पहले **लोकसभा और फिर राज्यसभा के सदस्य रहे**। कुछ समय तक इन्होंने 'प्रभा' और 'प्रताप' का भी संपादन किया था। इनकी रचनाएँ सन् 1918 से ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, लेकिन इन्होंने उनको विधिवत् प्रकाशित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। 'कुंकुम' (1939) इनका पहला कविता-संग्रह है। 'उर्मिला' काव्य को इन्होंने सन् 1934 में ही पूरा कर लिया था, किंतु उसका प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्ज्वल

रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से–भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से–संबद्ध करने के लिए कवि ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशलपूर्वक संयोजना की है। इनके अन्य काव्य-ग्रंथ हैं–**'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि'** तथा **'हम विषपायी जनम के'**। 'नवीन' जी की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र-प्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय-संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छंदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य-जैसी मार्मिकता दिखाई देती है। इस रूप में 'नवीन' जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी, वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखाई देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय हैं–अतीत की महिमा का गौरव-गान, तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि। किंतु, इनकी काव्य-चेतना का एक पक्ष बिलकुल निजी और अनुभूति-प्रधान है–''हम अनिकेतन, हम अनिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वतन?'' कहीं तो ये अपने फक्कड़पन और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं और कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते हैं–''हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में'' ये जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं, उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली दशा का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी और मस्ती दोनों कारण-कार्य-भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक-से लगते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान–सुभद्रा जी (1905-1948) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में ही शिक्षा ग्रहण की। सन् 1921 में असहयोग-आंदोलन के प्रभाव में इन्होंने शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और ये राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगीं। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। काव्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति विद्यार्थी-काल से ही थी। इनकी कविताएँ 'त्रिधारा' और 'मुकुल' में संकलित हैं। भाव की दृष्टि से इनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राष्ट्र-प्रेम की कविताएँ रखी जा सकती हैं जिनमें इन्होंने असहयोग या आज़ादी की लड़ाई में भाग लेनेवाले वीरों को अपना विषय बनाया है। इनकी 'झाँसी की रानी' कविता तो सामान्य जनता में बहुत प्रसिद्ध हुई है। दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे कविताएँ रखी जा सकती हैं जिनकी प्रेरणा इन्हें अपने पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुई हैं ऐसी कविताओं में कुछ तो पति-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं और कुछ में संतान के प्रति वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी भाषा शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हुए है।

अन्य कवि–छायावाद-युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के विकास में जिन अन्य कवियों ने उल्लेखनीय योग दिया अथवा इस धारा के परवर्ती प्रमुख कवियों में से जिन कवियों की एक-दो कृतियाँ आलोच्य काल में प्रकाश में आई उनमें रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद, दिनकर आदि का उल्लेख आवश्यक है। **रामनरेश त्रिपाठी** (1881-1960) ने 'मानसी' (1927) की कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त 'पथिक' (1920) और 'स्वप्न' (1921) शीर्षक खंडकाव्यों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दोनों काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि है। 'पथिक' का नायक जन-जीवन के वैषम्य को दूर करने के उद्देश्य से राजतंत्र से लोहा लेता है और अंत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार का बलिदान कर देता है। 'स्वप्न में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले तो स्वार्थ और लोक-सेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज-कल्याण में विरोध देखता है, किंतु फिर उसे कर्त्तव्य का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। 'पथिक' के विपरीत इस काव्य का अंत सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र-सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज-विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के सामाजिक यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए है। **उदयशंकर भट्ट** (1898-1966) के आख्यान-काव्य 'तक्षशिला' (1929) की गणना भी प्रस्तुत काव्यधारा

नोट

के अंतर्गत की जा सकती है—भारत की सांस्कृतिक गुण-गाथा की अभिव्यक्ति इस रचना का मुख्य अभीष्ट है। **जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद** (1907-1986) के 'जीवन-संगीत' में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना को व्यक्त करने वाली कविताएँ संकलित हैं। इनकी रचना 1922 से 1936 के मध्य हुई थी। **दिनकर**-कृत 'रेणुका' (1935) भी इसी शैली का कविता-संग्रह है। रूढ़ी-विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता की दृष्टि से इसकी कविताएँ अप्रतिम हैं। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की **'स्वदेश-संगीत'** (1925), कवि 'त्रिशूल' (गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही') की **'राष्ट्रीय मंत्र'** (1921), **केदारनाथ मिश्र** 'प्रभात' की 'ज्वाला' (1921), **महेशचंद्र प्रसाद** की 'कांग्रेस शतक' (1936) आदि रचनाओं का उल्लेख भी आवश्यक है—उस युग की राष्ट्रीय-संस्कृतिक काव्य-चेतना को गतिमान करने में इन कृतियों का योगदान अविस्मरणीय है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. द्विवेदी जी अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं दे सके।
8. देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए द्विवेदी जी ने अथक साधना की।
9. द्विवेदी जी की भाषा-शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हुए है।

5.2 सारांश (Summary)

- पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।
- 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार, देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुईं। देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।

5.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **राष्ट्रीयता**—राष्ट्र की भावना, राष्ट्र प्रेम
2. **विश्वबंधुत्व**—संसार में एकता तथा भाईचारा

5.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. हिंदी नवजागरण और सरस्वती का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
3. (अ) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन जी' (ब) सुभद्रा कुमारी चौहान पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. द्विवेदी 2. सरस्वती पत्रिका 3. प्रेरणा 4. (घ)
5. (ख) 6. (ग) 7. असत्य 8. सत्य
9. सत्य।

5.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*

नोट

इकाई–6 : छायावाद तथा उत्तर छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
6.1 छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ
6.1.1 छायावाद का अर्थ और परिभाषा
6.1.2 छायावादी काव्य की विशेषताएँ
6.1.3 उत्तर-छायावाद
6.1.4 व्यक्तिवादी गीति कविता
6.1.5 राष्ट्रीय-स ांस्कृतिक कविता
6.1.6 मार्क्सवाद क्या है?
6.1.7 मार्क्सवादियों का साहित्यिक दृष्टिकोण
6.1.8 प्रगतिवाद और चेतना
6.1.9 प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
6.1.10 प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा
6.1.11 प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में अंतर
6.1.12 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
6.1.13 नई कविता से अभिप्राय
6.1.14 नई कविताकालीन परिस्थितियाँ
6.1.15 नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
6.1.16 अकविता या साठोत्तरी कविता
6.2 सारांश (Summary)
6.3 शब्दकोश (Keywords)
6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- छायावाद का अर्थ, परिभाषा और काव्यगत विशेषताएं जानने में।
- मार्क्सवादियों के साहित्यिक दृष्टिकोण को जानने में।
- प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझने में।
- नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

नोट

अनुमान के अनुसार छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक मानी जा सकती है। छायावाद का विकास द्विवेदीयुग कविता के उपरांत हिंदी में हुआ। रामचंद्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 ई. से माना है, इसका प्रमुख कारण यह है कि छायावाद के प्रमुख कवियों पंत, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएं लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारंभ की थी। छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ कल्पना प्रधान एवं सूक्ष्म है।

6.1 छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ

6.1.1 छायावाद का अर्थ और परिभाषा

छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरांत हिंदी में हुआ। मोटे तौर पर छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई. से 1936 ई. तक मानी जा सकती है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 ई. से माना है, क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों पंत, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारंभ की थीं। 1918 में प्रसाद का **'झरना'** प्रकाशित हो चुका था तथा निराला की प्रसिद्ध कविता **'जूही की कली'** 1916 ई. में प्रकाशित हुई थी। पंत के **'पल्लव'** की कुछ कविताएँ भी 1918 में प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसाद की **'कामायनी'** 1935 ई. में प्रकाशित हुई तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 ई. में हुई। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर छायावाद की अंतिम सीमा 1936 ई. मानना समीचीन है।

छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म है। प्रारंभ में **'छायावाद'** का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किंतु कालांतर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

छायावाद की प्रमुख परिभाषाएँ

1. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल**–''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य वस्तु से होता है, अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ··· छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।''
2. **जयशंकर प्रसाद**–''जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।''
3. **डॉ. रामकुमार वर्मा**–''परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।''
4. **डॉ. नगेंद्र**–''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।''
5. **महादेवी वर्मा**–''छायावाद तत्वत: प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है। ··· उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है।''
6. **डॉ. रामविलास शर्मा**–''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। यह विद्रोह मध्य वर्ग के तत्वावधान में हुआ था इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।''

नोट

7. **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी**–''छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी की मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भाव धारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें संदेह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।''

उक्त परिभाषाओं के आलोक में छायावादी काव्य के निम्न लक्षण निरूपति किए जा सकते हैं–

1. छायावादी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति रहती है।
2. छायावादी कविता प्रेम, सौंदर्य एवं प्रकृति का काव्य है।
3. छायावाद में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता रहती है।
4. छायावाद की शैली-शिल्प एवं अभिव्यंजना पद्धति में नवीनता है।
5. छायावाद में स्वानुभूति की प्रधानता है।

उक्त लक्षणों के आलोक में छायावाद की एक सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है–

''प्रेम, प्रकृति और मानव सौंदर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्यपरक सूक्ष्म अभिव्यंजना लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में जिस काव्य की रचना होती है, उसे छायावाद कहा जाता है।''

6.1.2 छायावादी काव्य की विशेषताएँ

छायावादी काव्य विषय-वस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती काव्य से अलग है। इस काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों का निरूपण निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. आत्माभिव्यंजन–छायावादी कवियों ने काव्य की विषय-वस्तु अपने व्यक्तिगत जीवन से ही खोजने का प्रयास किया। अपने जीवन के निजी प्रसंगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को अनेक छायावादी कवियों ने काव्य की विषय-वस्तु बनाया। छायावादी कविता में वैयक्तिक सुख-दु:ख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद कृत 'आँसू' काव्य और पंत कृत 'उच्छवास' नामक कविता इस कथन के समर्थन में पेश की जा सकती है। पंत जी ने अपनी 'प्रिया' को मन मंदिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है–

विधुर उर के मृदु भावों से तुम्हारा कर नित नव शृंगार।
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि, मूंद दुहरे दृग द्वार।। **–पंत**

निराला की कई कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन का सत्य व्यक्त हुआ है **'राम की शक्ति पूजा'** में राम की हताशा, निराशा में कवि के अपने जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति की हुई है। उन्हें जीवनभर लोगों के जिस विरोध को झेलना पड़ा उसकी अनुगूंज निम्न पंक्तियों में है–

''धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध। **–निराला**

महादेवी वर्मा की कविताओं में भी आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। वेदना की जो प्रधानता उनकी कविताओं में है, उस पर उनके जीवन की छाया है, ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा।

2. सौंदर्य चित्रण–छायावादी कवि मूलत: प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं, किंतु उनकी सौंदर्य भावना सूक्ष्म एवं उदात्त है। उसमें रीतिकालीन स्थूलता एवं मांसलता का नितांत अभाव है। सौंदर्य चित्रण में उनकी वृत्ति बाह्य वर्णनों में उतनी नहीं रमी, जितनी आंतरिक सौंदर्य के उद्घाटन में एवं भाव दशाओं के वर्णन में रमी। नेत्रों के सौंदर्य एवं उसके प्रभाव की व्यंजना निम्न पंक्तियों में प्रसाद जी ने अत्यंत आकर्षक ढंग से की है–

कमल से जो चारु दो खंजन प्रथम।
पंख फड़काना नहीं थे जानते।।

चपल चोखी चोट कर अब पंख की।
विकल करते भ्रमर को आनंद से।। **–प्रसाद**

शारीरिक अंगों की कांति का वर्णन भी उसमें बड़े आकर्षक ढंग से हुआ है। कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन निम्न प्रकार किया है–

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।। **–प्रसाद**

यहाँ कवि ने 'सुकुमार अंग' (उरोजों) का वर्णन तो किया है, किंतु वह सांकेतिक शैली में ही किया गया है। सौंदर्य परमात्मा के द्वारा मानव को प्रदत्त सात्विक 'वरदान' है। प्रसाद के अनुसार, **''उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।''** सौंदर्य की अभिव्यक्ति सांकेतिक शैली में उन्होंने की है। श्रद्धा का सौंदर्य फूलों के पराग, सुगंध एवं मकरंद से युक्त है–

कुसुम कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।। **–प्रसाद**

3. शृंगार-निरूपण–द्विवेदीयुगीन कविता में शृंगार-निरूपण बहुत कम हुआ है और जहाँ हुआ है वहाँ भी मर्यादित रूप में ही है। छायावाद में आकर कविता में पुन: शृंगार की प्रतिष्ठा हुई। इन कवियों ने शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों के आकर्षक चित्र अंकित किए। निराला ने **'जूही की कली'** नामक कविता में प्रकृति के प्रतीकों से प्रेम व्यापारों का निरूपण किया–

निर्दयी उस नायक ने
निपट निठुराई की।
झोंकों की झाड़ियों से,
सुंदर सुकुमार देह,
सारी झकझोर डाली।। **–निराला**

पंत के काव्य में प्रेम और शृंगार भावना की बड़ी सहज अभिव्यक्ति हुई है। प्रिया का आकर्षण मन को पागल कर देता है–

''तुम में जो लावण्य मधुरिमा जो असीम सम्मोहन
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन।
नहीं जानती क्या निज बल तुम, जिन अपार आकर्षण?'' **–पंत**

वियोग शृंगार के अति भव्य चित्र प्रसाद कृत **'आँसू'** में उपलब्ध होते हैं। प्रिया के वियोग से मन की विकलता कितनी तीव्र हो गई है, इसका चित्र निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नरिद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला।। **–प्रसाद**

× × ×

रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी।। **–प्रसाद**

कविवर पंत ने भी वियोग-व्यथा का मार्मिक वर्णन अपनी कविताओं में किया है। वे तो यह मानते हैं कि कविता का जन्म ही वियोग व्यथा से हुआ होगा। उस प्रेमी की आहों ने ही कविता का रूप धारण कर लिया होगा–

''वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।।'' **–पंत**

नोट

प्रिया का ध्यान हृदय में वेदना की कसक उत्पन्न कर उसे अधीर कर देता है–

''तड़ित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर।
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर,
मुझे करता है अधिक अधीर।
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण,
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।।''

–पंत

महादेवी वर्मा के काव्य में तो विरह एवं वेदना की ही अधिकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रृंगार निरूपण छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

4. नारी भावना–छायावादी कवियों ने नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण अपनाकर समाज में उसके सम्मानीय स्थान को प्रतिष्ठित किया। रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु और उपभोग की सामग्री मात्र माना, जबकि छायावादी कवियों ने उसे प्रेरणा का पावन उत्सव मानते हुए गरिमा प्रदान की। वह दया, क्षमा, करुणा, प्रेम की देवी है और अपने इन गुणों के कारण श्रद्धा की पात्र है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुंदर समतल में।''

–प्रसाद

पंत ने **'देवि, माँ, सहचरि, प्राण'** कहकर नारी के प्रति अपने आदर का परिचय दिया। प्रसाद जी के हृदय में नारी का बहुत ऊँचा स्थान था। निम्न पंक्तियों से उनके विचारों को जाना जा सकता है–

''तुम देवि! आह कितनी उदार,
वह मातृ मूर्ति है निर्विकार।
हे सर्वमंगले! तुम महती,
सबका दुःख अपने पर सहती।।''

–पंत

निराला ने भी नारी को निराश पुरुष के हृदय में आशा का संचार करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। **'राम की शक्ति पूजा'** में राम के निराश हृदय में सीता की स्मृति मात्र से आशा का संचार होते दिखाया गया है–

''ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत।
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत।।''

–निराला

5. रहस्य भावना–छायावादी काव्य में रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने इसी कारण से 'छायावाद' का अर्थ 'रहस्यवाद' माना है। प्रायः सभी छायावादी कवियों ने अज्ञात सत्ता के प्रति 'जिज्ञासा' के भाव व्यक्त किए हैं। पंत की **'मौन निमंत्रण'** कविता में इसकी अभिव्यक्ति बहुत सुंदर ढंग से हुई है–

''न जाने कौन अए द्युतिमान,
जान मुझको अबोध अज्ञान।
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान।।''

–पंत

प्रसाद जी ने **'कामायनी'** में स्थान-स्थान पर उस अज्ञात सत्ता के अस्तित्व का बोध कराया है। पता नहीं वह अज्ञात सत्ता कौन है, कैसी है, और क्या है–

''हे अनंत रमणीय कौन तुम,
यह मैं कैसे कह सकता?

नोट

कैसे हो, क्या हो, इसका तो,
भार विचार न सह सकता।।'' **–प्रसाद**

निराला की **'तुम और मैं'** कविता में उस परमात्मा से अनेक प्रकार के संबंध जोड़े गए हैं। यदि वह हिमालय है तो मैं उससे निःसृत होने वाली गंगा, यदि वह हृदय के भाव हैं तो मैं उससे जन्म लेने वाली कविता–

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुरसरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कांत कामिनी कविता।। **–निराला**

महादेवी के काव्य में भी रहस्यवाद की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है।

6. प्रकृति चित्रण–छायावादी कवि प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। इन कवियों ने प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप करते हुए उसे हँसते-रोते हुए भी दिखाया है–

''अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर निःश्वास।
डालता पातों पर चुपचाप,
ओस के आँसू नीलाकाश।।'' **–पंत**

यहाँ वायु को ठंडी साँस भरते हुए, आकाश को रोते हुए दिखाया गया है। पंत जी ने तो प्रकृति को ही अपनी काव्य-प्रेरणा माना है और वे प्रकृति सौंदर्य को नारी सौंदर्य पर वरीयता देते हैं। **'मोह'** नामक कविता में वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि नारी सौंदर्य में आकर्षण होता है, पर वह इतना नहीं कि प्रकृति सौंदर्य की उपेक्षा करवा सके–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ 'लोचन',
भूल अभी से इस जग को! **–पंत**

पंत जी प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। प्राकृतिक सुषमा का चित्रण उन्होंने प्रकृति को आलंबन बनाकर अपनी अनेक कविताओं में किया है। वस्तुतः आलंबन रूप में प्रकृति निरूपण छायावादी प्रकृति चित्रण की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। पंत की 'बादल' कविता में आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है। 'कामायनी' में प्रसाद जी ने 'हिमालय' का निम्न चित्र अंकित किया है–

''संध्या घन माला की सुंदर,
ओढ़े रंग-बिरंगी छींट।
गगन चुंबिनी शैल श्रेणियां,
पहने हुए तुषार किरीट।।'' **–प्रसाद**

आलंबन रूप के अतिरिक्त उद्दीपन रूप में, अलंकार के रूप में, प्रतीकात्मक रूप में तथा मानवीकरण रूप में प्रकृति निरूपण छायावादी काव्य में हुआ है। **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने इसी कारण छायावाद को प्रकृतिवाद की संज्ञा देते हुए कहा है–''प्रकृति का क्षेत्र ही इन कवियों की कविता का क्षेत्र है। ऐसी स्थिति में इस कविता को यदि छायावाद की बजाय 'प्रकृतिवाद' कहें तो अधिक युक्तिसंगत होगा।''

7. दुःख और वेदना की विवृत्ति–छायावादी काव्य में दुःख और वेदना भाव की अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी तो वेदना की ही कवयित्री हैं। वे अपने वेदना विह्वल हृदय की तुलना 'मेघखंड' से करती हुई कहती हैं–

''मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।।'' **–महादेवी वर्मा**

नोट

महादेवी वर्मा के गद्य-पद्य में जो दु:खवाद और करुणा के भाव दिखाई पड़ते हैं, वे बौद्ध दर्शन के प्रभावस्वरूप माने जा सकते हैं। प्रसाद के **'आँसू'** काव्य में भी वेदना की ही कहानी है। उन्होंने अपनी पीड़ा को ही काव्य के रूप में व्यक्त किया है–

''जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।।'' **–प्रसाद**

पंत ने **'परिवर्तन'** कविता में यह स्वीकार किया है कि संसार में दु:ख की अधिकता है, यहाँ शांति जीवन पर्यन्त प्राप्त नहीं हो सकती–

''यहाँ सुख सरसों शोक सुमेरु,
अरे जग है जग का कंकाल।
वृथा रे यह अरण्य चीत्कार,
शांति सुख है उस पार।।'' **–पंत**

8. राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति–छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर भी मुखरित हुए हैं। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जो गीत योजना की है, उसमें राष्ट्रीय भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव के चित्र अंकित करते हुए देश की महिमा का बखान किया है–

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।। **–प्रसाद**

माखनलाल चतुर्वेदी के गीतों में राष्ट्रभक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर है। **'पुष्प की अभिलाषा'** में उन्होंने एक पुष्प की यह इच्छा व्यक्त की है कि उसे शहीदों के चरणों तले आने का सौभाग्य मिले–

''मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर सीस चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।''

–माखनलाल चतुर्वेदी

छायावादी कविता की इस राष्ट्रीय चेतना को देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि अपने युग से नितांत असंपृक्त नहीं थे।

> *नोट्स* छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरांत हिंदी साहित्य में हुआ।

9. शैलीगत प्रवृत्तियाँ–छायावादी काव्य विषय-वस्तु एवं शिल्प–दोनों ही दृष्टियों से नवीनता लिए हुए है। लाक्षणिक भाषा का प्रयोग, प्रतीकात्मक शैली, उपचारवक्रता एवं नवीन अलंकार विधान के कारण इस काव्य में शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है। पंत की अग्र पंक्तियों में प्रतीकात्मकता एवं लाक्षणिकता को देखा जा सकता है–

अभी तो मुकुट बंधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ।
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुंबन शून्य कपोल।।
हाय रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार।
वातहत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार।। **–पंत**

यहाँ सुकुमार लता उस नवयुवती का प्रतीक है जिसका सुहाग उजड़ गया है। सिंदूर का अंगार बनना उसके वैधव्य

को सूचित करता है, अतः भाषा में लाक्षणिकता का समावेश है। छायावादी काव्य में पारंपरिक अलंकारों के साथ-साथ विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना और विरोधाभास अलंकार की प्रचुरता से प्रयुक्त किए गए हैं। अमूर्त उपमान भी इस काव्य की विशेषता है। मुक्तक गीति शैली और चित्रोपम भाषा के साथ-साथ नवीन छंद विधान भी इस काव्य की अपनी विशेषताएँ हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छायावाद हिंदी काव्य का गौरवपूर्ण अध्याय है तथा प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनके योगदान से हिंदी साहित्य को श्री समृद्ध प्राप्त हुई है।

6.1.3 उत्तर-छायावाद

वास्तव में इस अवधि के छायावाद का इतिहास मूलतः निराला और पंत के काव्य-विकास का इतिहास हैं। यों छायावाद की शैली में मिलने वाले और भी बहुत-से लोग आए, किंतु उनमें अपना कोई उन्मेष नहीं। वे इस धारा को स्फीति भले ही दे सके हों, कोई वैशिष्ट्य नहीं प्रदान कर सके। इसलिए उनकी चर्चा अनपेक्षित है। महादेवी जी की 'दीपशिखा' उनकी रचनाओं के क्रम में ही अगली कड़ी के रूप में आई, इसलिए उन्हें भी पहले की महादेवी से मूलतः अलग नहीं किया जा सकता और फिर उसके बाद तो वे मौन हो गई।

निराला—निराला के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी संभावनाओं से निर्मित हैं। किंतु उनमें एक बहुत बड़ी शक्ति का विकास होता गया है—वह है लोकोन्मुखता। निराला की छायावाद कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारंभ से ही झलकता रहा है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक-सम्पृक्त रहा है, इसलिए वे स्वभावतः प्रेम-सौंदर्य के बोध के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को अपने में समेट लेते हैं और व्यक्तिगत प्रणय के ही गीत न गाकर लोक-जीवन के सुख-दुःख को, यातना और संघर्ष को गहराई से उभारते हैं और उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न रहकर प्रायः लोकगंध से उष्ण हो उठती है। निराला की यह विशेषता प्रस्तुत अवधि में अधिक विकसित होती गई है उनकी यह लोकोन्मुखता दो रूपों में आई—1. छायावादी से एकदम अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, 2. उनकी छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म-पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नए पत्ते' की अधिकांश कविताएँ इस प्रकार की कविताएँ हैं। इनमें प्रगतिशीलता अपने दार्शनिक रूप में नहीं हैं, बल्कि लोकानुभूतियों के रूप में है। इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है। इनमें लोककथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार निराला इस बात को समझते थे कि लोक-जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य, व्यापार में नहीं लिया जा सकता; उसके लिए उसकी भाषा भी आवश्यक होती है दूसरी ओर, पंत इस बात को समझते हुए भी इसे चरितार्थ नहीं कर सके।

'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' आदि में संकलित इधर की छायावादी कविता में निराला ने एक ओर तो स्वानुभूतिपरक गीत लिखे हैं तथा दूसरी ओर विजयलक्ष्मी पंडित, प्रेमानंद जी, संत रविदास, प्रसाद जी, महात्मा बुद्ध, आदि विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं। ये गीत कई तरह के हैं—इनमें प्रेम की संवेदना भी है और प्रार्थना-परकता भी। अन्य प्रकार की मानवीय संवेदनाएँ भी इनमें व्यक्त हुई हैं। ये सभी बातें निराला की 1938 ई. से पहले की कविताओं में भी हैं, उनका अनुपात भले ही थोड़ा भिन्न हो। 'तुलसीदास' इस अवधि की इनकी विशिष्ट देन है। इसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प है। निराला की इस अवधि की नई देन हैं—उनकी लोकवादी कविताएँ, जो वास्तव में कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती वरन् वस्तु और भाषा के एक नए प्रयोग के रूप में ही महत्त्व प्राप्त करती हैं। ये कविताएँ एक ठहराव को तोड़ती हैं और कवि को पुनः समग्र भाव से जन-जीवन से जोड़ती हैं। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनानुभूति के जो स्वर उभरे उनमें टूटन और पराजय भी थी। टूटन और पराजय की यह प्रवृत्ति कवि को भक्ति की ओर उन्मुख करती है। साथ ही कवि का असंतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव का कुछ ऐसा मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएँ उलझें प्रभाव से ग्रस्त हो गई हैं।

सुमित्रानंदन पंत—पंत जी के इस काल के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाये तो ऐसा प्रतीत होगा कि ये अपने चिंतन और विषय में अधिक विकासशील रहे और चूँकि ये अपने संस्कार और भाषा में मूलतः छायावादी

ही रहे, अतः यह कहा जा सकता है कि पंत के माध्यम से छायावाद को इस अवधि में नया चिंतन और नया विषय-जगत् प्राप्त हुआ है। सन् 1936 में 'युगांत' की घोषणा कर पंत ने 1939 में 'युगवाणी' और 1940 में 'ग्राम्या' की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन-जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए। यहाँ निराला और पंत के अंतर को समझ लेना चाहिए। निराला ने चिंतन के माध्यम से नहीं, संवेदना और अनुभव के माध्यम से जन-जीवन को ग्रहण किया; इसलिए उनकी कविताओं में मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं पा सका, वहाँ जन-जीवन अपने समस्त संवेदन के साथ उभरा। दूसरी ओर पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्तर पर स्वीकार किया। वे प्रायः मार्क्सवादी सिद्धांतों को ही व्यक्त करते रहे हैं–

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्त्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अंतर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर परिवर्तन।

कहना न होगा कि कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि से आलोक में गाँव के जीवन की विविध यथार्थ-छवियों का बड़ा सुंदर चित्र अंकित किया है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि कुशल शिल्पी पंत ने गाँव के जीवन-यथार्थ को जितना उसके रंग-रूप में पकड़ा है, उतना भीतर की चेतना में नहीं।

यह बात तब और भी स्पष्ट हो उठती है जब पंत जी 'ग्राम्या' से आगे की यात्रा में अरविंद-दर्शन से प्रभावित हो उठते हैं। बीच में प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर भटके हुए उनके विचार पुनः आध्यात्मिक लोक की ओर उठने लगते हैं। इस प्रकार विचार के स्तर पर छायावाद को एक नई दिशा और समृद्ध आधार प्राप्त होता है। कवि मार्क्स के भौतिकवाद से संतुष्टि नहीं है, किंतु फिर भी उसे आवश्यक मानता है। कवि आरंभ से ही मनुष्य-मात्र के सुख, प्रेम, शांति का स्वप्न देखता रहा है। इस वायवी स्वप्न को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद में उसे आलोक दिखाई पड़ा, किंतु पुनः उसे ऐसा लगा कि मार्क्सवाद एकांगी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। अतः कवि उसे आवश्यक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानता और अरविंदवाद में भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वयं ढूँढ़ता है। कवि ने 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कृतियों में इसी समन्वय को स्वर दिया है, इस विकास-यात्रा में पंत का काव्य-पक्ष आहत हो गया है, धारणा-पक्ष उठता गया है। कारण यही है कि वे मानव-समाज की समस्याओं उनके समाधान और नए विचारों को धारणा और आकांक्षा के स्तर पर स्वीकार करते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। इसलिए चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे अरविंदवाद–वह पंत-काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक प्रायः नहीं हुआ है।

महादेवी वर्मा–महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरनेवाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है, यह वेदना विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ आलोक पा सका है–आशा का, उल्लास का, मिलन का। यथा–

(अ) *सब बुझे दीपक जला लूँ।*
घिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(आ) *हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन*
अगरु धूम सी सांस सुधिगंध सुरभित।

महादेवी में गीतिकाव्य के उत्कर्ष की सुंदर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुंठित कर देता है। कवयित्री के पास सीमित संवेदनाएँ हैं, इन्हें वह भिन्न-भिन्न प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त करती है। ये प्रतीक और रूपक भी बहुत सीमित और अभिजात हैं। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी आभास से लिपटकर निश्चय ही नए अर्थ का विस्तार करती हैं, किंतु साथ ही अपनी लौकिक मूर्त्तता, प्रत्यक्षता और तीव्रता खो देती हैं। दीप, चंदन, मंदिर, क्षितिज, आकाश, करुण, धूल, मेघ, विद्युत्, सागर आदि प्रतीक और शब्द बार-बार आते हैं और रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन निजी और छायावादी

सीमाओं के बावजूद महादेवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति। रहस्य और संकोच के आवरण के बावजूद कवयित्री की अंतरंग निजता गीतों में बहती रहती है। जहाँ कहीं वह पारदर्शी हो जाती है या जहाँ समग्र दृश्य सिमटकर उसी की ओर संकेत करने लगते हैं, वहाँ वे बहुत उत्कृष्ट गीतों की रचना करती हैं। महादेवी की दूसरी विशेषता है–सूक्ष्म चित्रात्मकता। ये चित्र रूपजगत् और भावजगत्–दोनों के हैं किंतु रूपजगत् के चित्र भी कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही नियोजित होते हैं। लोक-परिवेश और लोकभाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करनेवाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द-चयन, पद-संतुलन, बिंब-ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर-लय में बहुत विशिष्ट हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री–शास्त्री जी मूलत: गीतकार हैं और इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। ये गीत छायावादी गीतों से अधिक खुले हुए अवश्य हैं, किंतु इनकी संवेदना और गूंज-अनगूंज प्राय: वैसी ही है। परंपरागत दर्शन संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तर छायावाद युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना आकर्षण है। 'रूप अरूप', 'शिप्रा', 'मेघगीत' और 'अवंतिका' इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त उत्तर-छायावाद के अन्य उल्लेख्य कवि हैं–रामकुमार वर्मा ('अंजलि', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा', 'चंद्रकिरण' और 'एकलव्य') सुमित्राकुमारी सिन्हा, ('विहाग', 'पंथिनी') और विद्यावती कोकिल ('अंकुरिता', 'सुहागिन')।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... में वैयक्तिक सुख-दु:ख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है।
2. छायावादी कवियों ने नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण अपनाकर समाज में उसके सम्मानीय स्थान का .... किया।
3. छायावादी काव्य में .... प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से उपलब्ध होती है।
4. .... के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी संभावनाओं से निर्मित हैं।

6.1.4 व्यक्तिवादी गीति कविता

इस धारा के कवियों तथा छायावादी कवियों में दृष्टि और विषय की बड़ी समानता है। इन कवियों की भी दृष्टि रोमानी है, वस्तुजगत् के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया अत्यंत भावात्मक है। ये भी वस्तुजगत् से नहीं, वस्तुजगत् की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुख के आवेग से संबद्ध थे; इसलिए इनकी कविताओं में भी भयंकर आत्म-संपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। इनका भी विषय मूलत: सौंदर्य और प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास और विषाद की अनुभूति है। इनकी भी अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम गीत ही है क्योंकि इनके भी काव्य-विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। किंतु इन कृतियों में छायावादी कविता जैसा संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता नहीं है, साहस के साथ सीधे साफ तौर पर अपने निजी प्रेम-संवेग तथा सुख-दु:ख को कहने की आकुलता है। इनकी वेदना छायावाद की घिसती हुई वेदना की तरह सामान्य नहीं, वरन् निजी प्रतीत होती है। अत: उससे अनुभव का एक विशिष्ट बिंब उभरता लक्षित होता है। यह अवश्य है कि इनके ये अनुभव-बिंब छायावाद के सुंदर अनुभवों-बिंबों के समान सूक्ष्म, संश्लिष्ट और गहरे नहीं हैं, किंतु जो कुछ है वह छल नहीं ओढ़ता, उधड़े ही रूप में उभरकर सहज प्रवाह का सुख देता है। छायावादी कविता भी प्राय: 'मैं' के माध्यम से अपना अनुभव उभारती है और व्यक्तिवादी गीतिकविता भी। किंतु छायावाद का मैं संकोच या मर्यादा के आतंक का अनुभव करने के कारण तीव्रता से आलोकित होने के स्थान पर मंद-मंद दीप्त होता है जबकि व्यक्तिवादी गीतिकविता का 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से फूट चलता है।

नोट

यदि हम इस धारा में आनेवाली कृतियों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि लौकिक प्रेम इनकी केंद्रीय वृत्ति है। प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन, असंतोष आदि का सघन स्वर इन कविताओं में मुखर हुआ। परिस्थिति, अनुभव और संस्कार के अनुसार कवियों के स्वरों में भिन्नता अवश्य है, किंतु मूल वृत्ति में अंतर नहीं। इनका प्रेम किसी लौकिक सौंदर्य-आलंबन पर ठहरा होने के कारण अधिक मूर्तरूप धारण करता है। इनका हर्ष-विषाद न तो आदर्श का छल ओढ़ता है और न धरती-आकाश के बीच झुकता है, वह शुद्ध धरती पर यात्रा करता है—धरती के परिवेश के बीच, और अपने-अपने रूप में बहुत ही उघड़ा हुआ होता है। बच्चन के 'निशा-निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' काव्य यदि प्रेम के अवसाद के घनत्व को मुखर करते हैं तो 'मिलन-यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी हैं। यह स्थिति अंचल, नवीन, दिनकर आदि की इस धारा में आनेवाली कृतियों में भी देखी जा सकती है।

वास्तव में इस धारा की कृतियों का मूल स्वर प्रेम है और प्रेमजन्य व्यथा तथा उदासी यहाँ से वहाँ तक व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद वृत्ति सौंदर्य और प्रेम की भूख लिए उड़ती थी, वह भूख तृप्त नहीं हो पाती थी, स्वच्छंद उड़ान सामाजिक इतिबंधों से टकराती थी और टूटकर विरह की पीड़ा बन जाती थी। कवि अनुभव करता था कि संसार को उसके ये गान वासना के गान लग रहे हैं, इसलिए उसे स्वीकार्य नहीं हैं। किंतु, कवि इन्हें अपने अनुभव का गान मानता था। इन अनुभव-सत्यों को उसका स्वच्छंद हृदय अनियंत्रित भाव से गाना चाहता था। बच्चन ने अपने और समाज के इस तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में कहा है—

(अ) *कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।*

(आ) *वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी?*

(इ) *शत्रु मेरा बन गया है छलरहित व्यवहार मेरा।*

इस धारा की कृतियों में निराशा और उदासी का जो स्वर है, वह केवल प्रेममूलक नहीं है, वह जीवन के अन्य संदर्भों में भी मुखर हुआ है। देश की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों, आर्थिक रिक्तता के भयंकर अहसास से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानस बार-बार अपने को टूटता हुआ पा रहा था। उसका व्यक्तिवादी आक्रोश-स्वर सारी असुंदर वस्तुओं को अस्वीकार करता हुआ, और स्वयं कहीं स्वीकृत न होता हुआ, अपने ही में लौट आता था। वह आत्मपीड़न, टूटन, कुंठा की एक नई पर्त लपेट लेता था और उसे गाता चलता था। इनके पास जीवन-दृष्टि नहीं थी—न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि और न नवीन समाजवादी दृष्टि। ये कवि अपने अनुभवों से परिचालित हो रहे थे, उनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनकी दृष्टि रोमानी थी, अत: वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके, न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन-दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मृत्यु की छाया और नियति-बोध से ग्रस्त हैं। ये अनुभव जहाँ अपनी तीव्रता से सूक्ष्म, परंतु खुले हुए बिंबों की रचना में एक नए साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करते हैं वहाँ अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और दुहराव में क्षयोन्मुख दिखने लगते हैं और जहाँ ये काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाते हैं वहाँ अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाते—

कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं। (एकांत संगीत)

वह चारों ओर अवसाद देखता है। जो अवसाद है, वह खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि के साथ ईश्वर नहीं है, देवता नहीं है, रूढ़ समाज नहीं है, संस्था नहीं है; इसलिए वह किसी प्रकार के आश्रय का आभास नहीं पाता, उसे यदि कोई सहारा नजर आता है तो केवल प्रेयसी से मिलन का, किंतु वह भी कहाँ हो पाता है? इसलिए कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष, बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल और निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की व्यक्तिवाद अनुभव-यात्रा के दो परिणाम दिखाई पड़ते हैं—एक तो यह विश्वास कि जीवन क्षणभंगुर है; इस अवसाद के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो, आगे-पीछे मत

देखो। दूसरा यह कि कवि अपने गम को गलत करने के लिए मधु का सहारा लेता है; और सारे सहारे तो छूट चुके हैं। इतना ही नहीं, वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास को उत्तेजना को तीव्र करने के लिए भी मधु का पान करना चाहता है। यह मधु धीरे-धीरे इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन-सत्यों का प्रतीक बन जाता है, जैसा कि 'मधुशाला', 'मधुबाला' आदि में हुआ है।

इस धारा की प्रमुख कृतियों में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता का-सा विद्रोह ध्वनित हुआ है, जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल', 'नरेंद्र शर्मा के 'अग्निशश्य', अंचल की 'किरण बेला', शंभुनाथ के 'मन्वंतर' आदि में। इन कवियों में लक्षित होनेवाला विद्रोह का स्वर व्यक्तिगत अस्वीकृति तथा सामाजिक असंतोष—दोनों रूपों में है। लेकिन इस धारा का समस्त विद्रोह-स्वर मूलतः समान है। उसमें व्यक्तिगत भावावेश अधिक है, सामाजिक दर्शन और रचनात्मक चिंतन कम।

वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्तिमूलक सादगी उसकी एक बहुत बड़ी देन है। कवि सीधे-सादे शब्दों, परिचित चित्रों और सहज कथन-भंगिमा के द्वारा अपनी बात बड़ी सफाई से कह देता है। इसलिए कवि की शक्तियाँ और अशक्तियाँ दोनों बड़ी स्पष्टता से उभरती है। शक्तियाँ अस्पष्ट बिंबों में उलझकर अपनी तीव्रता और प्रभाव नहीं खोती और अशक्तियाँ रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर महान् होने का आभास नहीं दे पातीं। यद्यपि इन कवियों की संवेदना व्यक्तिवादी है, किंतु वे अपने को जिस माध्यम-परिवेश, प्रकृति-चित्र, बिंब उपमा, भाषा आदि—के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा अति परिचित होता है, लोक के निकट का होता है, अतएव मांसल और मूर्त प्रतीत होता है। यद्यपि इस धारा की कविता की भी भाषा मूलतः संस्कृतनिष्ठ है, किंतु उसके शब्द या पद हमारे निकट के लगते हैं। बोलचाल के शब्द और मुहावरे भी इनमें पर्याप्त मात्रा में आए हैं। कुल मिलाकर यह जीवंत भाषा प्रतीत होती है।

हरिवंशराय 'बच्चन'—बच्चन इस धारा के सर्वोत्तम कवि हैं। इस धारा की समस्त संभावनाएँ और सीमाएँ बच्चन में पूँजीभूत है। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं इसलिए उनकी जिन कृतियों में आत्मानुभूति की सघनता है, वे अपने प्रभाव में तीव्र और मर्मस्पर्शी हैं। जिन कृतियों में आत्मानुभूति के साथ अवधारणाओं का संयोग होता चला है, उनमें प्रभाव की अन्विति टूट-टूट गई है। लगता है कवि अपनी बात कहने के बाद उसे 'जनरलाइज़्ड' करने लगता है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' और 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से जहाँ गीतिकाव्य की उपलब्धियाँ है वहाँ अवधारणाएँ अनुभूतियों के रंग में भीग गई हैं। कवि ने स्वानुभूतिजन्य सुख-दुःख, सौंदर्य और प्रेम के उन्मुक्त सहज गीत गाए हैं, किंतु उसका स्वर यहीं तक सीमित नहीं है। वह सामाजिक विसंगतियों का भी चित्रण करता है तथा उनके प्रति विद्रोह भी करता है।

प्रार्थना मत कर मत कर मत कर
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिफल
मनुज पराजय के स्मारक हैं
मठ, मस्जिद, गिरजाघर। (एकांत संगीत)

किंतु लगता है विद्रोह या सामाजिक सत्य-चित्रण बच्चन के स्वभाव में नहीं अंटते, इसके लिए जिस सामाजिक जीवन-भोग और बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह बच्चन या इस धारा के किसी कवि में नहीं है। बच्चन के गीत जहाँ अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के कारण गीतिकाव्य को नई गरिमा प्रदान करते हैं वहाँ कहीं-कहीं उत्तेजना, भाषा के सपाटपन, शब्दों, बिंबों के अपव्यय तथा स्फीति के कारण बहुत प्रभावहीन सिद्ध होते हैं। जैसे 'जो बीत गई सो बीत गई' गीत का आरंभ एक अवधारणा से होता है और इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने अनावश्यक रूप से तीन चित्र लिए हैं। कहा जा सकता है कि बच्चन के काव्य-सौंदर्य का धरातल बहुत विषम है—कहीं काफी ऊँचा, कहीं नीचा या सपाट। अपनी धारा के अन्य कवियों से बच्चन इस बात में अलग हैं कि जहाँ और लोगों ने बाद में अपने को दुहराया है, वहाँ बच्चन ने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़कर यथार्थ की नई दुनिया में प्रवेश किया है और उसके अनुकूल भाषा की तलाश की है।

नोट

नरेंद्र शर्मा–नरेंद्र शर्मा के गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी चित्रात्मकता और आत्मीयता है, उनके गीतों का सुख-दुःख सीधे-सीधे प्रेम-पात्र को निवेदित है, बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। इन गीतों का एक परिवेश होता है और वह परिवेश कवि का ही नहीं, हमारा भी निकट का परिचित होता हैं वह कवि के अनुभवों को जीवंतता प्रदान करता है। कुल मिलाकर नरेंद्र शर्मा के गीत अधिक अपने मालूम पड़ते हैं। प्रकृति का बहुत चटक और सुपरिचित परिवेश इन्हें घेरे रहता है। शर्मा जी के अपने आत्मीय क्षेत्र हैं–प्रकृति-सौंदर्य, मानव-सौंदर्य और उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियाँ–

फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता सांझ सवेरा,
मैंने भी चाहा फिर आए
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।
कच्चे धागे सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया (*पलाशवन*)

नरेंद्र शर्मा में भी सामाजिक यथार्थ का चित्रण तथा विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोही स्वर है। यद्यपि यहाँ भी कवि की रूमानी दृष्टि ही प्रधान है तो भी उसका स्वर बच्चन की अपेक्षा अधिक वस्तुवादी और अनुभूतिप्रवण है तथा उसमें समाजवादी चिंतन का पुट भी है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'–अंचल का जन्म 1 मई, सन् 1915 को किशनपुर में हुआ था। एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त करके पहले ये इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज़ एंड रिसर्च (जबलपुर) में हिंदी-विभागाध्यक्ष रहे, फिर राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय रायगढ़ के आचार्य हुए। इन्होंने अपने तीव्र रूमानी संवेदन को लेकर अपने अंतर की यात्रा तो की ही है, ये समाज में भी घूमे हैं। इसलिए इनके सामाजिक यथार्थवाले काव्यों में रूमानी संवेदना की ही प्रधानता लक्षित होती है। रूप की उद्दाम आसक्ति, उद्दाम वासना, उद्दाम पीड़ा और उद्दाम जिजीविषा ने इनके काव्य की प्रकृति की निर्माण किया है। वासना की उद्दामता कविता को एक ओर सामाजिक संयम से काट देती हैं, दूसरी ओर रचनात्मक स्तर पर उसे अनुभूति की गइराई और संश्लिष्टता की अपेक्षा उत्तेजना अधिक देती है। उत्तेजना या स्नायविक तनाव अंचल में इस प्रकार हावी है कि वे निरंतर किसी-न-किसी रूप में अपनी कविताओं में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे हैं।

भगवतीचरण वर्मा–इनका जन्म सन् 1903 में शफ़ीपुर, ज़िला उन्नाव में हुआ। प्रयाग में शिक्षा प्राप्त कर पहले ये पत्रकार बने फिर स्वतंत्र भारत में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। वर्मा जी की कविताओं में कई प्रकार की प्रवृत्तियों का संगम मिलता है। इनमें परंपरा के साथ युग-बोध, वैयक्तिक सुख-दुःख, हर्ष-विवाद और आशा-निराशा के साथ सामाजिक विद्रोह तथा निम्न वर्ग का पीड़ाबोध, अभिजात भाषा के साथ ऊर्जामयी सामान्य भाषा का अस्तित्व लक्षित होता है। फिर भी मस्ती, आवेश और अहं इनकी कविताओं के केंद्र में हैं। 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' और 'एक दिन' इनकी काव्य-कृतियाँ है।

गोपाल सिंह नेपाली–(1913-1963) नेपाली जी बेतिया (बिहार) में पैदा हुए थे। काफी समय तक फिल्मी दुनिया से संबद्ध रहे। नेपाली के प्रारंभिक गीत प्रकृति के मार्मिक किंतु सीधे-सादे चित्रों से संपन्न होने के कारण अन्य कवियों की कविताओं से अपने को साफ अलगा लेते हैं। इनके गीतों में चित्रित प्रेम-संवेग का भी अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी सादगी, माधुर्य और प्रवाह है। 'पंछी', 'उमंग', 'रागिनी', 'पंचीम', 'रिमझिम', 'नवीन' आदि इनकी काव्य-कृतियाँ है।

आर.सी. प्रसाद सिंह–आर.सी. प्रसाद सिंह में छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इनकी कविता के केंद्र में नारी है। नारी के रूपाकर्षण, प्रेम, प्रेमजन्य उत्सुकता, स्नायविक उत्तेजना, निराशा, वेदना आदि के स्वरों से निर्मित इनकी कविताएँ अपनी धारा की कविताओं का ही रूप उजागर करती है। 'कलापी', 'संचयिता', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य' और 'प्रेमगीत' इनकी काव्य-कृतियाँ है।

शंभुनाथ सिंह–शंभुनाथ सिंह की काव्य-यात्रा अत्यंत विकासशील रही है। 'रूप-रश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल' और 'देवालोक' में ये छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीतिकविता के कवि रहे हैं। 'मन्वंतर' प्रगतिवादी

चेतना से प्रभावित है और बाद की कृतियों में 'नई कविता' का स्वर स्पष्ट है। व्यक्तिवादी गीतिकविता-धारा में आने के बावजूद शंभुनाथ सिंह के गीतों में अपना सौंदर्य निखर आया है जो रूप-विधान, प्रणय-संवेदना, भाषा और छंद में लक्षित होता है।

6.1.5 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

'राष्ट्रीय' शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है जिसमें जाति, संप्रदाय, धर्म, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर क्रमश: एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करनेवाली समस्त जातियों, भिन्न-भिन्न भू-खंडों, संप्रदायाओं और रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभरता गया है। कहना न होगा कि अंग्रेज़ों के आने के समय तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यावहारिक रूप से भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ। अंग्रेज़ों ने समूचे देश में एक शासन स्थापित किया, जिससे पूरे देश के लोग एक राजा की प्रजा हुए और पूरे देश को समान यातना का अनुभव हुआ। अपने-अपने में बँटे हुए लोगों को यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं, वे चाहे किसी जाति या धर्म के हो, अंग्रेज़ों के गुलाम है और फिर जब अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध मुक्ति का अभियान आरंभ हुआ तो मुक्ति की चेतना किसी धर्म या प्रदेश में सीमित न रहकर पूरे देश में व्याप्त हुई। इस प्रकार आधुनिक काल में जो राष्ट्रीयता का स्वरूप उभरा और विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं—पूरे देश में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना, समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेज़ी शासन से उत्पन्न यातना का समान अनुभव तथा स्वाधीनता आंदोलन और उसका देशव्यापी प्रसार।

राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले पश्चिम में हुआ, विशेषतया इंग्लैंड में। किंतु वहाँ पराधीनता की समस्या नहीं थी, इसलिए वहाँ राष्ट्रीयता के जो तत्व उभरे, वे भारत में उभरने वाले तत्त्वों से थोड़े भिन्न थे। भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतंत्र पश्चिमी देशों में स्व-विकास का। भारत एक विशाल देश है, जहाँ अनेक संस्कृतियों, भाषाओं, रीति-रिवाजों के लोग रहते हैं। ऊपर-ऊपर वे एक-दूसरे से अलग-अलग दिखते हैं, परंतु सबका मूल स्रोत एक ही है, जो आंतरिक रूप से सबको बाँधता है। वह मूल स्रोत है—अपनी प्राचीन संस्कृति, प्राचीन आध्यात्मिक सत्य। कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ उभरने वाली राष्ट्रीयता में तीन मुख्य बातें लक्षित होती हैं—1. भारतीय पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास, 2. पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना के उद्धार के लिए तथा उसमें एकता और स्वाभिमान का बल फूँकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतीकरण, 3. उपयोगी आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुनिर्विचार तथा पुनर्गठन। कहना न होगा कि स्वाधीनता-प्राप्ति तक प्रथम दो तत्व बहुत प्रबल रहे, किंतु स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् तीसरे तत्व की ही सार्थकता शेष रह गई। किंतु उससे बड़ी बात जो आई, वह थी देश की राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा और विकास करने का प्रयास तथा नवीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न समस्याओं से जूझने और उनका समाधान खोजने की चेष्टा। वर्तमान समस्याओं और प्रश्नों के संदर्भ में जब हम अपने अतीत गौरव को देखते है तब उससे अभिभूत होने के स्थान पर उसका पुनर्मूल्यांकन करते हैं और विचार के स्तर पर हम उससे अपने को जोड़ते या काटते हैं, उसके भीतर निहित द्वंद्वों, विसंगतियों और मानवीय संवेदना की तलाश करते हैं। जहाँ तक आधुनिक हिंदी-कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि वह भारतेंदुकालीन कविताओं से प्रारंभ होती है। किंतु राष्ट्रीयता का स्वरूप तक से लेकर आज तक विकसित होता रहा है। आरंभ में छोटे-मोटे दु:ख-दर्दों, सहज भावात्मक प्रतिक्रियाओं तथा अतीत-स्मरण के रूप में लक्षित होने वाली राष्ट्रीयता धीरे-धीरे जटिल और संश्लिष्ट होती गई तथा अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनों से संपन्न होती चली गई। नई-नई राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उसे जटिल रूप प्रदान किया। द्विवेदी-काल तक भारतीय राष्ट्रीयता बहुत-कुछ हिंदू राष्ट्रवाद के रूप में दिखाई पड़ती है। इसका कारण सायास हिंदू राष्ट्रवाद का प्रसार नहीं था, वरन् उस भारतीय दृष्टि का अभाव था, जो गाँधी के व्यक्तित्व में उभरकर आई।

प्रस्तुत कालावधि में आने वाली कृतियों पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्रीयता के सारे रूप कहीं खंडित रूप में, तो कहीं संश्लिष्ट रूप में इनमें दिखाई पड़ते हैं। राष्ट्रीयता का सबसे स्थूल रूप, वह है—विदेशी शासन के

नोट

अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन-यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण। यह क्रिया बहुत स्थूल रूप में भी हो सकती है और बहुत सूक्ष्म तथा संश्लिष्ट रूप में भी। इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताओं का महत्त्वपूर्ण स्तर प्रस्तुत अविध में दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में सुनायी पड़ता है। वास्तव में प्रेमचंद के उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय जीवन को जकड़ती हुई विदेशी सत्ता, सामंतवाद और महाजनी सभ्यता के जिस जटिल और बुनियादी स्वरूप को उभारा गया है, उसे भावुकता से संचालित इस प्रकार की राष्ट्रवादी कविताएँ मुखर नहीं कर सकी हैं। इनमें वस्तुस्थिति की सही व्याख्या के स्थान पर भावुक प्रतिक्रिया है। इस संदर्भ में एक बात अवश्य लक्षित करने की है कि 1938 ई. के आस-पास के राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार लक्षित होता है। छायावाद-काल में गाँधी जी के प्रभाव में आत्मपीड़न तथा अहिंसाजन्य नरम प्रतिरोध दिखाई पड़ता है, किंतु वामपंथी दलों के उदय, समाजवादी सिद्धांतों के प्रचार तथा विदेशी शासन से झूठे वायदों और अधिकाधिक कठोर, विषम एवं जटिल होती परिस्थितियों के कारण साहित्य का स्वर अधिक उग्र, यथार्थवादी और लोकोन्मुख होता गया। दूसरी बात यह हुई कि प्रगतिवाद के प्रभाव से देश के भीतर बनते हुए शोषकों तथा शोषितों के अनेक वर्गों की पहचान होती गई। लड़ाई केवल अंग्रेज़ी सत्ता से ही नहीं है बल्कि सामंती महाजनी सभ्यता और उनके प्रतिनिधि देशी शोषकों से भी है जो अपने ही देश की जनता के लिए अपने-अपने ढंग से भयंकर शोषण के अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर दिनकर में अधिक उभरकर आया। कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद ने भारतीय राष्ट्रीयता को अधिक प्रत्यक्ष किया, उसे आकाश से धरती पर उतारा, उसे जन-जीवन से जोड़ा।

राष्ट्रीयता का संबंध देश के स्थूल सुख-दुःख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है, वरन् उसी से अधिक होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात् नव-नव परिस्थितियों में नए-नए कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़ती रहती है। संस्कृति का संबंध इसी आत्मा या चेतना से होता है यह संस्कृति जहाँ इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहाँ वर्तमान चेतना से स्पंदित होकर हमारा जीवन बन जाती है। प्रतिभावान् और नव-दृष्टि-संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन-संदर्भों में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकार किया है। यह प्रयास प्रस्तुत अवधि के पूर्व रचित महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों—'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रिय-प्रवास', 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा' आदि—में भी लक्षित होता है।

प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं—'कुरुक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी', 'विक्रमादित्य' आदि। इनके अतिरिक्त 'इतिहास के आँसू' की फुटकल कविताओं को भी इस संदर्भ में देखा जा सकता है। इन कृतियों में वर्तमान जीवन-प्रश्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष अंकन-आकलन तो अवश्य है, किंतु उन्हें परिणति देनेवाला स्वर भारतीय है, अर्थात् भारतीय संस्कृति के किसी उदात्त स्वर की तलाश ही इन प्रश्नों के बीच भटकती है।

मैथिलीशरण गुप्त—गुप्त जी इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। कवि ने अपने समय की समस्त राष्ट्र चेतना को अपने शब्दों में स्वर दिया है। काव्यात्मक दृष्टि से यह स्वर बड़ा ही विषम है, कहीं गहन, कहीं एकदम विवरणात्मक। फिर भी, जहाँ अपने युग को उसके बहुरंगी रूप में पकड़ने का प्रश्न है, गुप्त जी बहुत जागरूक कवि रहे हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन—इन दोनों कवियों में बहुत साम्य है। यों नवीन जी सौंदर्य और प्रेम की कविताएँ लिखने के कारण छायावादी कवियों के समीप पहुँच जाते हैं, किंतु जहाँ तक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का प्रश्न है, इन दोनों की प्रवृत्तियाँ समान दिखाई पड़ती है। दोनों का संबंध मूलतः राष्ट्र की तत्कालीन अवस्था से है, दोनों ने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रेजी शासन के अत्याचारों, स्वाधीनता-सेनानियों के अदम्य उत्साह, कारागार-यात्रा और उनकी बेबसियों आदि के चित्रण में ही अपनी व्यस्तता दिखाई है। सांस्कृतिक पक्ष उनसे प्रायः छूट ही गया है। वर्तमान के संदर्भ में अतीत के पुनर्परीक्षण, संक्रांत मूल्यों के आकलन, वृहत्तर मानवीय प्रश्नों और संवदेनाओं के अनुभव में इनका मन उतना रम नहीं सका है।

रामधारी सिंह दिनकर—इस धारा के कालाविधि के सबसे सशक्त कवि 'दिनकर' (1908-1974) हैं। इनका जन्म सिमरिया (जिला मुंगेर) में हुआ था इन्होंने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। ये क्रमशः एक हाई स्कूल के

प्रधानाध्यापक, बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार-विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर के कॉलेज में हिंदी-विभागाध्यक्ष, राज्यसभा के सदस्य, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा भारत सरकार के हिंदी-सलाहकार रहे। दिनकर में संवेदना और विचार का बड़ा सुंदर समन्वय दिखाई पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम-सौंदर्यमूलक कविताएँ हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएँ, सभी कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। दिनकर में आरंभ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखाई पड़ती है, इसलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है—व्यक्तिगत प्रेम-सौंदर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्तर-छायावादी वैयक्तिक कविता की कुंठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है—अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समताओं आदि के ही रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नए जीवन-संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबारकर चिंतन परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया; साथ ही इस राष्ट्रीयता के सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा। यह विकास तभी संभव है जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से वस्तुस्थिति की तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुंदर समन्वय हुआ है—

कर पाता यदि मुक्त हृदय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मंत्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के। (*कुरुक्षेत्र*)

सियारामशरण गुप्त—गुप्त जी और दिनकर के समान सियारामशरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियों में सर्वत्र गाँधीवाद की अभिव्यक्ति दिखती है। देश की ज्वलंत घटनाओं और समस्याओं का इन्होंने बड़ा जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है, किंतु संस्कृति के उदात्त तत्वों के प्रति गहरी आस्था रखनेवाले सियारामशरण जी इन घटनाओं, अवस्थाओं और समस्याओं को तात्कालिक तथ्य के रूप में न देखकर उन्हें वृहत्तर मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं और संदर्भों से जोड़ देते हैं। इसलिए इनके काव्यों की पृष्ठभूमि अतीत हो या कि वर्तमान, उनमें आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद्व का समन्वित रूप उभरा है। सियारामशरण ने भारत की जिस किसी तात्कालिक घटना को लिया है, उसे एकदेशीयता से ऊपर उठाकर वृहत्तर मानवीय मूल्य का स्तर प्रदान किया है, मात्र राष्ट्रीयता कवि को स्वीकार्य नहीं। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें अपने ढंग से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना-विभीषिका और मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है।

उदयशंकर भट्ट—इनका जन्म कर्णवास, जिला बुलंदशहर में हुआ था। ये सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर में हिंदी के अध्यापक रहे और बाद में आकाशवाणी से संबद्ध हुए। भट्ट जी की काव्य-कृतियाँ हैं—'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और विष', 'युगदीप', 'यथार्थ', 'एकला चलो रे' और 'विजय पथ'। इसके काव्य में भाव, विचार और भाषा संबंधी बड़ा सुथरापन दिखता है। ये ठीक-ठीक किसी वाद के अंतर्गत नहीं आते। इनकी कविताओं में युग का स्वर सुनाई पड़ता है और साथ-ही-साथ अपनी अतीत संस्कृति के प्रति आस्था भी। इनकी कविताओं में वेदना एवं निराशा की भी गूंज है और नवनिर्माण का उत्साह तथा शक्ति भी है।

नोट

सोहनलान द्विवेदी–इनका जन्म सन् 1905 में बिंदकी, ज़िला फ़तेहपुर में हुआ। ये अत्यंत सरल भाषा में राष्ट्रीय चेतना का स्वर व्यक्त करने वाले कवि हैं। इनकी राष्ट्रीयता की चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य, इन तीनों ही काल-आयामों को समेटती है। अभिव्यक्ति की सादगी और वर्णनात्मकता इनके भावों को अत्यंत सहजता से पाठकों तक प्रेषित कर देती है। द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा प्रबंधकाव्य और गीतिकाव्य–दोनों क्षेत्रों में हुई है। प्रसिद्ध रचनाएँ हैं–'भैरवी', 'वासवदत्ता', 'कुणाल', 'चित्रा', 'प्रभाती', 'युगधारा' और 'पूजागीत'।

श्यामनारायण पांडेय–पांडेय जी की काव्य-प्रवृत्ति मुख्यत: उनके प्रबंधकाव्यों में ही निखरी है। 'हल्दीघाटी' महाराणा प्रताप के जीवन पर तथा 'जौहर' पद्मिनी की जौहर-कथा पर आधारित काव्य हैं इन काव्यों में अद्‌भुत प्रवाह, ओज और सादगी है। किंतु पांडेय जी की राष्ट्रीयता अपने समय की सामाजिक भारतीय राष्ट्रीयता न होकर हिंदू राष्ट्रीयता है। कवि ने अतीत की कथाओं को युगीन संदर्भों में नियोजित न कर वर्णनात्मक पद्धति पर ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया है। इसलिए इन काव्यों में प्रवाह तो है, किंतु भावात्मक और वैचारिक गांभीर्य नहीं है।

प्रगतिवाद (1936-43 ई.)

6.1.6 मार्क्सवाद क्या है?

मार्क्सवाद वह विचारधारा है जिसका संबंध कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंजेल्स, लेनिन, माओ आदि विचारकों से है। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवाद को अपना दार्शनिक आधार बनाती है। मार्क्सवाद की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

1. मार्क्सवाद के दो प्रमुख सिद्धांत हैं–द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का संबंध प्रकृति और जगत के नियमों की व्याख्या से है जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के संपूर्ण इतिहास की व्याख्या है।
2. मार्क्सवाद का मानना है कि प्रकृति की हर वस्तु में कुछ अंतर्विरोध होते हैं जिनके कारण वस्तु के भीतर 'पक्ष' और 'विपक्ष' में द्वंद्व की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। इन दोनों के संघर्ष से एक नई स्थिति 'संपक्ष' आती है जो वस्तुत: इन दोनों का समझौता ही है। बाद में 'संपक्ष' स्वयं 'पक्ष' बन जाता है और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इसे मार्क्स ने 'निषेध के निषेध का नियम' कहा।
3. जहाँ तक मानवीय समाज का प्रश्न है, मार्क्स का मत है कि किसी भी समाज की व्याख्या उसकी बुनियादी संरचना अर्थात् उत्पादन प्रणाली के आधार पर हो सकती है। शेष सभी संरचनाएँ जैसे राजनीति, संस्कृति, कला और साहित्य इसी बुनियादी संरचना द्वारा निर्धारित होने वाली ऊपरी संरचनाएँ हैं। स्पष्ट है कि 'साहित्य' यहाँ स्वतंत्र संरचना नहीं बल्कि उत्पादन प्रणाली का एक उप-उत्पाद है।
4. उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण संकल्पना उत्पादन के संबंधों की है जिसका अर्थ है कि उत्पादन की शक्तियों के साथ विभिन्न मनुष्यों का क्या संबंध है? मार्क्स के अनुसार कुछ लोग उत्पादन के साधनों के मालिक बन जाते हैं तथा बिना श्रम किए लाभ कमाते हैं जबकि बहुसंख्यक वर्ग उत्पादन के साधनों पर श्रम करता है किंतु उसे सीमित आय से ही गुज़ारा करना पड़ता है। हर समाज में यही दो वर्ग होते हैं, जिन्हें मार्क्स ने शोषक और शोषित वर्ग कहा है।

क्या आप जानते हैं मार्क्सवादियों का मानना है कि साहित्य कोई स्वतंत्र संरचना नहीं है बल्कि उत्पादन प्रणाली का एक उप-उत्पाद है।

5. मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह संगठित होकर हिंसक क्रांति करे। वर्ग चेतना उत्पन्न होने पर शोषित वर्ग अपने हितों के लिए जागरूक होता है और क्रांति की संभावना बनती है। मार्क्सवाद भाववादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित 'हृदय-परिवर्तन' के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि उसके भौतिकवाद के अनुसार भौतिक स्थितियाँ बदलने से विचार बदलते हैं, न कि विचार बदलने से भौतिक स्थितियाँ।

6. मार्क्स ने धर्म और राष्ट्र जैसी संकल्पनाओं का निषेध किया है। धर्म अफीम के समान है क्योंकि वह शोषित व्यक्ति को वास्तविक वर्ग-शत्रु से संघर्ष करने के स्थान पर अलौकिक तथा मिथ्या सुखों के लिए प्रेरित कर देता है। राष्ट्र भी धर्म के समान एक मिथ्या चेतना है क्योंकि वह वास्तविक वर्ग विभेद के स्थान पर कृत्रिम, भौगोलिक विभेदों को स्थापित करता है।
7. मार्क्सवाद विवाह और परिवार संस्थाओं का भी विरोधी है क्योंकि ये संस्थाएँ निजी संपत्ति की सुरक्षा और हस्तांतरण के लिए विकसित हुई हैं, न कि प्राकृतिक रूप से। उसका स्पष्ट मानना है कि नारी विवाह और परिवार के अंतर्गत शोषित वर्ग है, जबकि पुरुष शोषक वर्ग।
8. पूँजीवाद मानव इतिहास की वह अवस्था है जहाँ औद्योगिक उत्पादन की प्रचुरता के कारण मनुष्य की सभी भौतिक जरूरतें पूरी होने की संभावना बनती है किंतु उत्पादन के इन लाभों पर पूँजीपति-वर्ग का कब्जा होने के कारण सर्वहारा या श्रमिक वर्ग को मानवीय स्थितियाँ उपलब्ध नहीं हो पातीं, इसलिए पूँजीवाद को नष्ट करना दुनिया भर के मजदूरों के लिए आवश्यक है।
9. हिंसक क्रांति के बाद समाजवाद की अवस्था आएगी जिसमें सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी। यह एक संक्रमणशील अवस्था है और इसके गुज़रने के बाद साम्यवाद आएगा, जो मानवीय इतिहास की आदर्श व्यवस्था होगी। साम्यवाद में न राज्य होगा, न धर्म, न शोषण, न अलगाव, न विवाह और न ही परिवार। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं और रुचियों के अनुसार कार्य करेगा तथा उसे उसकी आवश्यकताओं के अनुसार उपलब्धियों की प्राप्ति होगी।

6.1.7 मार्क्सवादियों का साहित्यिक दृष्टिकोण

1. मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य 'स्वायत्त' या 'स्वतंत्र' संरचना नहीं है बल्कि समाज की उत्पादन प्रणाली का ही एक उप-उत्पाद है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी समाज का साहित्य वहाँ की अर्थव्यवस्था के स्वरूप से तय होता है। उदाहरण के लिए महाकाव्य सामंतवादी समय में ही लिखे जा सकते हैं जबकि उपन्यास का अनिवार्य संबंध उत्पादन की औद्योगिक तथा पूँजीवाद प्रणाली से है।
2. साहित्य निरुद्देश्य नहीं होता, सोद्देश्य होता है। उसका उद्देश्य है शोषित वर्ग को उसके शोषण के प्रति जागरूक बनाना तथा क्रांति के लिए तैयार करना। यह दायित्व मार्क्स ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को सौंपा था। जो साहित्य सर्वहारा के हित में नहीं है, वह साहित्य नहीं बल्कि शोषण को बनाए रखने की व्यवस्था है लेनिन ने तो स्पष्ट रूप से कहा कि *''साहित्य क्रांति के लिए एक हथियार मात्र है।''*
3. साहित्य में मुख्य महत्त्व वस्तु (Content) का होता है, न कि रूप (Form) का। रूप या शिल्प तो वस्तु के अनुसार स्वत: परिवर्तित होता है क्योंकि शिल्प वस्तु का उप-उत्पाद ही है। आगे चलकर जॉर्ज लुकाच ने इस नज़रिए को थोड़ा सा बदला और शिल्प को भी स्वायत्त महत्त्व देना आरंभ किया। लुकाच ने माना कि यद्यपि अंतर्वस्तु का महत्त्व अधिक है किंतु उसी अंतर्वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए शिल्प को पर्याप्त महत्त्व दिया जा सकता है। हिंदी के प्रगतिवादियों में यही विचार मुक्तिबोध का भी था। उन्होंने फंतासी शिल्प के विषय में कहा कि प्रगतिवादी कथ्य की ज्यादा बेहतर अभिव्यक्ति कभी-कभी भाववादियों या अति-यथार्थवादियों के फंतासी शिल्प में हो सकती है, अत: इसे स्वीकार करना चाहिए।
4. साहित्यकार में साहित्यिक रचना करने की क्षमता न तो जन्म-जन्मांतरीय होती है, न ही ईश्वर द्वार प्रदत्त। वस्तुत: प्रत्येक मनुष्य के शरीर पर ही उसकी चेतना निर्भर होती है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक भिन्नताएँ हैं, इसलिए सभी की चेतना में भी कुछ अंतर पाए जाते हैं। कवि की विशेषताएँ मात्र इतनी है कि उसकी चेतना रचनात्मक लेखन में अधिक समर्थ होती है।
5. कोई भी रचनाकार समाज से स्वतंत्र या स्वायत्त नहीं होता। उसके साहित्यिक दायित्वों से ज्यादा बड़े उसके सामाजिक और मानवीय दायित्व हैं, और उन्हीं दायित्वों के तहत उसके लिए आवश्यक है कि वह शोषित वर्ग को न्याय दिलाने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से सहायक हो।

6. साहित्य का कार्य रस की उत्पत्ति करना या व्यक्ति को आनंद की उपलब्धि कराना नहीं बल्कि तनाव की सृष्टि करना है। यह तनाव या द्वंद्व ही सभी सामाजिक परिवर्तनों की मूल शक्ति है।

6.1.8 प्रगतिवाद और चेतना

प्रगतिवाद का चेतना संबंधी विचार मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित है। मार्क्सवाद का दार्शनिक चिंतन द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है, जिसमें भौतिकवाद का अर्थ यह है कि ब्रह्मांड की अंतिम सत्ता अपनी प्रकृति में भौतिक है न कि आध्यात्मिक या चेतना ईश्वरवादी विचारक ईश्वर रूपी आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से जगत की व्याख्या करते हैं, जबकि भौतिकवाद का दावा है कि यह जगत अंतिम सत्ता है, ईश्वर एक निरर्थक कल्पना मात्र है। चेतना की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने माना कि वह भौतिक शरीर का ही एक गुण है न कि आत्मा जैसी किसी आध्यात्मिक सत्ता का। मानव का शरीर एक ऐसी भौतिक संरचना है जिसमें चेतना एक गुण के रूप में अभिव्यक्त होती है।

चेतना की उत्पत्ति ही नहीं, उसका स्वरूप भी भौतिक स्थितियों से ही तय होता है। अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत में मार्क्स ने स्पष्ट कहा है कि किसी भी व्यक्ति की आत्मनिष्ठ चेतना उसकी वस्तुनिष्ठ वर्गीय या आर्थिक स्थितियों से तय होती है। हृदय परिवर्तन का सिद्धांत उसके अनुसार निरर्थक है क्योंकि चेतना के परिवर्तन से भौतिक स्थितियों का बदलना कल्पना मात्र है। वास्तविकता यह है कि भौतिक स्थितियों के परिवर्तन से ही चेतना परिवर्तित होती है। यह विचार न केवल उसके पूर्ववर्ती दार्शनिक हीगेल के प्रत्ययवाद के विरोध में हैं बल्कि सेंट साइमन जैसे स्वप्नदर्शी समाजवादियों के विरोध में भी है।,

प्रगतिवाद ने सामान्यत: चेतना का यही सिद्धांत अपनाया है। इसी स्पष्ट अभिव्यक्ति मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' में दिखती हैं–

''पूँजी से जुड़ा हृदय, बदल नहीं सकता,
छल नहीं सकता जन को,
मुक्ति के मन को।''

> *टास्क* मार्क्सवाद क्या है? मार्क्सवादियों के साहित्यिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

6.1.9 प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(क) संवेदना

(*i*) **मार्क्सवाद में विश्वास**–प्रगतिवादी चिंतन मार्क्सवाद है। प्रगतिवादी कवि साम्यवाद के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था हिंसक क्रांति के साथ समाप्त होगी जिसके परिणामस्वरूप पहले समाजवादी तथा अंतत: साम्यवादी व्यवस्था आएगी जिसमें कोई शोषक और शोषित नहीं होगा। ये कवि सोवियत संघ में क्रांति का परचम फैलाने वाली मजदूर सेना को आदर के भाव से देखते हैं–

''लाल क्रांति की लड़ने वाली, मज़दूर सेना आम,
उनका, उनके स्त्री पुरुषों को, मेरा लाल सलाम।'' **(मुक्तिबोध)**

(*ii*) **समाजवादी यथार्थवाद**–प्रगतिवादी कवि यथार्थवाद में विश्वास रखते हैं, 'आदर्शवाद' या 'अध्यात्मवाद' में नहीं। इनका यथार्थवाद 'समाजवादी' मान्यताओं पर आधारित है। जिसके अनुसार मानव के यथार्थ को निर्धारित करने वाली सबसे ताकतवर शक्ति अर्थव्यवस्था या उत्पादन प्रणाली है। मार्क्स ने कहा भी है कि

सारा चिंतन, सारी संस्कृति पेट भरने के बाद ही अस्तित्व में आती है। यही भाव इन कवियों का भी है—

''दाने आए घर के अंदर, कई दिनों के बाद,
चमक उठी घर भर की आँखें, कई दिनों के बाद।'' **(नागार्जुन)**

(iii) **पूँजीवादी व्यवस्था से घृणा**—प्रगतिवादी साहित्य के आक्रोश का केंद्र पूँजीवाद व्यवस्था व पूँजीपति वर्ग है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन का कार्य मज़दूर करते हैं किंतु उससे पैदा होने वाले धन को पूँजीपति हड़प कर जाते हैं। इस अधिशेष मूल्य को हस्तगत करके वे मज़दूर का शोषण करते हैं। इसलिए प्रगतिवादी कवि पूँजीवाद के प्रति विरोध का भाव रखते हैं—

''तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ,
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।'' **(मुक्तिबोध)**

(iv) **शोषितों के प्रति सहानुभूति और आस्था**—प्रगतिवादी कविता में शोषण व अन्याय की चक्की में पिसते हुए मज़दूर एवं किसान वर्गों के प्रति करुणा व आस्था का भाव है। कवियों को गहरा विश्वास है कि मज़दूर व किसान वर्ग के वंचित लोग ही अंततः समाज की नियति बदलने की शक्ति रखते हैं—

''मैंने उसको जब जब देखा, लोहा देखा,
लोहा जैसे तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा,
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।'' **(केदारनाथ अग्रवाल)**

(v) **सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन**—प्रगतिवादी कवि सामाजिक संरचना में क्राँतिकारी परिवर्तन चाहता है। यह परिवर्तन हृदय-परिवर्तन जैसी कल्पनाओं से नहीं, वरन् वर्ग-संघर्ष के माध्यम से होगा। यह परिवर्तन आमूलचूल होगा; 'व्यवस्था में' नहीं, 'व्यवस्था का' होगा—

''सदियों की ठंडी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'' **(दिनकर)**

प्रगतिवादियों की स्पष्ट धारणा है कि वर्ग-संघर्ष में बीच का कोई रास्ता नहीं होता। जो शोषित वर्ग के पक्ष में नहीं है, वह शोषक के पक्ष में है। 'तटस्थता' की चादर ओढ़ने वाले भी अंततः इतिहास में अपराधी ही माने जाएँगे—

''समर शेष है नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध।'' **(दिनकर)**

(vi) **राष्ट्रीय चेतना**—प्रगतिवादी कवि भी राष्ट्रीयता की चेतना से युक्त हैं पर उनके लिए 'राष्ट्रीयता' का अर्थ छायावादी कवियों से भिन्न है। ये कवि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समर्थक नहीं हैं; न ही इन्हें राष्ट्र के गौरवमयी अतीत या महान दर्शन के प्रति भावुक होना पसंद है। ये तो राष्ट्र का महत्त्व राष्ट्र के वंचित नागरिकों के आधार पर तय करते हैं—

''जहाँ न भरता पेट, देश वह कैसा भी हो, महानरक है।'' **(नागार्जुन)**

''कागज की आजादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।'' **(नागार्जुन)**

(vii) **राजनीतिक चेतना**—प्रगतिवादी कवि कई अन्य कवियों की तरह राजनीति से दूर नहीं भागते बल्कि राजनीति को यथार्थ की पहचान का प्रतीक और यथार्थ बदलने की सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में देखते हैं। ये 'उदारवादी लोकतंत्र' का अंधसमर्थन करने के स्थान पर उसकी आंतरिक विसंगतियों का चित्रण करते हैं और बताते हैं कि तथाकथित लोकतंत्र वस्तुतः किस प्रकार शोषक वर्ग के हितों की ही सुरक्षा व अभिवृद्धि करता है—

''खादी ने मलमल से चुपचुप साँठगाँठ कर डाली है,
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।'' **(नागार्जुन)**

(viii) **ग्राम्य प्रकृति**–प्रगतिवादी कवि प्रकृति को सैलानी की नहीं, किसान की आँखों से देखते हैं क्योंकि ये कवि 'जन' के प्रतिनिधि है, अभिजात वर्ग के नहीं। इनके यहाँ 'गुलाब' के सौंदर्य का स्थान चने के सौंदर्य ने ले लिया है क्योंकि वह जनसामान्य के जीवन से जुड़ा हैं–

''एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।''

प्रगतिवादियों का प्रकृति-चित्रण वर्ग संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी है। छायावाद में जो प्रकृति कवि को अपनी गोद से आश्रय देती थी, वह प्रगतिवाद में आकर क्रांति का संकेत देने लगी हैं–

''तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़ कर,
मार रहा है घूँसे कस कर, तोड़ रहा है तट चट्टानी।''

(ix) **प्रेम वर्णन**–प्रेम साहित्य के प्रत्येक युग का एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। प्रगतिवाद भी इससे अछूता नहीं है। यहाँ प्रेम साहचर्य एवं सहजीवन से उत्पन्न होता है। प्रेम के लिए इन कवियों को प्रकृति की गोद में जाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती, वह तो श्रम करते समय भी महसूस किया जा सकता है। प्रेम साधारण जीवन का सहज अंग है, यह किसी विशेष परिस्थिति की माँग नहीं करता। प्रेम समाज से काटता नहीं है बल्कि वह तो व्यक्ति के सामाजिक होने की भावभूमि हैं–

(i) *''मिलकर वे दोनों प्राणी, दे रहे खेत में पानी।''* **(त्रिलोचन)**

(ii) *''मुझे जगत जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्रेम तुम्हारा।''* **(त्रिलोचन)**

(ख) शिल्प

प्रगतिवाद आंदोलन मूलत: कथ्य का आंदोलन था, शिल्प का नहीं। उसके अनुसार शिल्प कथ्य का उपोत्पाद होता है प्रगतिवादी कविता सर्वहारा व श्रमिक की पक्षधर होने के नाते इस दायित्व-बोध से युक्त है कि कविता शिल्प की चमक-दमक से लदी हुई नहीं बल्कि आम आदमी के लिए बोधगम्य होनी चाहिए। इन्हें कविता में उसी जन-प्रभाव की तलाश है जो पोस्टरों में दिखाई देती है। मुक्ति-बोध ने कहा भी है कि–*''चंद्र है, सविता है। पोस्टर ही कविता है।''*

(i) **काव्यरूप**–प्रगतिवादी काव्य में प्रबंधात्मक का अभाव है क्योंकि यह कविता संघर्ष की कविता है। ऐसी कविता में प्रबंध के अनुशासन की उपस्थिति संभव नहीं है।

(ii) **भाषा**–प्रगतिवादी कवि सहज भाषा का प्रयोग करते हैं जो जनसाधारण के जीवन की भाषा है। छायावाद ने जीवन की भाषा और काव्य की भाषा में जो अंतराल पैदा कर दिया था, उसे प्रगतिवाद ने समाप्त किया। मुक्तिबोध जैसे एकाध कवि को छोड़ दें तो सभी प्रगतिवादी कवि जनभाषा का ही सहज प्रयोग करते हैं।

(iii) **लोकधुन**–इस काव्य में लोक धुनों पर विशेष बल दिया गया है। प्रगतिवादी कविता जिस संघर्ष- चेतना का प्रसार करना चाहती है, उसकी सहज अभिव्यक्ति लोक-धुनों में ही संभव है। कहीं-कहीं इसमें लय व तुक के नियमों से मुक्ति भी दिखाई पड़ती है।

(iv) **बिंब**–बिंब प्राय: सामान्य जीवन से लिए गए हैं। छायावादी बिंबों से भिन्न ये बिंब लोक जीवन के साधारण अनुभवों से संबंधित हैं, जैसे *'गीत गाकर घर लौटते मज़दूर'*, *'पसीने में भीगा किसान'* आदि। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने,
मायके में आई बेटी की तरह मगन है।''

(*v*) **प्रतीक**–प्रगतिवादी कवि बात को साफ-साफ कहने के पक्षधर हैं। इन्हें सामान्यत: प्रतीकों का मोह नहीं है क्योंकि प्रतीक बात को छिपाते हैं। कहीं-कहीं कुछ प्रतीकों के प्रयोग से इन्होंने वर्ग संघर्ष की चेतना को व्यक्त किया है, जैसे–

''तेज धार का कर्मठ पानी, चट्टानों के ऊपर चढ़कर,
मार रहा है घूँसे कसकर, तोड़ रहा है तट चट्टानी।''

ये पंक्तियाँ वर्ग-संघर्ष को व्यक्त करती हैं। पानी वंचित वर्ग को व्यक्त करता है जबकि चट्टान शोषक वर्ग की मजबूत स्थिति को व्यक्त करती है।

(*vi*) **व्यंग्य**–प्रगतिवादी कवियों में व्यंग्य क्षमता की अत्यंत प्रभावशील उपस्थिति है। समाज के मूल हितों के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध होने के कारण ये कवि स्वार्थी व व्यक्तिवादी तत्वों को सहन नहीं कर पाते और तिलमिलाहट पैदा करने वाले तीखे व्यंग्यों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए–

''दस हजार दस लाख मरें,
पर झंडा ऊँचा रहे हमारा।''

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

5. वैयक्तिक गीतिकविता की अभिव्यक्ति उसकी एक .... है।
   (क) अमूल्य देन (ख) विशेष देन
   (ग) बड़ी देन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
6. भारतीय राष्ट्रीयता में स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, जबकि स्वतंत्र .... देशों में स्व-विकास का।
   (क) उत्तरी (ख) दक्षिणी
   (ग) पूर्वी (घ) पश्चिमी
7. मार्क्स के अनुसार, शोषित वर्ग की समस्याओं का एक ही समाधान है कि वह .... होकर हिंसक क्रांति करे।
   (क) एकत्रित (ख) क्रोधित
   (ग) संगठित (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
8. .... कवि साम्यवाद के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं।
   (क) एकतावादी (ख) रूढ़ीवादी
   (ग) समतावादी (घ) प्रगतिवादी

6.1.10 प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही एक नया मोड़ उपस्थित होता है जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया है। अपनी विकास प्रक्रिया में **प्रयोगवाद** छायावादी कविता की रोमानियत और वायवीयता तथा **प्रगतिवादी कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता के विरोध में** खड़ा होकर 'स्वानुभूति की प्रामाणिकता' को रचना के केंद्र में स्थापित करने का आग्रह करता है। शिल्प के स्तर पर यह छायावाद की ठहरी हुई अभिव्यंजना प्रणाली तथा प्रगतिवाद की अभिधात्मकता व सपाटबयानी का अतिक्रमण करता है। इस समूची नई दृष्टि को, जिसे अज्ञेय ने 'प्रयोगशीलता' कहा था, अज्ञेय के विरोध के बावजूद 'प्रयोगवाद' का नाम दे दिया गया और कालांतर में यही नाम प्रचलित हुआ।

नोट

प्रयोगवाद में प्रयुक्त 'प्रयोग' शब्द नए जीवन सत्यों को पाने की बेचैनी का द्योतक है। अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में प्रयोगशील शब्द का प्रयोग किया है और इसे जीवन-सत्यों के अन्वेषण का माध्यम माना है। अतः अज्ञेय के अनुसार, ''प्रयोग अपने आपमें साध्य नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है; क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है।'' दूसरे सप्तक की भूमिका में 'प्रयोगवाद' नामकरण का विरोध करते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। किसी को प्रयोगवादी कहना उतना ही निरर्थक है जितना कवितावादी कहना। अतः 'प्रयोगशील' होने और 'प्रयोगवादी' होने में फर्क है। प्रयोगवाद वस्तुतः प्रयोगशीलता का पक्षधर है।

6.1.11 प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में अंतर

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद में कई बिंदुओं पर वैचारिक टकराहट है–

(*i*) प्रगतिवाद कलाकर्म को सामाजिक कार्य मानता है तथा इन दोनों की अद्वैतता की घोषणा करता है जबकि प्रयोगवाद के अनुसार कविता के प्रति दायित्व और नागरिक दायित्व में मूलभूत फर्क है। कविता का क्षेत्र सौंदर्यानुभूति का क्षेत्र है। कवि इसलिए कवि होता है कि उसके पास विशेष सौंदर्यानुभूति होती है।

(*ii*) प्रगतिवाद कविता को 'सोद्देश्य' मानता है और उसका उद्देश्य भी पूर्वतः निर्धारित कर देता है–पूंजीवाद का संहार तथा साम्यवाद की स्थापना का अस्त्र बनना। अतः प्रगतिवाद रचना और रचनाकार की स्वायत्तता का निषेध करता है। प्रयोगवाद मानता है कि कविता के उद्देश्य कविता से बाहर नहीं होते। वह समाज का परिवर्तन नहीं करती, उसे ऐसा प्रयास करना भी नहीं चाहिए। अज्ञेय का मत है कि, **''कविता का मूल लक्ष्य अधिक-से-अधिक व्यक्ति को संस्कारित करना है।''**

(*iii*) प्रगतिवाद मानता है कि कविता यथार्थ की अभिव्यक्ति है और यथार्थ पूर्व निर्दिष्ट है जिसे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों में देखा जा सकता है। प्रयोगवाद के अनुसार यथार्थ निर्दिष्ट नहीं है, वह प्रेक्षक के दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न हो सकता है। वस्तुतः प्रगतिवाद यथार्थ को विचारधारा के चश्मे से देखता है, जबकि प्रयोगवाद यथार्थ के इस यांत्रिक बोध का विरोध करता है।

(*iv*) प्रगतिवाद के अनुसार, शिल्प सिर्फ माध्यम होता है जबकि अंतर्वस्तु प्रमुख होती है। अंतर्वस्तु के विकास के साथ-साथ शिल्प स्वतः परिवर्तित होता रहता है। इसके विपरीत प्रयोगवादी मानते हैं कि शिल्प कविता का नियामक तत्व है, वही विधाओं में अंतर भी करता है। अतः शिल्प प्राथमिक है, वह अंतर्वस्तु का अनुवर्ती नहीं है।

6.1.12 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(क) संवेदना

(*i*) भावुकता तथा बौद्धिकता का संश्लेषण–प्रयोगवादी कविता में न तो छायावादी काव्य के जैसी वायवीयता, अति भावुकता एवं कल्पना है और न ही प्रगतिवाद की तरह किसी विचारधारा के प्रति यांत्रिक मोह। नगरीय जीवन के दबावों से निर्मित इनकी चेतना में भावना बौद्धिकता से संयुक्त होकर व्यक्त होती है। इसलिए इनकी काव्यानुभूति में रोमानियत या तीव्रता नहीं बल्कि गैर-रोमानीपन तथा तटस्थता दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए–

''सुनो कवि, भावनाएँ नहीं है सोता,
भावनाएँ खाद हैं केवल,
ज़रा उनको दबा रक्खो,
उनको और पकने दो,
ताने और तचने दो
कि उनका सार बनकर धरा को उर्वरा कर दे।''

नोट

(ii) नवीन राहों का अन्वेषण–प्रयोगवादी कवियों ने प्रदत्त सत्यों को अस्वीकार किया। ये 'परंपरा' और 'रूढ़ी' में बारीक अंतर करते हैं और परंपरा को महत्त्व देते हुए भी रूढ़ियों का विरोध करते हैं। वे कहते हैं–''परंपरा अर्जित किया गया सत्य होता है। जो दी गई है, वह रूढ़ि है। परंपरा वह है जो व्यक्ति के विवेक के साथ संवाद करने की क्षमता रखती है।'' ये कवि रूढ़ियों को तोड़ते हैं। यह तोड़ना उन्हें सुखदायी लगता है–

''इस दिशा से उस दिशा तक/छूटने का सुख/टूटने का सुख/
बिना सीढ़ी के बढ़ेंगे/तीर के जैसे बढ़ेंगे
इसलिए इन सीढ़ियों के/फूटने का सुख/टूटने का सुख।''

–भवानी प्रसाद मिश्र

(iii) वैचारिक प्रतिबद्धता का निषेध–कोई भी विचारधारा एक यांत्रिक चिंतन पैदा करती है जिससे केवल सतही व सैद्धांतिक तौर पर ही समस्याओं का समाधान संभव हो पाता है। विचारधारा के प्रवाह में बहने वाले व्यक्तियों का निजी व्यक्तित्व खो जाता है। प्रयोगवादी कवि स्वयं के विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। वे विचारधाराओं से अपने काम भर का तत्व स्वीकारते हैं। मुक्तिबोध ने मार्क्सवाद से तो अज्ञेय आदि ने फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद से प्रेरणा ग्रहण की है, पर ये सभी कवि विचारधारा की बेड़ियों से स्वयं को मुक्त रखते हैं।

(iv) व्यक्ति को महत्त्व–प्रयोगवादी कवि सामाजिकता का निषेध नहीं करते परंतु व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता पर बल अवश्य देते हैं। इनका मानना है कि व्यक्ति समाज 'से' तो नहीं किंतु समाज 'में' अवश्य स्वतंत्र है। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि कविता जिस अनुभव से रची जाती है वह वैयक्तिक ही हो सकता है, सामाजिक नहीं। अज्ञेय ने 'नदी' तथा 'द्वीप' के प्रतीकों से समाज व व्यक्ति के संबंधों के कई प्रतीकात्मक चित्र खींचे हैं। उदाहरण के लिए–

''हम नदी के द्वीप हैं/हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये/
वह हमें आकार देती है/--- किंतु हम हैं द्वीप/हम धारा नहीं हैं/स्थिर समर्पण है हमारा/
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के/किंतु हम बहते नहीं हैं/क्योंकि बहना रेत होना है।''

(v) क्षण को महत्त्व–प्रयोगवाद अनुभूति का काव्य है और अनुभव क्षणजन्य होता है, युगजन्य नहीं। इसलिए ये कवि क्षण को महत्त्व देते हैं, प्रगतिवादियों की तरह 'युगों' के आधार पर काव्यानुभूति का स्वरूप तय नहीं करते। इन कवियों का मानना है कि कविता स्वानुभूति से बनती है और अनुभूति का सहज संबंध क्षण से ही हो सकता है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कविताएँ 'एक बूँद सहसा उछली' तथा 'थिर हो गई पत्ती' इस दृष्टिकोण को प्रबलता से प्रस्तावित करती हैं। एक और कविता में यह भाव इस रूप में व्यक्त हुआ है–

''और सब समय पराया है
बस उतना ही क्षण अपना
तुम्हारी पलकों का कँपना।''

(vi) यौन चेतना की प्रबलता–प्रयोगवादी काव्य में यौन चेतना के कई बिंब दिखाई पड़ते हैं जो संभवत: फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद के वैचारिक प्रभाव से निर्मित हुए हैं। ये कवि व्यक्ति की सहजता की व्याख्या उसकी यौनिकता की सहज अभिव्यक्ति के अर्थ में करते हैं। अज्ञेय का मानना है कि **''आज के सामान्य मनुष्य का मन यौन कुंठाओं से भरा पड़ा है।''** इन्होंने माना कि नैतिकता का निर्धारण यौन संबंधों से नहीं हो सकता। जो दृष्टिकोण बच्चन ने 'उत्तर-छायावाद' के दौरान विकसित किया था, उसी का तार्किक विस्तार अज्ञेय, धर्मवीर भारती व नरेश मेहता के प्रयोगवादी काव्य में हुआ है। अज्ञेय की **'सावन मेघ'** तथा धर्मवीर भारती की **'ठंडा लोहा'** नामक कविताएँ इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। धर्मवीर भारती लिखते हैं–

नोट

"न हो ये वासना तो ज़िंदगी की माप कैसे हो?
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?
नसों का रेशमी उफान मुझ पर शाप कैसे हो?" **–धर्मवीर भारती**

(vii) **शहरी प्रेम दृष्टि–**प्रयोगवादी कवि शहरी हैं। इनका प्रेम बौद्धिक है, शुद्ध भावात्मक एवं काल्पनिक नहीं। इनका प्रेम जीवन की एक ज़रूरत है। इनका प्रेम अशरीरी नहीं है, उसमें शरीरी पक्ष अनिवार्यतः उपस्थित है। ये कवि प्रेम के प्रति छायावाद की तरह रोमानी नज़रिया नहीं रखते बल्कि एक पारस्परिक ज़रूरत की पूर्ति समझते हैं। यही कारण है कि प्रेम के प्रति इनमें वह समर्पण-भाव या कैशोर उद्वेग नहीं दिखता जो छायावाद में था–

"फूल को प्यार करो,
और झरे तो झर जाने दो,
जीवन का सुख लो
देह, मन, आत्मा की रसना से
पर मरे तो मर जाने दो।" **–अज्ञेय**

(ख) शिल्प

प्रयोगवादियों ने शिल्प को अत्यधिक महत्त्व दिया। इन्होंने शिल्प को कविता की निर्धारक विशेषता माना। इनके अनुसार, कवि की मुख्य चुनौती संवेदना की अनुभूति करना नहीं, बल्कि उसकी सटीक अभिव्यक्ति करना है। कवि तथा अ-कवि में मूल अंतर संवेदना का नहीं, अभिव्यक्ति-सामर्थ्य का ही होता है।

(i) **भाषा–**प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को काफी महत्त्व दिया। अज्ञेय कहते हैं–**"भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, जानने का माध्यम भी है। जितनी हमारी भाषा होती है, हम उतना ही सोच सकते हैं।"** इन कवियों ने शब्दों को खुला आमंत्रण दिया। तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी आदि विविध स्रोतों से शब्दों का चयन किया।

शब्दशक्तियों की दृष्टि से इन्होंने लक्षणा का अधिक प्रयोग किया, जैसे–

"कितने कमरों में बंद हिमालय रोते हैं,
मेजों से लगकर सो जाते कितने पठार।" **–धर्मवीर भारती–'ठंडा लोहा'**

इन्होंने संज्ञाओं, विशेषणों तथा क्रियाओं का प्रयोग इस प्रकार किया कि ये शब्द एक-दूसरे के रूप में प्रयुक्त होने लगे। संज्ञा से क्रिया और विशेषण तथा विशेषण से संज्ञा बनाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखती है, जैसे–**'हरा'** से हरिया, **'गंध'** से गंधाते, **'छंद'** से छंदित।

इन्होंने अक्षरों के टाइप पर भी विशेष ध्यान दिया क्योंकि इस समय तक 'श्रव्य कविता' का महत्त्व समाप्त होने लगा था। कविता 'पाठ्य कविता' बन गई थी जिसके लिए 'आर्ट ऑफ रीडिंग' पर ध्यान देना जरूरी हो गया था।

(ii) **अप्रस्तुत विधान–**इसके यहाँ उपमान बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि कविता की ताज़गी या बासीपन उपमानों पर ही निर्भर है। कुछ नए उपमान हैं–

नवंबर की दोपहर - जॉर्जेट के पीले पल्ले सी

मौन - धूल भरी बाँसुरी सरीखा

अज्ञेय की कविता 'कलगी बाजरे की' नवीन उपमानों की ज़रूरत पर ही रची गई है। वे लिखते हैं–

"अगर मैं तुमको/ललाते सांझ के नभ की अकेली तारिका/अब नहीं कहता/
तो नहीं कारण/कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है/या कि मेरा प्यार मैला है/
बल्कि केवल यही/ये उपमान मैले हो गए हैं/देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।"

(iii) **प्रतीक–**प्रयोगवाद में बड़े पैमाने पर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। यथार्थ की जटिलता व सूक्ष्मता को अभिव्यक्त करने के प्रयास में ये प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। सर्वाधिक प्रतीक यौन प्रसंगों से संबंधित हैं। व्यक्ति

व समाज के जटिल संबंधों को भी बूंद व समुद्र, द्वीप व नदी, दीप व दीपमाला आदि प्रतीक-युग्मों से व्यंजित किया गया है। ये प्रतीक प्राय: तार्किक हैं, इसलिए अबोधगम्यता की समस्या पैदा नहीं करते। प्रगतिवादियों का आक्षेप है कि यथार्थभीरू होने के कारण इन्होंने कविता में प्रतीकों को पुन: शामिल किया किंतु प्रयोगवादियों का उत्तर है कि वे सूक्ष्म यथार्थ का प्रभावशाली अंकन करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।

(iv) **छंद**—प्रयोगवादियों ने छंदों के स्तर पर भी नए-नए प्रयोग किए। मूल रूप से यहाँ छंद के नियम का निषेध ही दिखता है किंतु लय का विशेष ध्यान रखा गया है।

(v) **काव्यरूप**—इनके काव्य को न प्रबंध कहा जा सकता है, न ही मुक्तक। यह कविता प्रयोगधर्मी होने के कारण पारंपरिक काव्यशास्त्रीय ढाँचे का अतिक्रमण करती है। इनकी कविताएँ 'छोटे आकार की प्रगीतात्मक कविताएँ' हैं। हालाँकि इनमें छायावादी प्रगीतों की-सी तीव्र भावुकता नहीं दिखती।

6.1.13 नई कविता से अभिप्राय

(क) नई कविता का आरंभ तथा अर्थ

नई कविता छठे दशक की कविता है। अज्ञेय ने 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित किया और यहीं से 'प्रयोगवाद' 'नई कविता' में रूपांतरित हो गया। कुछ इतिहासकारों की राय है कि 1954 ई. में जगदीश गुप्त की पत्रिका **'नई कविता'** के प्रकाशन से नई कविता आंदोलन का आरंभ हुआ। यह विवाद का विषय है कि नई कविता का अर्थ क्या है एवं नई कविता वस्तुत: किस अर्थ में तथा कितनी नई है? यूँ तो हर युग की कविता पिछले युग की तुलना में नई ही होती है। किंतु, यहाँ नए का अर्थ अद्यतन से नहीं है। दरअसल, इस आंदोलन में जो कविता लिखी गई, वह अपनी अंतर्वस्तु में पहले की परंपरा से काफी अलग है। इस नएपन की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है।

अज्ञेय ने **'अनुभूति की विशिष्टता'** को नई कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता माना तो **गिरिजाकुमार माथुर** ने **'अनुभूति की साधारणता'** को ही विशिष्ट माना। **मुक्तिबोध** के अनुसार, **''नई कविता मूलत: एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की 'पर्सनल सिचुएशन' की कविता है।''**

नई कविता के प्रमुख कवि हैं—अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, अशोक वाजपेयी इत्यादि।

(ख) प्रयोगवाद और नई कविता

प्रगतिवाद के बाद हिंदी कविता में स्वानुभूति एवं कला पक्ष पर ज्यादा बल दिया गया। इस दौर में किसी प्रदत्त सत्य का अनुसरण करने की बजाय नए प्रयोग करने पर बल दिया गया। इस प्रवृत्ति के कारण ही यह धारा 'प्रयोगवाद' कहलाने लगी। अज्ञेय आरंभ से ही प्रयोगवाद शब्द को उचित नहीं मानते थे। उन्होंने 1952 ई. में 'नई कविता' शब्द का प्रयोग किया। 1954 ई. में जगदीश चंद्र गुप्त ने इस नाम से पत्रिका भी निकाली। इस रूप में नई कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप कही जा सकती है। आरंभ में नई कविता के कवियों ने स्वयं को प्रयोगवाद से जोड़ा परंतु बाद में वे स्वयं को प्रयोगवाद से भिन्न बतलाने लगे। नई कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव रहा है एवं **अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद** तथा **व्यक्तिवाद** का भी। इस रूप में इस पर प्रगतिवाद का प्रभाव भी है और प्रयोगवाद का भी।

प्रयोगवाद और नई कविता में बीज व वृक्ष का संबंध माना जा सकता है। प्रयोगवाद जहाँ प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में उपजा आंदोलन प्रतीत होता है, वहाँ नई कविता अपने स्वरूप में संश्लेषण एवं समन्वय की कविता है प्रयोगवाद एक हद तक साहित्यिक क्षेत्रों तक सीमित रहने वाला आंदोलन था जबकि नई कविता समग्र एवं जटिल काव्यानुभूति का प्रयोग करती है।

नोट

(ग) नई कविता की काल सीमा

नई कविता की काल सीमा को लेकर विवाद है। कुछ प्रमुख मत इस प्रकार हैं–

नंददुलारे वाजपेयी और बालकृष्ण राव का मानना है कि छायावाद के पतन के एकदम बाद 1937 ई. से ही नई कविता का आरंभ हो गया। किंतु, यह मत उचित नहीं है क्योंकि नई कविता में जो आधुनिक भावबोध मिलता है, उसका विकास हम तब से नहीं मान सकते। नई कविता अपने सारतत्व में प्रगतिवाद व प्रयोगवाद का विकास होकर भी उनसे भिन्न आंदोलन है।

लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसका आरंभ 1951 ई. से माना है क्योंकि इसी वर्ष अज्ञेय द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ था। 1952 ई. में अज्ञेय ने अपनी कविताओं को नई कविताएँ कहा था। **शमशेर** ने भी इसी समय अपनी कविताओं को **'नई कविता'** कहा।

शंभूनाथ सिंह कहते हैं कि नई कविता को प्रयोगवाद से अलग नहीं किया जा सकता। यह मत भी उचित नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रयोगवाद में प्रयोगशीलता की केंद्रीयता है जबकि नई कविता में 'प्रयोग' केंद्रीय प्रवृत्ति के रूप में नहीं दिखता।

गिरिजाकुमार माथुर एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि नई कविता प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की विरासत से निर्मित संश्लेषण की कविता है। ''नई कविता'' पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही इसका आरंभ माना जा सकता है।

इन सभी मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद एवं नई कविता में गहरा संबंध होने के कारण किसी एक वर्ष या घटना को नई कविता के आरंभ के रूप में मानना कठिन है। किंतु, यदि कोई घटना सर्वप्रथम इस परिवर्तन को इंगित करती है तो वह 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन है। इसकी भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का खंडन कर दिया था। काव्यानुभूति के जिस परिवर्तन की बात ये कवि कर रहे थे वह इसी समय से व्यक्त होने लगी थी। जहाँ तक 'नई कविता' पत्रिका के प्रकाशन की घटना की बात है, वह नई कविता के विकास को रेखांकित करती है, जन्म को नहीं।'

6.1.14 नई कविताकालीन परिस्थितियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व पूँजीवादी और मार्क्सवादी दो खेमों में बँट गए। दोनों गुटों में शीतयुद्ध की स्थिति बन गई। इस दौर में मार्क्सवाद के खिलाफ 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' का नारा बुलंद किया गया। इस बात पर ध्यान आकर्षित किया गया कि मार्क्सवाद सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का अपहरण करता है एवं समाजवादी देशों में बुद्धिजीवियों, लेखकों एवं जनता को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। नई कविता पर मुख्यत: अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव पड़ा। हालाँकि इस पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी रहा है। इस तरह नई कविता की दो धाराएँ बनीं–पहली मार्क्सवाद से प्रभावित थी जबकि दूसरी अस्तित्ववाद और व्यक्तिवादी आधुनिकतावाद से।

भारत में स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विषमता कम नहीं हुई। देश के नेतृत्व ने जनता की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप देश में असंतोष, मोहभंग और निराशा की स्थिति बनी क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी लोगों के सपने पूरे नहीं हुए। इसी पृष्ठभूमि पर नई कविता का उदय हुआ। आज़ादी के बाद जो भी विकास हुआ, उसमें मशीनीकरण और शहरीकरण पर बल दिया गया जिसने समाज में यांत्रिकता, अकेलेपन व आत्मनिर्वासन को उत्पन्न किया। इस मशीनीकरण से उत्पन्न नई सभ्यता के मूल्यों को आधुनिकतावाद कहा गया जिसका प्रभाव नई कविता पर पड़ा।

6.1.15 नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संवेदना

(*i*) **यथार्थ के प्रति उन्मुक्त दृष्टि**–नई कविता में विचारधाराओं की यांत्रिकता से मुक्त होकर अनेक विषयों पर कविताएँ लिखी गईं। नई कविता में 'भोगे हुए यथार्थ' को महत्त्व दिया गया। यह एक ऐसा यथार्थ है

नोट

जिसमें वायवीयता नहीं बल्कि 'अनुभव की आँच' है। ये कवि छायावादी अति भावुकता व प्रगतिवादी यांत्रिक विचारधारा का खंडन करके अनुभूति की प्रमाणिकता पर बल देते हैं। सर्वेश्वर बताते हैं कि बिना अनुभूति के कविता नहीं लिखी जा सकती–

''लिपटा रजाई में/मोटे तकिये पर धर कविता की कापी/
ठंडक से अकड़ी उंगलियों से कलम पकड़/मैंने इस जीवन की गली-गली नापी/
हाथ कुछ लगा नहीं/कोई भी भाव कमबख्त जगा नहीं।''

नए कवियों ने सत्य की गहराई को अपने अनुभवों से आँका है, सत्य की चोट को स्वयं पर सहा है–

''मैं नया कवि हूँ/इसी से जानता हूँ/
सत्य की चोट कितनी गहरी होती है।'' **–सर्वेश्वर**

(ii) **लघुमानववाद की अवधारणा–**अस्तित्ववादी दर्शन तथा विश्वयुद्ध, मशीनीकरण, स्वतंत्रता से मोहभंग आदि स्थितियों के प्रभाव में नई कविता में लघुमानव की धारणा उभरी। 'लघुमानव' वही मानव है जो पहले संस्कृति के केंद्र में था किंतु जिसके महत्त्व में अचानक भारी कमी आई है। यह अपने आत्मसम्मान, संकल्प, जय, पराजय आदि परिस्थितियों को समेटकर आगे बढ़ता है। उस पर कोई देवत्व आरोपित नहीं है। वह संकट में फँसकर अपना रास्ता स्वयं बनाता है। इसी कारण उसे अपनी लघुता से हीनता की भावना नहीं उपजती बल्कि गर्व की अनुभूति होती है–

''हम छोटे लोग/चाहे अनदेखे बीत जाएँ/
कोई तो देखेगा/ हमारी मुट्ठियों में गुलमोहर के फूल थे
कोई तो चीन्हेगा/हमारे होठों पर कविताएँ थीं।'' **–अशोक वाजपेयी**

(iii) **आधुनिक भावबोध–**आधुनिक भाव-बोध नई कविता की केंद्रीय विशेषता है। जो आधुनिकता भारतेंदु युग से किसी-न-किसी रूप में बढ़ती आ रही थी, वह यहाँ आकर भाव-बोध के स्तर पर पहुँच गई है। अर्थात् इन कवियों के मूल चिंतन में शामिल हो गई है। इस कारण ये कवि संशय, निरर्थकता बोध, मोहभंग जैसी स्थितियों के शिकार हुए हैं।

ध्यातव्य है कि यह आधुनिक भावबोध मार्क्सवादी चिंतकों के विपरीत व्यक्तिवादी आधुनिक भाव-बोध है। इसीलिए प्रगतिवादी समीक्षा के शिखर पुरुष **डॉ. रामविलास शर्मा** ने नई कविता पर अस्तित्ववाद और आधुनिक भाव-बोध के प्रभाव का जिक्र करते हुए लिखा है कि ''नई कविता जीवन के नकार की कविता है। यह जीवन की विकृति की कविता है। यह हर तरह की नकारात्मकता को उत्सव भाव से चित्रित करती है। यह सब वह आधुनिक भावबोध के नाम पर करती है। यह संस्कृति, परंपरा और मनुष्य के उदात्त मूल्यों की उपेक्षा करती है।''

आधुनिक भावबोध की विशेषताएँ

(i) शहरीकरण, यंत्रवाद और संबंधहीनता आदि के कारण नगरीय जीवन में जटिलता, तनाव व अलगाव जैसी स्थितियों की उत्पत्ति हुई जिससे वेदना और पीड़ा का जन्म हुआ। नई कविताएँ वेदना को प्रतिष्ठा प्रदान करती हैं क्योंकि यह वेदना अर्जित होने के कारण सकारात्मक है। यह छायावादी वेदना की तरह भावों से नहीं वरन् विचारों की निर्मम ईमानदारी से पैदा होती है। उदाहरण के लिए–

''दु:ख सबको मंजता है/ और चाहे स्वयं/ सबको यह मुक्त करना न जाने,
किंतु जिन्हें यह मंजाता है/ उन्हें यह सीख देता है/ कि दूसरों को मुक्त रखें।''

–अज्ञेय

''वह पीड़ा है जो/ हमको तुमको सबको अपनाती है।
सच्चाई है/ अनजाने को भी/ हाथ पकड़कर चलना सिखाती है।'' **–धर्मवीर भारती**

(ii) नई कविता में संवेदना आधुनिक हो गई है। इसलिए जैसे ही कोई बात कवि के सामने आती है, वह उस पर संशय करने लगता है। यह संशय आधुनिक जीवन दृष्टि का प्रस्थान बिंदु है। कवि हर दिए गए सत्य

नोट

पर संशय करता है क्योंकि यह सत्य की उपलब्धि हेतु वांछनीय है। नरेश मेहता संशय की महत्ता बताते हुए 'संशय की एक रात में' लिखते हैं–

''कौन सा/किसका असत्य/
इस सत्यासत्य का निर्णय/करेगा कौन/
ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं/सत्य नहीं/
ओ पिता/ संशय निकष है/ऋत का भी।''

(iii) जब परंपरा द्वारा प्रदत्त मूल्यों के प्रति संशय पैदा होता है तो व्यक्ति के जीवन से सार्थकता व संतोष खत्म होने लगता है। जीवन में यांत्रिकता व अनिश्चयात्मकता आ जाती है जो निरर्थकता बोध को जन्म देती है। नया कवि कहता है–

''जहाँ लिखा है प्यार वहाँ लिख दो सड़क/ फर्क नहीं पड़ता/
जहाँ लिखा है सड़क वहाँ लिख दो प्यार/ फर्क नहीं पड़ता,
मेरे युग का मुहावरा है/ फर्क नहीं पड़ता,'' **–केदारनाथ सिंह**

''कैसी विचित्र है यह ज़िंदगी
जिसे मैं जीता हूँ
एक सड़ा कपड़ा जो फटता जाता है
ज्यों ज्यों सीता हूँ।'' **–सर्वेश्वर**

(iv) संशय बोध के कारण इन कवियों को सभी प्रदत्त मूल्य अप्रासंगिक लगते हैं। यह मूल्यहीनता की स्थिति है क्योंकि इन्हें पुराने मूल्य अनुपयुक्त लगते हैं और नए मूल्य अभी बने नहीं हैं। यही संघर्ष आस्था पर भी प्रश्नचिह्न लगाता है–

''जिसको तुम कहते हो प्रभु/ उसने जब चाहा/
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया/ वंचक है वो।'' **–धर्मवीर भारती**

(v) नई कविता महानगर की कविता है, अत: इसकी विषयवस्तु का आधार नगरीय जीवन है। नगरीय जीवन में विडंबनाएँ, विसंगतियाँ और त्रासदियाँ हैं। यहाँ जीता हुआ आदमी अपनी पहचान, अपने जीने का अर्थ, आदमी होने का मतलब–सब कुछ खो चुका है। मानव से अधिक महत्त्वपूर्ण पोस्टर हो गए हैं–

''लेकिन मैं देखता हूँ/ आज के जमाने में/ आदमी से ज्यादा/
लोग पोस्टरों को पहचानते हैं/ वे आदमी से बड़े सत्य हैं।'' **–सर्वेश्वर**

(vi) नई कविता की चेतना में इतिहास-बोध प्रभावी नहीं है और उसे भविष्य से कोई सरोकार नहीं है। वह केवल क्षण को ही सत्य मानती है। उसकी व्यक्तिवादी चेतना उसमें क्षणवादी मानसिकता को विकसित करती है। इसी क्षणवाद ने एक ओर कवियों को व्यक्तिगत तथा क्षणिक सत्य खोजने की प्रेरणा दी तथा दूसरी ओर भोगवाद की प्रेरणा दी। निम्नलिखित कविता में क्षण का यही महत्त्व प्रदर्शित किया गया है–

''मैं प्रस्तुत हूँ/ यह क्षण भी कहीं न खो जाए
यह कछुए सी मेरी आत्मा/ पंजे फैला,
असली रूप जो तुम्हें दिखाने को उत्सुक हो उठी है,
क्या जाने/ अगले ही क्षण की आहट पा,
सब कुछ अपने में फिर समेट ले अंदर।'' **–कीर्ति चौधरी**

(vii) नई कविता में सक्रिय राजनीतिक चेतना भी उपस्थित है। इसका प्रमुख स्वर राजनीति के चरित्र का पर्दाफाश करना है। यहाँ राजनीतिक मोहभंग की स्थिति है क्योंकि स्वतंत्रता के स्वप्न टूट गए हैं। जो स्वतंत्रता मिली है, वह नाम मात्र की है। नया कवि कहता है–

''अपने यहाँ जनतंत्र एक तमाशा है,
जिसकी जान मदारी की आशा है।'' **–धूमिल**

शिल्प पक्ष

(*i*) **भाषा**–ये कवि भाषा पर अत्यधिक बल देते हैं। इनके अनुसार, व्यक्ति के अनुभव तथा चिंतन की सामर्थ्य उसके भाषा-बोध पर ही निर्भर है। इनके यहाँ विभिन्न प्रकार के शब्दों को खुला आमंत्रण मिलता है क्योंकि इनके लिए बात को सटीक ढंग से कहना अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह नहीं कि इन्होंने कौन से शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए–

''जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख,
और उसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख।''

नई कविता की भाषा में अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू और लोकभाषा के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग हुआ है–

''पिस गया वह भीतरी, औ बाहरी,
दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजिडी है नीच।''
''टिक टिक टिक, लैट मी स्पीक।''

(*ii*) **छंद**–नई कविता छंदमुक्त कविता है। लय भी यहाँ शब्दों में नहीं वरन् अर्थों के स्तर पर सक्रिय है। उदाहरण के लिए–

''तुम क्या जानो,
कितनी लंबी होती है रात,
अकेली
सिसकी की।''

(*iii*) **नए उपमान**–नई कविता में प्रयोगवाद की तरह भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए नए-नए उपमानों का प्रयोग हुआ है। मुक्तिबोध जैसे कवियों ने प्राचीन व लोक-उपमानों पर ही बल दिया किंतु अज्ञेय और जगदीश कुमार आदि ने उपमानों की ताजगी को प्रस्तावित किया। उदाहरण के लिए–

''चाँदनी चंदन सदृश हम क्यों कहें,
हाथ हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें,
हम तो कहेंगे कि चाँदनी उस सिक्के सी है,
जिसमें चमक है पर खनक गायब है।''

–जगदीश कुमार

(*iv*) **बिंब**–नई कविता बिंबों पर बहुत अधिक बल देती है। केदारनाथ सिंह ने कहा है कि, ''मैं कविता में सबसे अधिक महत्त्व बिंब को देता हूँ।'' यहाँ विराट बिंब नहीं हैं, सहज जीवन के साधारण बिंब हैं। विशेषतः यौन जीवन के बिंबों की बहुलता है। उदाहरण के लिए, एक सहज बिंब दृष्टव्य है–

''जिंदगी दो उंगलियों में दबी,
सस्ती सिगरेट के जलते टुकड़े की तरह है,
जिसे कुछ लम्हों में पीकर,
नाली में फेंक दूँगा।''

(*v*) **काव्यरूप**–नई कविता में प्रायः दो काव्य रूप मिलते हैं–(*i*) लंबी कविता, (*ii*) प्रगीतात्मक छोटी कविता। लंबी कविताओं में कहीं तो विषयवस्तु ऐतिहासिक है जैसे **धर्मवीर भारती की 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात'** जबकि कहीं विषयवस्तु युगीन बोध से प्रभावित है जैसे **अज्ञेय** की **'असाध्य वीणा', राजकमल चौधरी** की **'मुक्तिप्रसंग'** और **मुक्तिबोध** की **'अंधेरे में'** इत्यादि। ये लंबी कविताएँ छायावादी कविताओं की तरह प्रगीतात्मक नहीं हैं। इनका निर्माण भावनाओं की निरंतरता से नहीं, जटिल समस्या के समग्र विश्लेषण से हुआ है। इसलिए कहीं-कहीं इन्हें **'विश्लेषणात्मक लंबी कविताएँ'** भी कहा गया है। विशेष रूप से मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में यह विशेषता दिखाई पड़ती है।

नोट

(*vi*) **फंतासी**–नई कविता में फंतासी शिल्प का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। फंतासी वह कल्पना या स्वप्न है जिसमें चेतन जीवन की अपूर्णताओं को मानसिक स्तर पर उपलब्ध किया जाता है। मुक्तिबोध एवं श्रीकांत वर्मा ने इसका शिल्पगत प्रयोग प्रभावशाली तरीके से किया है।

(*vii*) **व्यंग्य**–यथार्थबोध से प्रेरित नई कविता में स्थितियों की भयावहता पर चोट करने की गहरी क्षमता है। यहाँ पर राजनीतिक मोहभंग की अनुभूति है किंतु व्यवस्था में परिवर्तन न कर पाने की कसमसाहट भी है। इसलिए विवशता की अभिव्यक्ति व्यंग्य के माध्यम से की गई है।

''लोकतंत्र को,
लाठी में जूते की तरह लटकाए,
चले जा रहे हैं सभी,
सीना फुलाए।''

–सर्वेश्वर

नई कविता के बाद साहित्यिक आंदोलन प्राय: कम दिखते हैं, किंतु कई साहित्यिक प्रवृत्तियाँ समानांतर रूप में बनी हुई हैं। सामान्य तौर पर 1960 ई. के बाद की संपूर्ण कविता को समकालीन कविता कहा जाता है। इसके अंतर्गत कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं जैसे–अकविता, जनवादी कविता, नवगीत आंदोलन इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ गौण प्रवृत्तियाँ जैसे–विचार कविता, बीट कविता, न-कविता इत्यादि भी दिखती हैं।

टास्क नई कविता से क्या अभिप्राय है? नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

6.1.16 अकविता या साठोत्तरी कविता

अकविता 1960 ई. के बाद विकसित हुआ आंदोलन है। इसे प्रतिष्ठित करने की पहली कोशिश 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी के 'प्रारंभ' नामक काव्य संकलन में हुई। अकविता का सबसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'विजप' है, जिसमें तीन रचनाकारों–**गंगा प्रसाद विमल (वि), जगदीश चतुर्वेदी (ज) तथा श्याम परमार (प)** की रचनाएँ संकलित थीं। इस आंदोलन के अन्य प्रमुख कवि हैं–धूमिल, राजकमल चौधरी, मोना गुलाटी, सौमित्र मोहन, मुद्राराक्षस इत्यादि। इनके अतिरिक्त कैलाश वाजपेयी, श्रीकांत वर्मा व सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कुछ कविताएँ भी इस आंदोलन में शामिल की जाती हैं।

अकविता को कहीं-कहीं साठोत्तरी कविता भी कहा जाता हैं। साठोत्तरी कविता के दो अर्थ हैं। सामान्य अर्थ में 1960 ई. के बाद की सारी कविता इसमें शामिल होती हैं। किंतु अब 'साठोत्तरी' को विशेषण नहीं बल्कि संज्ञा का अंश मान लिया गया है अर्थात् यह काल-सूचक नाम नहीं हैं। इस दृष्टि से 'साठोत्तरी कविता' नामकरण अकविता के लिए ही रूढ़ हो गया है।

अकविता आंदोलन भारतीय समाज की परिस्थितियों से स्वभावत: उपजा आंदोलन नहीं है। यह पश्चिम के बौद्धिक प्रभावों से निर्मित हुआ है। पश्चिम के 'एंटी पोएट्री' (Anti Poetry) आंदोलन का वैचारिक प्रभाव तो इस पर है ही, इसका नाम भी उसका अनुवाद है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम में स्त्री-पुरुष अनुपात में बड़ा असंतुलन पैदा हुआ तथा युद्ध के कारण जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास होने से सुखवादी मानसिकता पैदा हुई। इस मानसिकता का प्रतिनिधित्व यूरोप तथा अमेरिका में **'हंगरी जनरेशन'** ने किया। इस भूखी पीढ़ी ने जिस प्रकार नैतिकता के सभी प्रतिमानों की धज्जियाँ उड़ायीं, उसी का प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में अमेरिका की 'बीट जनरेशन', इंग्लैंड के 'टैडी बॉयज़' तथा जापान के 'सन ट्राइबर्स' पर पड़ा। इन्हीं सब आंदोलनों से बंगाल के कुछ कवि प्रभावित हुए, जिन्हें 'विक्षुब्ध पीढ़ी' कहा गया। हिंदी का अकविता आंदोलन 'हंगरी जनरेशन' तथा 'विक्षुब्ध पीढ़ी' के प्रभावों से निर्मित हुआ। हंगरी जनरेशन के प्रमुख कवि थे–एलेन जिंसवर्ग, चार्ल्स मोल्सवर्थ, लैरी जॉन्स

आदि। विक्षुब्ध पीढ़ी में चार कवि प्रसिद्ध थे–मलयनाथ चौधरी, देवीशंकर चट्टोपाध्याय, तपन दास तथा बिमल बसाक।

अकविता के नामकरण पर विवाद है। अकविता के विरोधियों की धारणा है कि 'अ' उपवर्ग का अर्थ 'निषेध' या 'विरोध' से है। इनके अनुसार, अकविता वस्तुत: 'कविता के विरुद्ध' है। आज तक के सभी काव्य-आंदोलन में कुछ मुद्दों पर मूल सहमति रही है किंतु अकविता इस सहमति को तोड़ती है। यह कविता की कोई सामाजिक भूमिका नहीं मानती है। इसके विपरीत, अकवियों की धारणा है कि 'अ' का अर्थ औपचारिकताओं से मुक्ति का प्रतीक है, निषेध या नकार का नहीं। यह कविता, कविता के उन नियमों को खारिज करती है, जो उस पर थोपे गए हैं। कवि अपनी हर बात को बिना किसी औपचारिकता के कविता में कह सके–यही अकविता का प्रयास है।

अकविता की विशेषताएँ

1. अकविता को प्राय: 'अवाँगार्द' (Avant-grade) लेखन कहा गया है। अवाँगार्द लेखन की धारणा पश्चिमी साहित्य की है। इसका शाब्दिक अर्थ है–सेना की अगली टुकड़ी। जिस प्रकार सेना की अगली टुकड़ी सर्वाधिक आक्रामक तथा विध्वंसक होती है, वैसे ही अकविता में भी सामाजिक, राजनीतिक आदर्शों व विचारधाराओं के प्रति विध्वंस का भाव दिखता है। कैलाश वाजपेयी लिखते हैं–

   ''पर जब सभी कुछ/ ऊल ही जुलूल है/ सोचना फिजूल है।''

2. अकविता विचारधाराओं तथा विचारों की विदाई की कविता है। यह किसी भी राजनैतिक विचारधारा को उपयोगी नहीं मानती। लोकतंत्र, समाजवाद जैसे तमाम शब्द इन कवियों के लिए निरर्थक हो चुके हैं। जगदीश चतुर्वेदी ने 'प्रारंभ' की भूमिका में लिखा है–''राजनीतिक विचारों पर काव्यधारा रचने का ज़माना लद चुका है। यह कहने में मुझे कोई अड़चन नहीं कि किसी भी कुंठित या ग्रस्त राजनीतिक विचारधारा में हमारा विश्वास नहीं।'' कैलाश वाजपेयी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'परास्त बुद्धिजीवी का वक्तव्य' में यही भाव इस प्रकार व्यक्त किया है–

   ''न हमारी आँखें हैं आत्मरत,
न हमारे होंठों पर शोकगीत,
जितना कुछ ऊब सके ऊब लिए
हमें अब किसी भी व्यवस्था में डाल दो।''

3. लघु मानव की जो चेतना नई कविता में निरर्थकता बोध को जन्म दे रही थी, वह यहाँ और अधिक तीव्र हो उठी है। ये कवि स्वाधीनता आंदोलन के सपनों को एक-एक कर टूटते हुए देख चुके हैं। ये अपने समकालीन यथार्थ से बेचैन हैं, किंतु उसे बदल पाने में असमर्थ हैं। लंबे समय तक क्रांतिकारी तेवर रखने के बाद अब ये समझ चुके हैं कि उनमें यथार्थ को बदलने की जरा भी शक्ति नहीं है। यही पराजय बोध या असामर्थ्य बोध इन्हें निरर्थकता के भाव से भर देता है। प्रभाकर माचवे लिखते हैं–

   ''घूँट-घूँट/ साइनाइड पीता हूँ/ एक घिसे सोल के/फटे जूते का/
टूटा हुआ फीता हूँ (मन को समझाता हूँ, क्रांति का पलीता हूँ)

   इसी प्रकार, सर्वेश्वर लिखते हैं–

   ''मैं हँसता हूँ/ गाता हूँ/ रोता हूँ, चीखता हूँ/ प्यार करता हूँ, गालियाँ देता हूँ/
लेकिन हर स्थिति में/ वैसा का वैसा ही रह जाता हूँ/ जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ।''

4. मानवीय संबंधों के प्रति अनास्था का भाव अकविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। प्रेम के प्रति इनमें न छायावादी रोमानियत है, न प्रगतिवादी दाम्पत्य-चेतना। प्रयोगवाद व नई कविता में जिस प्रकार प्रेम को एक मानसिक व शारीरिक ज़रूरत समझा गया, इनके यहाँ वैसा दृष्टिकोण भी नहीं है। ये प्रेम शब्द से ही नफरत करते हैं, क्योंकि इनकी राय में यह एक नकली व लिज़लिज़ा शब्द है। जगदीश चतुर्वेदी अपनी कविता 'इतिहासहंता' में लिखते हैं–

''मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को मुट्ठी में भरकर,
आग में झोंक देना चाहता हूँ,
मैं आसपास के घरों में एक हाहाकार मचाना चाहता हूँ,
एक अनिर्दिष्ट व्याघात।''

सौमित्र मोहन ने भी संबंधों के लिज़लिज़ेपन पर निम्नलिखित कविता लिखी है–

''अगर कोई जीने की शर्त है तो,
यह कि आदमी सड़क
का कुत्ता बन जाय या बीवी
का गुलाम या एयर इंडिया
का विज्ञापन।''

5. अकविता महानगरीय बोध की कविता है। अकविता में शामिल कवि मूलतः कस्बों के लोग हैं, जो महानगरीय जीवन के तनाव सहजतापूर्वक झेल नहीं पाते। जगदीश चतुर्वेदी ने इस नगरजन्य वेदना को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि–''हममें से अधिकांश कवि महानगरों या नगरों में रह रहे हैं। नगरों का जीवन यांत्रिक हो गया है। व्यस्तता में लीन एक अजीब-सी उमस और अजनबियत तथा अकेलेपन की भावना हममें घर करती जा रही है।'' इसी महानगरीय-बोध को कुमार 'विकल' अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

''भीड़ के साथ/ दौड़ता जाता हूँ/ जबकि मैं जानता हूँ,
कि भीड़ की आँखें नहीं होतीं/ केवल आवाज़ होती है।''

6. अकविता में नारी के प्रति गरिमापूर्ण दृष्टिकोण नहीं मिलता। इन कवियों की चेतना प्रेम को मुक्त दैहिक भोग से ऊपर नहीं देखती। यही कारण है कि नारी इनकी कविताओं में प्रायः वस्तु बनकर आती है, उसका व्यक्तित्व नहीं उभर पाता। श्रीकांत वर्मा ऐसे ही निषेध भाव से लिखते हैं–

''कवियों की झूठ में लिपटी हुई,
वेश्या माँ,
अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही है।''

7. अकविता भाषा और शिल्प के दृष्टि के प्रति कोई सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तावित नहीं करती क्योंकि उसका उद्देश्य सभी औपचारिकताओं से मुक्ति है। वस्तुतः इसमें भाषा तथा कविता के प्रति निषेध का भाव दिखता है जो इनके सर्वतोन्मुखी निषेध का ही एक हिस्सा है। निम्नलिखित उदाहरणों में ऐसा ही भाव दिखता है–

''मगर खबरदार मुझे कवि मत कहो,
मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ/ ईजाद करता हूँ/ गाली/
फिर उसे बुदबुदाता हूँ/ मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ।'' **–श्रीकांत**

''अब यहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है,
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों में,
× × × ×
अर्थ खोजना व्यर्थ है।'' **–धूमिल**

स्पष्ट है कि अकविता नई कविता की निषेधवादी प्रवृत्तियों का विस्तार है। हिंदी कविता के इतिहास में साधारणतः इसे अंधकार व पतन का काल माना गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

9. प्रयोगवाद में प्रयुक्त प्रयोग शब्द नए जीवन सत्यों को पाने की बेचैनी का द्योतक है।
10. क्या प्रयोगवाद मानता है कि कविता के उद्देश्य कविता से बाहर होते हैं?
11. क्या प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को काफी महत्त्व दिया है?
12. प्रगतिवाद के बाद हिंदी कविता में स्वानुभूति एवं कला पक्ष पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।

6.2 सारांश (Summary)

- प्रारंभ में 'छायावाद' का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किंतु कालांतर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।
- छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म है।
- छायावाद हिंदी काव्य का गौरवपूर्ण अध्याय है तथा प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनके योगदान से हिंदी साहित्य को श्री समृद्ध प्राप्त हुई है।
- मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य 'स्वायत्त' या 'स्वतंत्र' संरचना नहीं है बल्कि समाज की उत्पादन प्रणाली का ही एक उप-उत्पाद है।
- आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही एक नया मोड़ उपस्थित होता है जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया है।
- प्रगतिवाद कलाकर्म को सामाजिक कार्य मानता है तथा इन दोनों की अद्वैतता की घोषणा करता है जबकि प्रयोगवाद के अनुसार कविता के प्रति दायित्व और नागरिक दायित्व में मूलभूत फर्क है।
- नई कविता छठे दशक की कविता है। अज्ञेय ने 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित किया और यहीं से 'प्रयोगवाद' 'नई कविता' में रूपांतरित हो गया।
- अकविता 1960 ई. के बाद विकसित हुआ आंदोलन है। इसे प्रतिष्ठित करने की पहली कोशिश 1963 ई. में जगदीश चतुर्वेदी के 'प्रारंभ' नामक काव्य संकलन में हुई। अकविता का सबसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'विजप' है।

6.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **स्वीकार्य**–जिसको मान लिया जाए, मंजूरी, सहमति
2. **पुनर्विचार**–किसी विषय पर दुबारा चिंतन करना

6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. छायावाद का अर्थ, परिभाषा और छायावादी काव्य विशेषताओं का वर्णन करें।
2. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता से क्या तात्पर्य है? वर्णन करें।

3. साहित्य की मार्क्सवादी परिभाषा तथा साहित्यिक दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।

4. प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद में अंतर स्पष्ट करें तथा प्रयोगवाद का अर्थ एवं परिभाषा दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. छायावादी कविता में	2. प्रतिष्ठित	3. रहस्यवाद	4. निराला
5. (ग)	6. (घ)	7. (ग)	8. (घ)
9. सत्य	10. असत्य	11. सत्य	12. असत्य

6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*

इकाई–7 : आधुनिक काल (गद्य साहित्य) : हिंदी गद्य का उद्भव एवं विकास

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 आधुनिक काल (गद्य साहित्य)
7.1.1 नामकरण एवं समय सीमा
7.1.2 हिंदी गद्य का उद्भव और विकास
7.2 सारांश (Summary)
7.3 शब्दकोष (Keywords)
7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आधुनिक काल के गद्य साहित्य को जानने में।
- नामकरण एवं समय सीमा जानने में।
- हिंदी गद्य का उद्भव और विकास समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ। आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों को दिया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल का नाम गद्य काल इसलिए रखा, क्योंकि इस काल में गद्य की प्रधानता परिलक्षित हो रही है तथापि गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित-सा हो जाता है, इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृत्तियों का समावेश तो हो ही जाता है, साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी परंपरा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। निश्चय ही आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जन-जीवन के निकट ला दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

7.1 आधुनिक काल (गद्य साहित्य)

7.1.1 नामकरण एवं समय सीमा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास के चतुर्थ काल खंड को गद्य की प्रमुखता के कारण गद्यकाल नाम दिया है और इसकी समय सीमा संवत् 1900 वि. से 1980 वि. अर्थात् सन् 1843 ई. से 1923 ई. स्वीकार

नोट

की है। आधुनिक काल के लिए जो विभिन्न नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं–

1 गद्य काल	–	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2 वर्तमान काल	–	मिश्रबंधु
3 आधुनिक काल	–	डॉ. रामकुमार वर्मा
4 आधुनिक काल	–	डॉ. गणपति चंद्रगुप्त

आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम गद्यकाल इसलिए रखा, क्योंकि इस काल में गद्य की प्रधानता परिलक्षित हो रही है तथापि गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित-सा हो जाता है, अत: इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृत्तियों का समावेश तो हो ही जाता है, साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी परंपरा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। निश्चय ही आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जनजीवन के निकट ला दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

7.1.2 हिंदी गद्य का उद्‌भव और विकास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि बल्लभाचार्य जी के पुत्र **गोसाईं विट्ठलनाथ जी** ने **शृंगार रस मंडन** नामक एक ग्रंथ **ब्रजभाषा गद्य** में लिखा था जिसकी भाषा अपरिमार्जित एवं अव्यवस्थित है।

इसके उपरांत 'वार्ता साहित्य' की रचना गद्य में हुई। यद्यपि अब तक शताधिक वार्ताग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं पर महत्त्वपूर्ण दो ही ग्रंथ हैं–

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
2. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

इन दोनों वार्ताग्रंथों के रचयिता मूल रूप में बल्लभाचार्य जी के पौत्र **गोसाईं गोकुलनाथ** हैं, जिन्हें अनुयाइयों ने विस्तार देकर ग्रंथ का रूप प्रदान किया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में बल्लभाचार्य के शिष्यों और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में गोसाईं विट्‌ठलनाथ के शिष्यों का जीवनवृत्त है।

बल्लभ संप्रदाय का वार्ता साहित्य गोसाईं विट्‌ठलनाथ और गोसाईं गोकुलनाथ के वचनामृत पर आधारित है जिसे लिपिबद्ध करने का कार्य श्रीकृष्ण भट्‌ट, कल्याण भट्‌ट और हरिराय ने किया। हरिराय की गणना ब्रजभाषा गद्यकारों में सबसे ऊपर की जाती है। कथात्मक और तथ्य निरूपक दोनों प्रकार का गद्य हरिरायजी ने लिखा है।

ब्रजभाषा गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ

क्र.सं.	*रचना का नाम*	*रचयिता*	*रचनाकाल*
1.	शृंगार रस मंडन	गोसाईं विट्‌ठलनाथ	–
2.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोकुल नाथ	17वीं शती का उत्तरार्द्ध
3.	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ	''
4.	अष्टयाम	नाभादास	1603 ई.
5.	अगहन माहात्म्य	बैकुंठमणि शुक्ल	1627 ई.
6.	वैशाख माहात्म्य	बैकुंठमणि शुक्ल	1627 ई.
7.	नासिकेतोपाख्यान	–	1800 ई.
8.	वैताल पचीसी	सुरति मिश्र	1710 ई.
9.	आइने अकबरी की भाषा वचनिका	लाला हीरालाल	1795 ई.

वार्ता साहित्य प्राय: प्रचारपरक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है। उसकी भाषा में तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों की बहुलता है। **चौरासी वैष्णवन की वार्ता** 17वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखी गई, जबकि **'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता'** औरंगजेब के काल की है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ताग्रंथ के रचयिता मूल रूप में बल्लभाचार्य जी के पुत्र .... हैं।
2. हरिराय की गणना .... में सबसे ऊपर की जाती है।
3. .... प्राय: प्रचारक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है।

नाभादास द्वारा रचित **'अष्टयाम'** (1603 ई.) पुस्तक ब्रजभाषा गद्य में है जिसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है। गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण ब्रजभाषा गद्य का पूरा विकास नहीं हो सका। वार्ताग्रंथों में उसका परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित रूप उपलब्ध होता है, किंतु आगे चलकर काव्य की जो टीकाएँ लिखी गईं उनमें गद्य का रूप बहुत अशक्त एवं अव्यवस्थित रहा। **जानकीप्रसाद** द्वारा रचित **रामचंद्रिका** की टीका (1817 ई.) की भाषा भी अशक्त एवं अव्यवस्थित है।

क्या आप जानते हैं चौरासी वैष्णवन की वार्ता 17वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखी गई, जबकि दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता औरंगजेब के काल की है।

1741 ई. में **रामप्रसाद निरंजनी** ने **'भाषा योगवाशिष्ठ'** नाम का गद्य ग्रंथ साफ-सुथरी **खड़ी बोली** में लिखा। रामप्रसाद निरंजनी पटियाला दरबार के थे। इनका गद्य देखकर यह पता चलता है कि मुंशी सदासुखलाल एवं लल्लूलाल से 60 वर्ष पहले भी खड़ी बोली गद्य का परिमार्जित रूप थी। **'योगवाशिष्ठ'** में प्रयुक्त गद्य आचार्य शुक्ल के अनुसार सर्वाधिक परिमार्जित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने **रामप्रसाद निरंजनी** को ही **प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक** माना है।

खड़ी बोली गद्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तक **गंग कवि** द्वारा रचित **'चंद छंद बरनन की महिमा'** है। इसकी रचना सम्राट अकबर के समय में हुई थी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने खड़ी बोली गद्य की जिन महत्त्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में किया है उनका क्रमबद्ध विवरण इस प्रकार है–

खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिता

क्र.सं.	*रचना*	*रचयिता*	*रचनाकाल*
1.	चंद छंद बरनन की महिमा	गंगकवि	सम्राट अकबर के समय में
2.	भाषा योगवाशिष्ठ	राम प्रसाद निरंजनी	1741 ई.
3.	पद्म पुराण का भाषानुवाद	पं. दौलतराम	1766 ई.
4.	मंडोवर का वर्णन	अज्ञात	1773-1778 ई.
5.	सुखसागर	मुंशी सदासुखलाल 'नियाज'	1818 ई.
6.	प्रेमसागर	लल्लूलाल	1800 ई.
7.	नासिकेतोपाख्यान	सदल मिश्र	1800 ई.
8.	रानी केतकी की कहानी (उदयभान चरित)	इंशा अल्ला खाँ	1800 ई.

लल्लूलाल जी आगरा के गुजराती ब्राह्मण थे। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदी-उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने खड़ी बोली गद्य में **प्रेमसागर** की रचना की जिसमें भागवत के दशम स्कंध की कथा वर्णित

है। लल्लूलाल जी ने इस कृति में अरबी-फारसी के शब्दों से परहेज किया है। इन्होंने उर्दू में भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं जिनके नाम हैं–सिंहासन बत्तीसी, वैताल पचीसी, शकुंतला नाटक और माधोनल। लल्लूलाल जी ने 'बिहारी सतसई' की टीका भी लिखी जिसका नाम है **लाल चंद्रिका।** कलकत्ता में इन्होंने एक प्रेस भी खोला था, जिसे फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी से पेंशन लेने के बाद ये आगरा में ले आए। इस प्रेस का नाम इन्होंने 'संस्कृत प्रेस' रखा।

सदल मिश्र भी फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता में काम करते थे। इन्होंने भी कॉलेज अधिकारियों की प्रेरणा से खड़ी बोली गद्य की पुस्तक **'नासिकेतोपाख्यान'** तैयार की। ब्रजभाषा के साथ-साथ कुछ पूरबीपन इनकी भाषा में दिखाई देता है।

मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' दिल्ली के रहने वाले थे। इन्होंने विष्णुपुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक का निर्माण किया और हिंदी में **श्रीमद्भागवत पुराण का अनुवाद 'सुखसागर'** नाम से किया। मुंशी जी ने न तो किसी अधिकारी की प्रेरणा से और न ही किसी दिए हुए नमूने पर अपने ग्रंथ लिखे। उन्होंने हिंदुओं की बोलचाल की शिष्टभाषा में अपनी रचनाएँ लिखीं।

इंशा अल्ला खाँ उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे जो दिल्ली के उजड़ने पर लखनऊ चले आए थे। इंशा अल्ला खाँ ने **'रानी केतकी की कहानी'** या **'उदयभान चरित'** की रचना 1800 ई. के आसपास की। इस ग्रंथ की रचना उन्होंने ठेठ हिंदी में किए जाने की इच्छा व्यक्त की जिसमें हिंदी को छोड़ किसी और बोली का पुट न हो।

हिंदी गद्य के इन चार प्रारंभिक लेखकों में से इंशा की भाषा सबसे अधिक चटकीली, मुहावरेदार और चलती हुई भाषा है। इंशा रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन कौशल दिखाना चाहते थे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. योगवाशिष्ठ में प्रयुक्त गद्य .... के अनुसार सर्वाधिक परिमार्जित है।
   (क) गंगकवि (ख) आचार्य शुक्ल
   (ग) सदल मिश्रा (घ) इंशा अल्ला खाँ
5. पंडित दौलतराम .... के रचयिता हैं।
   (क) सुखसागर (ख) प्रेमसागर
   (ग) पद्म पुराण का भाषानुवाद (घ) रत्नसागर
6. कौन रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन कौशल दिखाना चाहते थे?
   (क) ईशा अल्ला खाँ (ख) सदल मिश्र
   (ग) गंगकवि (घ) लल्लूलाल

आचार्य शुक्ल ने इन चारों लेखकों में मुंशी सदासुखलाल को विशेष महत्त्व दिया है। मुंशी सदासुखलाल को हिंदी गद्य का प्रवर्तन करने वालों में स्थान दिया जाना चाहिए। इन चारों लेखकों का रचनाकाल मोटे तौर पर 1800 ई. के आसपास है, अतः हिंदी गद्य का सूत्रपात भी 1800 ई. के आसपास से समझना चाहिए।

ईसाई धर्म प्रचारकों में से एक **विलियम केरे** ने बाइबिल का हिंदी और बंगला अनुवाद कराया। इनका गद्य सीधा और सरल है, चलती हुई भाषा का प्रयोग उसमें किया गया है।

अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ में कचहरी की भाषा फारसी ही रही, कुछ प्रांतों में प्रांतीय भाषाएँ अदालती कामकाज में प्रयुक्त होने लगीं। कुछ प्रभावशाली मुस्लिम नेताओं–सर सैयद अहमद खाँ ने स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का भी विरोध किया। **राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद** हिंदी के पक्षपाती थे तथा अंग्रेजों के कृपापात्र थे। हिंदी की रक्षा के लिए उन्होंने महान कार्य किया तथा वे बराबर सर सैयद अहमद खाँ का विरोध करते रहे। गार्सा-द-तासी फ्रांसीसी विद्वान ने हिंदी, उर्दू के इस झगड़े को फ्रांस में बैठकर हवा दी। आचार्य शुक्ल के अनुसार–''अदालती भाषा उर्दू होते हुए भी शिक्षा विधान में देश की असली भाषा हिंदी को स्थान देना पड़ा।''

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद

नोट

हिंदी-उर्दू के इस संघर्षकाल में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद और राजा लक्ष्मणसिंह हिंदी के पक्षपाती बनकर सामने आए। शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर होने से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने काशी से **'बनारस अखबार'** निकालना प्रारंभ किया। जिसकी भाषा में उर्दू का पुट था। शिक्षा विभाग में मुसलमानों का दल अधिक शक्तिशाली था, अत: उन्होंने मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करते हुए आप चलती हुई भाषा का समर्थन किया जिसमें उर्दू के चलते हुए शब्दों का प्रयोग होता था। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की लिखी पुस्तकें हैं–**आलसियों का कीड़ा, राजा भोज का सपना, इतिहास तिमिरनाशक, मानव धर्म का सार, उपनिषद् सार, भूगोल हस्तामलक** आदि। वस्तुत: सितारेहिंद की भाषा का स्वरूप ऐसा था कि वे हिंदी उर्दू की समस्या को हल करने का प्रयास करते जान पड़ते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने बड़ी चुतराई से हिंदी की रक्षा की अन्यथा मुसलमान नेता हिंदी को स्कूली शिक्षा से बाहर कर देने के लिए अंग्रेजों पर दबाव बनाए हुए थे।

राजा साहब ने अपनी प्रारंभिक पुस्तकों–**'राजा भोज का सपना'** आदि में **सरल हिंदी** का प्रयोग किया है। उसमें वह **उर्दूपन** नहीं है जो बाद की पुस्तकों **'इतिहास तिमिरनाशक'** में दिखाई पड़ता है। यही नहीं अपितु उनकी पुस्तक **'मानव धर्म सार'** में तो उन्होंने **संस्कृतनिष्ठ** हिंदी का प्रयोग किया है। संभवत: शिक्षा विभाग में नौकरी करने के बाद अंग्रेज अधिकारियों का रुख देखकर उन्होंने अपनी भाषा नीति बदली और अपनी बाद की पुस्तकों में उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रयोग करने लगे। इतिहास तिमिरनाशक भाग–2 की भूमिका में वे लिखते हैं कि मैंने इस पुस्तक में भाषा का वही स्वरूप रखा है जो 'वैताल पचीसी' का है। **'वैताल पचीसी' की भाषा उर्दू है।**

राजा लक्ष्मण सिंह

राजा लक्ष्मण सिंह आगरा के रहने वाले थे। उन्होंने सन् 1861 ई. में आगरा से **'प्रजा हितैषी'** नामक पत्र निकाला और **1862** ई. में **'अभिज्ञान शाकुंतलम'** का अनुवाद सरस एवं विशुद्ध हिंदी में प्रकाशित किया। उन्होंने अपनी भाषा नीति को स्पष्ट करते हुए कहा है–''हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी, फारसी के।'' राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुंतला नाटक' की भाषा देखकर अंग्रेज विद्वान **'फ्रेडरिक पिंकाट'** बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस नाटक का परिचयात्मक विवरण देते हुए बहुत सुंदर लेख लिखा। पिंकाट साहब हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे और भारत का हित हृदय से चाहते थे। राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र आदि हिंदी लेखकों से वे बराबर हिंदी में पत्र व्यवहार करते रहते थे तथा इंग्लैंड के अखबारों में हिंदी लेखकों और ग्रंथों का परिचय बराबर देते रहते थे। आचार्य शुक्ल का विचार है कि 'उस समय के हिंदी लेखकों के घर में पिंकाट साहब के दो-चार पत्र अवश्य मिलेंगे।' पिंकाट साहब भारत में भी आए और लखनऊ में ही उनका देहांत हुआ।

टास्क खड़ी बोली गद्य की प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचयिताओं के विषय में उल्लेख कीजिए।

हिंदी के रक्षकों में **बाबू शिवप्रसाद सितारेहिंद** के साथ-साथ **पंजाब के बाबू नवीनचंद्र राय** भी थे। उर्दू के पक्षपातियों से उन्होंने बराबर संघर्ष किया। नवीन बाबू ने एक व्याख्यान में कहा–

''उर्दू के प्रचलित होने से देशवासियों को कोई लाभ न होगा क्योंकि वह भाषा खास मुसलमानों की है। उसमें मुसलमानों ने व्यर्थ में बहुत से अरबी-फारसी शब्द भर दिए हैं। ··· उर्दू में आशिकी कविता के अतिरिक्त किसी गंभीर विषय को व्यक्त करने की शक्ति ही नहीं है।''

नवीन बाबू के इस व्याख्यान से **हिंदी के पक्के दुश्मन गार्सा-द-तासी** फ्रांस में बैठे-बैठे बहुत चिढ़े और उन्होंने नवीन बाबू को हिंदू कहते हुए हिंदी का विरोध एवं उर्दू का समर्थन किया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. विलियम केरे ने बाईबिल का हिंदी और बंगला में अनुवाद नहीं कराया।
8. शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर होने से पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने काशी से बनारस अखबार निकालना प्रारंभ किया।
9. पिकांट हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे और भारत का हित ह्रदय से चाहते थे।

7.2 सारांश (Summary)

- गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ। आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों को दिया जा सकता है।
- ईसाई धर्म प्रचारकों में से एक विलियम केरे ने बाइबिल का हिंदी और बंगला अनुवाद कराया। इनका गद्य सीधा और सरल है, चलती हुई भाषा का प्रयोग उसमें किया गया है।
- अंग्रेजी राज्य के प्रारंभ में कचहरी की भाषा फारसी ही रही, कुछ प्रांतों में प्रांतीय भाषाएँ अदालती कामकाज में प्रयुक्त होने लगीं। कुछ प्रभावशाली मुस्लिम नेताओं–सर सैयद अहमद खाँ ने स्कूलों में हिंदी पढ़ाने का भी विरोध किया।

7.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **आधुनिक काल**–हिंदी साहित्य में आधुनिक काल (गद्य) 1900 वि से 1980 वि
2. **रचना**–साहित्यिक कृति

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नामकरण एवं समय सीमा से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
2. हिंदी गद्य का उद्‌भव और विकास को विस्तार से समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. गोसाईं गोकुलनाथ	2. ब्रजभाषा गद्यकारों	3. वार्ता साहित्य
4. (ख)	5. (ग)	6. (क)
7. असत्य	8. सत्य	9. सत्य

7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास–*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*

इकाई–8 : हिंदी उपन्यास : विकास के प्रमुख चरण, हिंदी कहानी का विकास

नोट

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
8.1 हिंदी उपन्यास के विकास के प्रमुख चरण
8.1.1 हिंदी उपन्यास का विकास
8.1.2 हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार
8.1.3 हिंदी कहानी का विकास
8.1.4 हिंदी के प्रमुख कहानीकार
8.2 सारांश (Summary)
8.3 शब्दकोश (Keywords)
8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी उपन्यास के विकासक्रम का अध्ययन करने में।
- हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों को जानने में।
- हिंदी कहानी का विकास समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों को दिया जा सकता है, क्योंकि हिंदी में इस विधा का प्रारंभ अंग्रेजी एवं बांग्ला उपन्यासों की लोकप्रियता से हुआ। हिंदी में उपन्यास का आरंभ भी अंग्रेजी से अनूदित उपन्यासों से माना जाता है। हिंदी उपन्यास के विकासक्रम का अध्ययन करने के लिए इसे तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है। यदि 'प्रेमचंद' को हिंदी उपन्यासकों में केंद्रबिंदु मान लें तो ये तीन चरण निम्नवत हैं–प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास, प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास और प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास।

हिंदी कहानी का स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश व जातक कथा आदि में ढूँढ़ने के प्रयास किए गए हैं लेकिन इन्हें आख्याथिका, गल्प, आख्यान व कथा तो माना जा सकता है, इस अर्थ में कहानी नहीं जिस अर्थ में आज कहानी लिखी जा रही है। हिंदी कहानी की विकास यात्रा को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद–प्रसाद युग, उत्तर प्रेमचंद युग, स्वातंत्र्योत्तर युग।

8.1 हिंदी उपन्यास के विकास के प्रमुख चरण

8.1.1 हिंदी उपन्यास का विकास

आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यासों को दिया जा सकता है, क्योंकि हिंदी में इस विधा का श्रीगणेश अंग्रेजी एवं बंगला

नोट

उपन्यासों की लोकप्रियता से हुआ। **आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी** ने **'सरस्वती'** में प्रकाशित एक निबंध **'उपन्यास रहस्य'** में इस बात को स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही है जिनसे प्रेरणा लेकर हिंदी में भी उपन्यास रचना की जाने लगी है। **बालकृष्ण भट्ट** ने भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखा—''हम लोग जैसा और बातों में अंग्रेजों की नकल करते जाते हैं, उपन्यास का लिखना भी उन्हीं के दृष्टांत पर सीख रहे हैं।'' हिंदी में उपन्यास का आरंभ भी अंग्रेजी से अनूदित उपन्यासों से माना जाता है। सन् 1853 ई. में वंशीधर द्वारा **थामस डे** के लोकप्रिय उपन्यास **'सैण्डफोर्ड एण्ड मर्टन'** का अनुवाद किया गया तथा डॉ. जानसन के उपन्यास **'रासेलास'** का हिंदी अनुवाद सन् 1879 ई. में किया गया।

हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यास के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। इस संबंध में जिन दो उपन्यासों का नाम लिया जाता है वे हैं—**श्रद्धाराम फुल्लौरी** कृत **'भाग्यवती'** (सन् 1877 ई.) तथा लाला **श्रीनिवासदास** द्वारा लिखा गया **'परीक्षा गुरु'** (सन् 1882 ई.)। इनमें से प्रथम उपन्यास में सुधारवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है तथा द्वितीय उपन्यास में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ प्रमाणित करते हुए उपदेश वृत्ति का आधार ग्रहण किया गया है। **'परीक्षा गुरु'** को ही अधिकांश विद्वान **हिंदी का पहला उपन्यास** मानते हैं।

क्या आप जानते हैं हिंदी उपन्यास के विकासक्रम का अध्ययन करने के लिए हम उसे तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं।

1. प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास
2. प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास
3. प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास

1. प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास

यह हिंदी उपन्यास का प्रारंभिक चरण था अत: अभी तक उपन्यास विधा अपना स्वरूप ग्रहण करने का प्रयास कर रही थी। इस काल में लिखे गए उपन्यास प्रधानत: सुधारवादी एवं उपदेशवादी प्रवृत्ति से परिचालित थे और उनका **मुख्य उद्देश्य मनोरंजन** ही माना जा सकता है। श्रद्धाराम फुल्लौरी एवं लाला श्रीनिवासदास के उपन्यासों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त इस काल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों की रचना अधिक हुई है, जिनका जनजीवन से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं दिखाई पड़ता। तिलस्मी उपन्यासों में यद्यपि 'प्रेम चित्रण' का अवसर भी आ गया है, किंतु उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य रहस्य-रोमांच की ऐयारी एवं तिलस्मी दुनिया में ले जाकर पाठकों को चमत्कृत करना मात्र रहा है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार **पंडित बालकृष्ण भट्ट** को माना जा सकता है। इनके लिखे तीन उपन्यास **'रहस्यकथा'** (1879 ई.), **नूतन ब्रह्मचारी** (1886 ई.) तथा **एक अजान सौ सुजान** (1892 ई.) उल्लेखनीय हैं। इनके उपन्यासों का मूल स्वर सुधारवादी एवं उपदेशमूलक है।

भारतेंदु जी के मित्र **ठाकुर जगमोहन सिंह** ने **'श्यामा स्वप्न'** नामक एक वृहद् उपन्यास की रचना सन् 1888 ई. में की। इसका प्रमुख प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण रीतिकालीन पद्धति पर करना रहा है। **लज्जाराम मेहता** ने सुधारवादी ढंग पर **'धूर्त रसिकलाल'** (1899 ई.), **स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी** (1899 ई.), **बिगड़े कर सुधार** (1907 ई.) तथा **आदर्श हिंदू** (1907 ई.) इन चार उपन्यासों की रचना की। इनमें दुर्व्यसनों एवं सामाजिक बुराइयों के परिणामों को चित्रित कर पाठकों को उपदेश दिया गया है। **राधाकृष्णदास** ने 'गोवध' की समस्या का निवारण करने हेतु **'नि:सहाय हिंदू'** (1890 ई.) नामक उपन्यास लिखा।

प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासकारों में जिस उपन्यासकार का नाम सर्वाधिक आदर से लिया जाता है—वे हैं **बाबू देवकी नंदन खत्री।** इन्होंने तिलस्मी एवं ऐयारी उपन्यासों की रचना करके पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन किया। ऐसा कहा जाता है कि देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इनके लिखे प्रसिद्ध उपन्यास हैं—**चंद्रकांता** (1891 ई.), **चंद्रकांता संतति, काजर की कोठरी, भूतनाथ,**

नोट

कुसुम कुमारी, नरेंद्र मोहिनी, वीरेंद्र वीर आदि। इन उपन्यासों में घटनाओं का संयोजन इतनी कुशलता से किया गया है कि पाठक की कुतूहल वृत्ति अंत तक जाग्रत रहती है और वह अंत तक उपन्यास के जादू में बँधा रहता है। भले ही साहित्यिक दृष्टि से ये उपन्यास उच्चकोटि के न हों, किंतु पाठकों को बाँधने की इनकी शक्ति बेजोड़ है। खत्री जी के उपन्यासों ने पाठकों का भरपूर मनोरंजन किया इसमें दो राय नहीं है।

जासूसी उपन्यासों का श्रीगणेश करने का श्रेय हिंदी में **गोपालराम गहमरी** को दिया जा सकता है। वे अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखक **आर्थर कानन डायल** से बेहद प्रभावित थे। गहमरी जी के उपन्यासों में प्रमुख हैं–**सरकटी लाश** (1900 ई.), **जासूस की भूल** (1901 ई.), **जासूस पर जासूसी** (1904 ई.), **गुप्त भेद** (1913 ई.), **जासूस की ऐयारी** (1914 ई.) आदि। इन उपन्यासों ने विशुद्ध मनोरंजन का ही कार्य किया है। जासूसी उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी कृत **जिंदे की लाश, तिलस्मी शीशमहल, लीलावती, याकूत तख्ती** आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी जी ने कुछ सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं, जिनमें समाज सुधार पर विशेष बल दिया गया है। ऐसे उपन्यासों में **प्रणयिनी परिणय, मस्तानी, सुख शर्वरी, प्रेममयी** आदि का नाम लिया जा सकता है।

द्विवेदीयुगीन उपन्यासकारों में अयोध्यासिंह उपाध्याय का नाम भी आदर से लिया जाता है। उनके लिखे दो उपन्यास हैं–**ठेठ हिंदी का ठाठ** (1899 ई.) तथा **अधखिला फूल** (1907 ई.)। प्रथम उपन्यास में हिंदू समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया गया है, जबकि द्वितीय उपन्यास में एक जमींदार की कामुकता का परिष्कार दिखाया गया है। इस प्रकार उनके दोनों ही उपन्यास सुधारवादी परंपरा के उपन्यास हैं।

इस काल के कुछ अन्य उपन्यासकार हैं–लज्जाराम शर्मा (आदर्श दम्पति, आदर्श हिंदू, बिगड़े का सुधार) मन्नन द्विवेदी (रामलाल) तथा राधिकारमण प्रसाद सिंह (प्रेमलहरी) आदि।

हिंदी उपन्यासों के प्रथम चरण में लिखे गए उक्त उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार ही रहा है। भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से इस काल के उपन्यास उल्लेखनीय न हों, किंतु इन्होंने उपन्यास को एक दिशा देने का प्रयास अवश्य किया है। उपन्यास से विषय, शिल्प एवं भाषा का जो विकास इस काल में हुआ उसका संशोधित रूप हमें आगे के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। यद्यपि इन उपन्यासों में अस्वाभाविकता एवं अति मानवीयता जैसे दोष विद्यमान हैं तथापि इन उपन्यासों ने प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। इन उपन्यासों से वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक एवं संवादात्मक शैली का प्रयोग होना प्रारंभ हो चुका था जिसने परवर्ती उपन्यासकारों को अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करने में अपूर्व योगदान किया होगा, ऐसा कहना अत्युक्ति संगत न होगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस काल में हिंदी उपन्यास ने अपना मार्ग तलाश लिया। अब वह एक राजमार्ग पर पहुँच चुका था जहाँ से आगे का रास्ता सीधा एवं सपाट था। इस काल के उपन्यास प्रधानतः सुधारवादी एवं उपदेशात्मक वृत्ति को लेकर लिखे गए जिनका मूल उद्देश्य मनोरंजन करना था।

2. प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास

प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यासकारों में 'प्रेमचंद' अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। वस्तुतः सही अर्थों में उन्होंने ही हिंदी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उनके उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति की गई थी और जनजीवन का प्रमाणिक एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखना सुलभ हुआ था। अपने महान उपन्यासों के कारण वे वास्तव में 'उपन्यास सम्राट' की पदवी पाने के अधिकारी सिद्ध हुए।

प्रेमचंद के उपन्यास राष्ट्रीय आंदोलन, कृषक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विविध विषयों से संबंधित हैं। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने प्रेमचंद का मूल्यांकन करते हुए लिखा है–"प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझबूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।"

प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों में हैं–**सेवासदन** (1918 ई.), **प्रेमाश्रम** (1922 ई.), **रंगभूमि** (1925 ई.), **कायाकल्प** (1926 ई.), **निर्मला** (1927 ई.), **गबन** (1931 ई.), **कर्मभूमि** (1933 ई.) और **गोदान** (1935 ई.), **मंगलसूत्र** (अपूर्ण)।

नोट

प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया। वस्तुत: **'सेवासदन'** के प्रकाशन के साथ ही हिंदी उपन्यास को नई दिशा प्राप्त हो गई। इस उपन्यास में उन्होंने विवाह से जुड़ी समस्याओं–दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, पत्नी का स्थान आदि को उठाया है, किंतु इन्हें प्रस्तुत करने का ढंग पूर्ववर्ती उपन्यासों से एकदम अलग है। **'निर्मला'** में उन्होंने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है। कृषक जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण उन्होंने **'गोदान'** में किया है जो उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जाता है। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थ एवं प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है कि इसे सर्वत्र सराहना प्राप्त हुई है। समाज में व्याप्त छुआछूत एवं सांप्रदायिकता की समस्या को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यास जीवन के विविध पहलुओं से जुड़े हुए हैं। वे हिंदी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार माने जाते हैं। विषयवस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रेमचंद के समकक्ष हिंदी का कोई अन्य उपन्यासकार खड़ा नहीं किया जा सकता। प्रेमचंद के उपन्यासों में विषय की विविधता एवं व्यापकता के साथ-साथ चरित्रों का स्वाभाविक विकास दिखाया गया है। उनके उपन्यासों में राजनीतिक समस्याओं का निरूपण भी किया गया है, **'रंगभूमि'** में शासक वर्ग के अत्याचारों का चित्रण है तो **'कर्मभूमि'** में स्वतंत्रता संग्राम की एक झलक है। **गबन** में उन्होंने स्त्रियों के आभूषण प्रेम के दुष्परिणामों का चित्रण किया है तो **'कायाकल्प'** 'पुनर्जन्म' से संबंधित है। प्रेमचंद के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता है–आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, जिसके कारण वे पाठकों में अति लोकप्रिय हुए हैं। भाषा प्रयोग में वे अपने समकालीन सभी उपन्यासकारों से श्रेष्ठ हैं और इस दृष्टि से वे एक मानदंड बन गए हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही वे हिंदी उपन्यास में एक नए युग का सूत्रपात कर सकने में सफल हुए हैं।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में **जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृंदावन लाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जी. पी. श्रीवास्तव** आदि प्रमुख हैं। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने काव्य, नाटक आदि क्षेत्रों में सफलता पाने के साथ-साथ उपन्यासों की रचना करके भी ख्याति अर्जित की। उन्होंने **कंकाल** (1929 ई.) तथा **तितली** (1934 ई.) नामक दो उपन्यासों की रचना की है। **'इरावती'** नामक एक अधूरा उपन्यास भी उन्होंने लिखा है जिसे वे अपनी अकाल मृत्यु के कारण पूरा नहीं कर सके। **'कंकाल'** में प्रसाद जी ने व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन किया है जबकि **'तितली'** के द्वारा उन्होंने प्रेम के आदर्श स्वरूप की व्याख्या की है साथ ही इसमें ग्रामीण समस्याओं का भी चित्रण किया गया है। प्रसाद के उपन्यासों में नाटकीयता अधिक है साथ ही भाषा का अलंकृत प्रयोग भी है। चरित्रांकन उतना सूक्ष्म नहीं है जितना प्रेमचंद के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (1891-1946) के दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं–**भिखारिणी** और **माँ।** भिखारिणी उपन्यास में उन्होंने 'अंतर्जातीय विवाह' की समस्या को कथानक का आधार बनाया है तथा 'माँ' उपन्यास में उन्होंने मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण करते हुए वेश्यालयों के वातावरण को प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकारों में **आचार्य चतुरसेन शास्त्री** एक प्रतिभा संपन्न उपन्यासकार थे। उन्होंने इतिहास पुराण से कथानकों का चयन करने के साथ-साथ काल्पनिक पात्रों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन करने वाले उपन्यास भी लिखे। **वैशाली की नगरवधू, वयं रक्षामः, सोमनाथ, आलमगीर, सोना और खून, रक्त की प्यास, आत्मदाह, अमर अभिलाषा, मंदिर की नर्तकी, नरमेघ, अपराजिता** आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'उग्र' जी के उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है। समाज की यथार्थ एवं नग्न तस्वीर उनके उपन्यासों में उपलब्ध होती है। वे हिंदी के प्रथम विवादास्पद उपन्यासकार कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनके उपन्यासों में समाज के उस वर्ग का चित्रण है जो पतित वर्ग है यथा–वेश्या वर्ग। उनकी सपाट बयानी अधकचरे नवयुवकों की रुचि को विकृत करने के दोष से बच नहीं पाई है। उग्र जी के कुछ प्रसिद्ध उपन्यास हैं-**चंद हसीनों के खतूत** (1927 ई.), **दिल्ली का दलाल** (1927 ई.), **बुधुआ की बेटी** (1928 ई.)। **शराबी** (1930 ई.), **सरकार तुम्हारी आँखों में** (1936 ई.), **जीजा जी** (1944 ई.), **फागुन के दिन** (1955 ई.) **ऋषभचरण जैन।** 'उग्र' जी की परंपरा को विकसित करने वाले उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों की विषयवस्तु

नोट

उग्र जी की भाँति व्याभिचार, वेश्यालय, मदिरालय, रोमांस तक सीमित है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं–**दिल्ली का व्याभिचार, दुराचार के अड्डे, वेश्यापुत्र, चंपाकली, मास्टर साहब, मयखाना, चाँदनी रात और गदर।**

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास 'आदर्शवादी' परंपरा के उपन्यास कहे जा सकते हैं। **विदा** (1929 ई.), **विजय** (1937 ई.), **विकास, विसर्जन, बेकसी का मजार** आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अंतिम उपन्यास में उन्होंने आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के चरित्र को 1857 ई. की क्रांति के परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का प्रयास किया है।

वृंदावनलाल वर्मा हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाते हैं। **गढ़ कुंडार** (1929 ई.), **विराटा की पद्मिनी** (1936 ई.), **झाँसी की रानी** (1946 ई.), **मृगनयनी** (1950 ई.), **टूटे काँटे** (1954 ई.), **माधव जी सिंधिया** (1957 ई.) आदि उपन्यासों में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों को चरित्र नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। **संगम** (1928 ई.), **लगन** (1929 ई.), **प्रत्यागत** (1929 ई.) और **कुंडली चक्र** (1932 ई.) उनके सामाजिक उपन्यास हैं।

प्रसिद्ध कवि **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** ने भी कुछ उपन्यास लिखे जिनमें से प्रमुख हैं–**अप्सरा** (1931 ई.), **अलका** (1931 ई.), **निरूपमा** (1936 ई.), **प्रभावती** (1936 ई.) और **कुल्ली भाट।** निराला के उपन्यासों में भावुकता एवं काव्यात्मकता का समावेश हुआ है। इनमें नारी समस्याओं का निरूपण प्रमुख रूप से हुआ है तथा शिल्प की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में विषय वैविध्य एवं शिल्पगत नवीनता दिखाई पड़ती है। उपन्यासकारों ने एक ओर तो सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया दूसरी ओर ऐतिहासिक कथानकों पर नवीन दृष्टि से विचार करते हुए मनोरंजन एवं सुरुचिपूर्ण उपन्यासों की रचना की।

क्या आप जानते हैं हिंदी उपन्यासों के प्रथम चरण में लिखे गए अधिकतर उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार ही रहा है।

संक्षेप में इस समय तक हिंदी उपन्यास का क्षेत्र व्यापक हो गया था और वह मानवीय संबंधों को उजागर करने वाला एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया था। राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना से उपन्यास का क्षितिज इस काल में अत्यंत विस्तृत हो गया। विषय व्यापकता के अतिरिक्त अब चरित्र-चित्रण में भी उपन्यासकार अधिक कुशल हो गए। मानव चरित्र का सूक्ष्म अंकन करने में वे निष्णात हो गए। घटना संयोजन भी अब अधिक कुशलता से किया जाने लगा तथा अनावश्यक विस्तार से मुक्ति पा ली गई। प्रेमचंद के रूप में हिंदी साहित्य में एक ऐसे महान कलाकार ने अपना योगदान किया, जिसने कालजयी रचनाएँ देकर साहित्य की गरिमा बढ़ाई। निश्चित रूप से हिंदी उपन्यास के विकास का द्वितीय चरण 'प्रेमचंद' जैसे महान उपन्यासकार के कारण महत्त्वपूर्ण बन गया है।

3. प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद के उपरांत हिंदी उपन्यास किसी एक निश्चित दिशा की ओर अग्रसर नहीं हुआ, अपितु उसकी विविध धाराएँ अनेक दिशाओं की ओर प्रवाहित हुईं। विषय की दृष्टि से यदि हम प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण करें तो निम्न वर्ग बनाए जा सकते हैं–

1. मनोविश्लेषणवादी उपन्यास
2. साम्यवादी (प्रगतिवादी) उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास
4. आंचलिक उपन्यास
5. प्रयोगवादी उपन्यास

नोट

यदि कालक्रम को दृष्टिगत रखकर प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण करें उसे तीन कालखंडों में विभक्त कर सकते हैं–

1. 1936 से 1950 तक के उपन्यास
2. 1950 से 1960 तक के उपन्यास
3. 1960 के उपरांत के उपन्यास

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में **जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी एवं अज्ञेय** का उल्लेखनीय योगदान है। **जैनेंद्र** ने **परख** (1929 ई.), **सुनीता** (1935 ई.), और **त्यागपत्र** (1937 ई.) के द्वारा हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की। उनके कुछ अन्य उपन्यास हैं–**कल्याणी** (1939 ई.), **सुखदा** (1952 ई.), **विवर्त** (1953 ई.) और **व्यतीत** (1953 ई.)। इन उपन्यासों में विभिन्न पात्रों के मन की उलझनों, गुत्थियों एवं शंकाओं का निरूपण कथा के माध्यम से किया गया है। त्यागपत्र में 'मृणाल' के आत्मपीड़न की गाथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। साथ ही अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण भी किया गया है। 'सुनीता' में फ्रायड के सिद्धांतों के आलोक में हरि प्रसन्न के व्यवहार का चित्रण है तथा 'कल्याणी' एक अतृप्त और आधुनिक नारी की कथा है। 'सुखदा' एक कुंठाग्रस्त नारी की कहानी है। जैनेंद्र जी ने आधुनिक समाज में नारी की स्थिति का यथातथ्य निरूपण करने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया है।

इस परंपरा के दूसरे उपन्यासकार **इलाचंद्र जोशी** ने उच्चकोटि के लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना की है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं–**संन्यासी** (1941 ई.), **पर्दे की रानी** (1941 ई.), **प्रेत और छाया** (1945 ई.), **निर्वासित** (1946 ई.), **जिप्सी** (1952 ई.) और **जहाज का पंछी** (1955 ई.)। इन उपन्यासों में जोशी जी ने मानव मन की कुंठाओं एवं ग्रथियों का सुंदर विश्लेषण किया है। यद्यपि उनके अधिकांश उपन्यासों की मूल विषयवस्तु प्रेम एवं रोमांस है तथापि उसका विवेचन मनोविज्ञान के आलोक में किया गया है।

मनोविश्लेषणपरक उपन्यासों में **'अज्ञेय'** द्वारा रचित **शेखर एक जीवनी** (1941 ई.), **नदी के द्वीप** (1951 ई.) तथा **अपने-अपने अजनबी** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय में मनोविश्लेषण की गहन क्षमता के साथ-साथ सूक्ष्म सौंदर्यबोध कला के प्रति ईमानदार चेतना विद्यमान है। **'शेखर एक जीवनी'** वैयक्तिक मनोविज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र में एक महती उपलब्धि मानी जा सकती है।

हिंदी के साम्यवादी उपन्यास वे हैं जिनमें मार्क्सवादी विचारधारा का आधार ग्रहण करके कथानक का ताना-बाना बुना गया है। **यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त** और **अमृतराय** इसी कोटि के उपन्यासकार हैं। यशपाल ने **पार्टी कामरेड** (1945 ई.), **दादा कामरेड** (1941 ई.), **देशद्रोही** (1943 ई.), **मनुष्य के रूप** (1949 ई.), **अमिता** (1946 ई.), **दिव्या** (1945 ई.) और **झूठा-सच** (1957 ई.) आदि उपन्यासों में अपने मार्क्सवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी है। झूठा-सच देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। इनके अतिरिक्त भैरव प्रसाद गुप्त ने मशाल, **सती मैया का चौरा** आदि उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना का निरूपण किया है।

इस युग के दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास लेखक हैं–**भगवती चरण वर्मा** और **अमृतलाल नागर**। वर्मा जी के कई उपन्यास प्रसिद्ध हुए हैं यथा–**चित्रलेखा** (1934 ई.), **भूले-बिसरे चित्र, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीमा** तथा **सबहिं नचावत राम गोसाईं**। इन उपन्यासों में समकालीन राजनीति एवं समाज से कथानक लिए गए हैं तथा उपन्यासकार ने अपनी पैनी दृष्टि से संयुक्त परिवार की समस्या, शोषण, सत्याग्रह, मिल-मालिकों की दुरंगी नीति, पुलिस की धाँधली आदि का सटीक चित्रण किया है। **'चित्रलेखा'** में पाप-पुण्य की समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

अमृतलाल नागर ने **सेठ बाँकेमल, अमृत और विष, बूँद और समुद्र, महाकाल, शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर, मानस का हंस** आदि अनेक उपन्यासों की रचना की है। **'बूँद और समुद्र'** उनका श्रेष्ठतम उपन्यास है जिसमें भारतीय समाज की रीति-नीति, आचार-विचार, जीवन दृष्टि, मर्यादाओं एवं मान्यताओं का चित्रण कथानक के द्वारा किया गया है। 'मानस का हंस' उनका एक जीवनीपरक उपन्यास है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास

का जीवन वृत्तांत प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार 'खंजन नयन' में सूरदास के जीवन को कथानक के रूप में बाँधकर सूर की जीवनी देने का प्रयास किया गया है।

हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में **बाबू वृंदावनलाल वर्मा** का उल्लेख किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम इस वर्ग में लिया जा सकता है। **आचार्य हजारीप्रसाद जी** ने **'बाणभट्ट की आत्मकथा', चारु चंद्रलेखा', 'पुनर्नवा'** और **'अथ रैक्व आख्यान'** में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय करते हुए रोचक उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सुंदर प्रस्तुति हुई है। **राहुल सांकृत्यायन** ने **'सिंह सेनापति'** और **'जय यौधेय'** नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा **रांगेय राघव** ने **'मुर्दों का टीला'** नामक ऐतिहासिक उपन्यास में मोहनजोदड़ो के गणतंत्र का चित्रण किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में **'आंचलिक उपन्यास'** एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। वे उपन्यास जिनमें किसी विशेष अंचल का चित्रण कथानक के द्वारा किया जाता है, इस वर्ग में आते हैं। हिंदी के आंचलिक उपन्यासकारों में सर्वप्रमुख हैं**–फणीश्वरनाथ 'रेणु'** जिन्होंने **मैला आंचल** (1954 ई.) तथा **परती परिकथा** (1957 ई.) नामक उपन्यासों में बिहार के ग्रामीण अंचल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, राजनीतिक आस्थाओं आदि का विशुद्ध चित्रण किया है। रेणु के अतिरिक्त अन्य आंचलिक उपन्यासकार हैं–नागार्जुन **(रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, वरुण के बेटे),** उदयशंकर भट्ट **(सागर लहरें और मनुष्य),** रांगेय राघव **(कब तक पुकारूँ)** आदि।

ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर भी कुछ उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें प्रमुख हैं**–आधा गाँव** (राही मासूम रज़ा), **अलग-अलग वैतरणी** (शिवप्रसाद सिंह), **जंगल के फूल** (राजेंद्र अवस्थी), **बबूल** (विवेकी राय), **पानी के प्राचीर** (रामदरश मिश्र), **रथ के पहिए** (हिमांशु श्रीवास्तव)। इन सभी उपन्यासों में आधुनिकीकरण के कारण बदलते ग्रामीण समाज का चित्रण किया गया है।

टास्क हिंदी उपन्यास के विकास तथा इसके तीन चरणों को विस्तार से समझाइए।

इसी संदर्भ में उन उपन्यासों को भी लिया जा सकता है जिनमें व्यंग्यात्मक लहजे में भारतीय समाज के समग्र रूप को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से **श्रीलाल शुक्ल** कृत **'राग दरबारी'** उल्लेखनीय कृति है जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को परत-दर-परत उघाड़ने की कोशिश की गई है। इस उपन्यास की कथाभूमि है बड़े नगर से कुछ दूर बसा हुआ गाँव **शिवपाल गंज,** जहाँ की जिंदगी प्रगति और विकास के तमाम नारों के बावजूद निहित स्वार्थों एवं अवांछनीय तत्वों के सामने घिसट रही है। शिवपालगंज की पंचायत, कॉलेज की प्रबंध समिति और कोऑपरेटिव सोसाइटी के सूत्रधार वैद्य जी साक्षात् रूप में वह राजनीतिक संस्कृति है जो प्रजातंत्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल-फूल रही है।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों की नवीनतम् धारा को **प्रयोगवादी उपन्यास** या **आधुनिकता बोध** के उपन्यास कहा जा सकता है। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यांत्रिक सभ्यता के परिणाम से आज जीवन में विश्रृंखलता, अकेलापन एवं निराशा घर कर गयी है। कुंठा, संत्रास एवं असुरक्षा की भावना ने हमें संत्रस्त कर दिया है। उपन्यासकारों की दृष्टि इस ओर भी गई है और उन्होंने अनेक उपन्यासों में इन्हें अभिव्यक्ति प्रदान की है। **मोहन राकेश** के **'अँधेरे बंद कमरे'** (1916 ई.) तथा **'न आने वाला कल'** (1968 ई.) ऐसे ही उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त राजेंद्र यादव के **'उखड़े हुए लोग'** में उपन्यासकार ने टूटते हुए मानव का चित्रण किया है। **मन्नू भंडारी** ने **'आपका बंटी'** में तलाकशुदा दंपति के बच्चों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का निरूपण किया है तो नरेश मेहता के **'यह पथ बंधु था'** में अकेलेपन एवं अजनबीपन का बोध कराया गया है। **निर्मल वर्मा** के उपन्यासों–**'वे दिन'** (1964 ई.), **'लालटीन की छत'** और **'एक चिथड़ा सुख'** में भी आधुनिकता बोध मुखरित हुआ है।

नोट

उषा प्रियंवदा के उपन्यास **'रुकोगी नहीं राधिका'** एवं **'पचपन खंभे लाल दीवारें'** में भी आधुनिकता बोध का गहरा रूप उभरा है। भीष्म साहनी कृत **'तमस'** में विभाजन की मानसिकता एवं उससे लाभ उठाने वाले लोगों को बेनकाब किया गया है। **मनोहरश्याम जोशी** कृत **'कुरु-कुरु स्वाहा'** में युवा पीढ़ी की दिशाहीनता को अभिव्यक्ति दी गई है। उक्त उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी सैकड़ों उपन्यासकार नए-नए कथानकों की कल्पना का सुंदर उपन्यास लिख रहे हैं। शिल्प की दृष्टि से भी नवीन प्रयोग किए जा रहे हैं। **धर्मवीर भारती** का **'सूरज का सातवाँ घोड़ा'**, गिरधर गोपाल का **'चाँदनी के खंडहर'** नवीन शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

आधुनिक उपन्यासों में विषय-वैविध्य के साथ-साथ शैलियों के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्म- कथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज उपन्यास का कथ्य जीवन के अधिक नजदीक है, उसमें यथार्थ का पुट अधिक है। मानवीय संबंधों के बदलते रूप को उसमें उजागर करने का प्रयास किया गया है तथा महानगरीय बोध से उत्पन्न मानसिकता को अभिव्यक्ति दी गई है। मन के भीतर की परतों को उधेड़ने का प्रयास भी इन उपन्यासों में है। आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन, अजनबीयत, यौन विसंगतियाँ, विद्रोह, कुंठा एवं मूल्यों का ह्रास आज के उपन्यास के विषय हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. हिंदी में उपन्यास का आरंभ भी .... से अनुदित उपन्यासों से माना जाता है।
2. विषयवस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से .... के समकक्ष हिंदी का कोई अन्य उपन्यासकार खड़ा नहीं किया जा सकता।
3. निराला के उपन्यासों में भावुकता एवं काव्यात्मकता का .... हुआ है।

8.1.2 हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार

(क) यशपाल

यशपाल समाजवादी यथार्थवाद के लेखक हैं। उनके उपन्यासों पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है। ये स्वाधीनता संग्राम के दौरान क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण जेल में आजीवन कारावास की सजा काट रहे थे एवं 1938 ई. में मुक्त हुए। उसके पश्चात् उन्होंने **'दादा कॉमरेड (1941)'**, **'देशद्रोही'**, **'दिव्या'**, **'पार्टी कॉमरेड'**, **'अमिता'**, **'मनुष्य के रूप'**, **'झूठा सच'**, **'बारह घंटे'**, **'अप्सरा का श्राप'**, **'क्यों फँसे'**, **'मेरी तेरी उसकी बात' (1973)** आदि उपन्यास लिखे। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण यशपाल अपने उपन्यासों में प्रत्यक्षत: या परोक्षत: वर्ग संघर्ष, क्रांति चेतना जैसे तत्व प्रस्तुत करते हैं।

'झूठा सच' यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जो आजादी के आसपास के भारतीय समाज के यथार्थ का महाकाव्यात्मक चित्र है। इसके दो खंड हैं–**'वेतन और देश'** तथा **'देश का भविष्य'**। पहला खंड हिंदू-मुस्लिम सामाजिक संस्कृति को संपूर्ण जीवंतता से व्यक्त करता है। दूसरे भाग में काँग्रेस की राजनीति की आलोचना की गई है और देश का भविष्य जनता में निहित होने की बात कही गई है।

'दादा कामरेड' में यशपाल 'दादा' के रूप में **चंद्रशेखर आज़ाद** को प्रस्तुत करते हैं एवं कॉमरेड के रूप में स्वयं को। पार्टी कॉमरेड में भी मार्क्सवाद विचार-धारा के आधार पर समाजवादी यथार्थ व्यक्त हुआ है। इसमें गीता नाम की एक युवती की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता की कहानी है। इन दोनों उपन्यासों में मार्क्सवाद का प्रभाव कुछ अधिक हावी हो गया है।

यशपाल की दृष्टि नारी समस्या पर भी रही है। **'मनुष्य के रूप'**, **'दिव्या'**, **'अमिता'**, **'अप्सरा का श्राप'** आदि इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'मनुष्य के रूप' में वे दिखाते हैं कि चाहे कांगड़ा का अभाव भरा जीवन

नोट

हो या फिर फिल्मी दुनिया की असाधारण संपन्नता, हर कहीं पुरुष महिला की लाचारी का फायदा उठाना चाहता है। नारी मुक्ति के संदर्भ में यह उपन्यास कहता है–''मुक्ति के लिए कुसंस्कारों से भी मुक्ति आवश्यक है।'' **'अप्सरा का श्राप'** में भी मुख्य चिंता पुरुष वर्ग द्वारा नारी के निरंकुश दमन की है। **'दिव्या'** में भी नारी स्वातंत्र्य का प्रश्न उठाया गया है। इसमें वे दिखाते हैं कि उच्च कुल व उच्च वर्ग की नारियाँ भी वस्तुत: अपने पुरुषों की दासियों के समान हैं। दिव्या अंतत: यह समझती है तथा धन-संपत्ति व आध्यात्मिक आनंद के विपरीत जीवन के साधारण सुख-दुख का चयन करती है। **'मेरी तेरी उसकी बात'** पीढ़ी अंतराल की समस्या को प्रमुखता से व्यक्त करता है जबकि **'अमिता'** में विश्व शांति के मुद्दों पर बारीक चिंतन किया गया है।

शिल्प की दृष्टि से यशपाल सहजता के रचनाकार हैं। वे घटनाओं व पात्रों की भीड़ नहीं लगाते। हर घटना व पात्र को कथानक योजना के अनुसार महत्त्व देते हैं। चरित्रों को उन्होंने अपने उद्देश्यवाद के कारण कमज़ोर नहीं होने दिया है। यह ज़रूर है कि कहीं-कहीं उद्देश्यपरकता के कारण उनकी वैचारिक टिप्पणियाँ बीच में आने लगती हैं जो उपन्यास के स्वतंत्र प्रवाह को बाधित करती हैं।

(ख) जैनेंद्र कुमार

जैनेंद्र मनोवैज्ञानिक यथार्थ के उपन्यासकार हैं। वे प्रेमचंद की तरह समाज या व्यक्ति को बदलने का प्रयास नहीं करते बल्कि व्यक्ति के अंतर्मन तथा उसे प्रभावित करने वाली घटनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं। उनके पात्र समाज से कम, अपने आप से अधिक लड़ते हैं। उनमें स्थूल, सामाजिक, नैतिक संघर्ष के स्थान पर आत्मसंघर्ष और जटिल मानसिकता मिलती है। जैनेंद्र के उपन्यासों में घटनाएँ विरल हैं, इसलिए चिंतन और विश्लेषण गहरा हो जाता है। मन की भीतरी संरचनाओं में छिपे सत्यों को व्यक्त करने के प्रयास में उनकी भाषा भी बेहद प्रतीकात्मक हो जाती है। उन पर फ्रॉयड और गाँधी दोनों का प्रभाव है। वे मार्क्स व फ्रॉयड को मिलाने की बात भी कहते हैं पर उनके चिंतन में मार्क्स के प्रति प्राय: उपेक्षा ही है।

चार दशकों तक फैले हुए लंबे लेखन-काल में जैनेंद्र ने पहले दौर (1929-1939) में **'परख' (1929), 'सुनीता'**, **'त्यागपत्र'** व **'कल्याणी'** उपन्यास लिखे। दूसरे दौर (1952-1985) में उन्होंने **'सुखदा'**, **'विवर्त'**, **व्यतीत**, **'जयवर्धन'**, **'मुक्तिबोध'**, **'अनंतर'**, **'अनामस्वामी'** व **'दशार्क'** उपन्यास लिखे।

'परख' उपन्यास में विधवा नारी की मानसिक स्थिति का चित्रण है। इसमें जैनेंद्र प्रेम और विवाह को दो भिन्न स्थितियों के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रेम में निजता होती है, जबकि विवाह एक सामाजिक कर्म है।

'सुनीता' में जैनेंद्र ने यह प्रश्न उठाया है कि नारी को घर से बाहर आना चाहिए या नहीं?

'त्यागपत्र' में उन्होंने सवाल उठाया है कि सतीत्व और स्त्रीत्व में से क्या अधिक महत्त्वपूर्ण है? इसमें वे समाज में प्रचलित नैतिक धारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और पाप-पुण्य की गहरी मीमांसा करते हैं।

'कल्याणी' में जैनेंद्र ने कदाचित् पहली बार भारतीय **कामकाजी** स्त्री को अंकित किया। कल्याणी ने विदेश से डॉक्टरी की डिग्री ली है परंतु फिर भी पति के शोषण के प्रति उसमें कोई चेतना नहीं है।

'जयवर्द्धन' एक अमेरिकी पत्रकार बिल्बर शोल्डन हूस्टन की डायरी के रूप में लिखित है। फैंटेसी के रूप में परिकल्पित इस उपन्यास में जैनेंद्र कल्पना करते हैं कि 2007 ई. तक भारत में समाजवादी व साम्यवादी विचारधारा का अंत हो चुका होगा।

शिल्प गठन की दृष्टि से जैनेंद्र ने इन उपन्यासों में भिन्न-भिन्न शैलियाँ अपनाई हैं। 'त्यागपत्र' में पात्र ही कथा का लेखक है। **'परख'**, **'सुनीता'** व **'विवर्त'** में कथा को दर्शक की दृष्टि से लिखा गया है। **'सुखदा'** और **'व्यतीत'** को आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है जबकि **जयवर्द्धन** डायरी शैली में है। उनके परवर्ती उपन्यासों **'अनंतर'**, **'अनाम स्वामी'**, **'दशार्क'** में संरचनात्मक बिखराव दिखाई देता है।

जैनेंद्र समस्याओं के क्रांतिकारी समाधान नहीं देते। समस्याओं के प्रति उनमें निष्क्रिय प्रतिरोध जरूर दिखाई देता है किंतु उनके निर्णय प्राय: यथास्थितिवादी हैं।

(ग) भीष्म साहनी

भीष्म साहनी सामाजिक यथार्थवाद के रचनाकार हैं। उनके छह उपन्यास हैं–**'झरोखे'**, **'कड़ियाँ'**, **'तमस'**, **'बसंती'** **'मय्यादास की माड़ी'** और **'कुंतो'**।

'झरोखे' में एक बच्चे के माध्यम से आर्य समाजी परिवार की संस्कारगत जड़ता का विश्लेषण एवं उसके प्रति विद्रोह की प्रेरणा है। **'कड़ियाँ'** में वे स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता के अभाव में पुरुष की बढ़ती हुई निरंकुशता और उसके परिणामस्वरूप पारिवारिक विघटन की अनिवार्यता को रेखांकित करते हैं।

'तमस' उनका सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें देश विभाजन के ऐतिहासिक दौर में साम्प्रदायिकता की समस्या का गहन विश्लेषण किया गया है। लेखक ने एक ओर अंधेरे में छिपे चेहरों को बेनकाब किया है तो दूसरी ओर इन असामाजिक तत्वों के पारस्परिक क्रिया-कलाप द्वारा अंधेरे के घने स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

'बसंती' में राजस्थान के आप्रवासियों की झुग्गी बस्ती में रहने वाली एक भावुक लड़की की कहानी है। इसमें दिखाया गया है कि उपभोक्ता संस्कृति कैसे व्यक्ति को सुविधाओं के लालच में कृत्रिम बना देती है।

'मय्यादास की माड़ी' एक ऐतिहासिक किस्म का उपन्यास है। इसमें पंजाब के एक कस्बे की कथा है। इसमें 19वीं सदी के आरंभ के परिवेश में तीन पीढ़ियों की बदलती हुई प्रतिबद्धताओं का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है।

'कुंतो' वस्तुत: संपूर्ण नारी जाति की नियति की कथा है। इसमें विभिन्न स्त्री पात्रों के पतियों की परस्त्रीगामिता की समस्या को उठाया गया है। संरचना के स्तर पर इस उपन्यास के सूत्र इतने अस्पष्ट और बिखरे हुए हैं कि उन्हें उपन्यास के केंद्र बिंदु से जोड़ पाना कठिन है।

कुल मिलाकर, **'तमस'** ही भीष्म साहनी की औपन्यासिक प्रतिभा का सर्वोच्च स्तर है। इसमें कलापक्ष के सभी तत्वों का सुंदर सामंजस्य हुआ है। अन्य सभी उपन्यास पठनीय तो हैं पर संरचना में बिखराव महसूस होता है। कहीं-कहीं यह बिखराव चिंतन से पैदा हुआ है जैसे **'कुंतो'** में; तो कहीं-कहीं शिल्प से जैसे **'झरोखे'** में।

(घ) फणीश्वरनाथ रेणु

रेणु की पहचान हिंदी के प्रतिनिधि आंचलिक उपन्यासकार के रूप में है यद्यपि वे सिर्फ आंचलिक रचनाकार नहीं हैं। सच तो यह है कि 'मैला आँचल' के लेखन के बाद उनकी आंचलिक प्रवृत्ति लगातार कम हुई है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं–**'मैला आँचल'**, **'परती परिकथा'**, **'दीर्घतपा'**, **'जुलूस'**, **'कितने चौराहे'**, **'पल्टू बाबू रोड'**।

'मैला आँचल' रेणु का सर्वाधिक प्रसिद्ध व महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें पूर्णिया जिले के 'मेरीगंज' गाँव की विस्तृत तथा समग्र कथा इस प्रकार की गई है कि अंचल ही नायक बन गया है। इसमें उद्देश्य अंचल की समस्याओं को प्रकाशित करने का ही रहा है, हालाँकि उद्देश्य रचना प्रक्रिया में घुला हुआ है, ऊपर से चिपका हुआ नहीं दिखता। इसमें अंचल की सुंदरता और कुरूपता दोनों का गहरा चित्रण किया गया है। जातिवाद, अफसरशाही, अवसरवादी राजनीति, मठों और आश्रमों का पाखंड भी इसमें दिखाया गया है।

परती-परिकथा में पूर्णिया जिले के ही दूसरे गाँव **'परानपुर'** की कथा है इसमें यथार्थ तो है पर मूल्यों के खत्म होने पर पैदा होने वाला अवसाद और करुणा नदारद है। अत: उपन्यास बहुत कुछ कह कर भी कुछ खास नहीं कह पाता। इस उपन्यास के बाद रेणु में आंचलिकता के प्रति उत्साह कम हो गया।

इसके बाद के उपन्यास ग्रामीण अंचलों के नहीं, प्राय: कस्बों व नगरों के हैं। नारी का मुद्दा भी कई जगह महत्त्वपूर्ण हो गया है।

'दीर्घतपा' की नायिका बेलागुप्त कामकाजी महिलाओं के हॉस्टल की सेक्रेटरी है जो अपने चारों ओर तेजी से पसरती सामाजिक विकृतियों को बहुत निकट से देखती है, लेकिन चाहते हुए भी वह उनके विरुद्ध कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं है।

'जुलूस' उपन्यास में बंगाल की एक विस्थापित युवती पवित्रा की कथा है। रेणु यहाँ भी विभिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का विश्लेषण करते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के परवर्ती उपन्यासों की प्रकृति चाहे अलग होती गई लेकिन शिल्प के स्तर पर कुछ सामान्य विशेषताएँ लगातार दिखाई देती हैं, जैसे–भाषा और बोली के देशज प्रयोगों पर बल, लोक संस्कृति के प्रतीकों, बिंबों का उपयोग आदि। वे अपनी ओर से वर्णन करने के स्थान पर दृश्यात्मक विधि (सीनिक मैथड) का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. .... यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जो आजादी के आसपास के भारतीय समाज के यथार्थ का महाकाव्यात्मक चित्र है।

   (क) मनुष्य के रूप   (ख) दिव्या   (ग) अमिता   (घ) झूठा सच

5. तमस .... का सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

   (क) यशपाल   (ख) जैनेंद्र कुमार   (ग) भीष्म साहनी   (घ) फणीश्वरनाथ

6. जातिवाद, अफसरशाही, अवसरवादी राजनीति, मठों और आश्रमों का पाखंड किसमें दिखाया गया है।

   (क) मैला आंचल   (ख) परती परिकथा   (ग) दीर्घतपा   (घ) जुलूस

8.1.3 हिंदी कहानी का विकास

कहानी विधा का आरंभ

कहानी नामक विधा का उद्भव हिंदी साहित्य में बीसवीं सदी में हुआ। हिंदी कहानी का स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश, व जातक कथा आदि में ढूँढ़ने के प्रयास किए गये हैं लेकिन इन्हें आख्यायिका, गल्प, आख्यान व कथा तो माना जा सकता है, उस अर्थ में कहानी नहीं जिस अर्थ में आज कहानी लिखी जा रही है। आधुनिक कहानी का प्रवर्तन भारतेंदु युग में हुआ। हिंदी की पहली कहानी को लेकर विवाद है। कुछ लोग इंशाअल्ला खाँ की **'रानी केतकी की कहानी'** को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं लेकिन इसमें कहानी का कोई तत्व उपलब्ध नहीं होता। इसके बाद **किशोरी लाल गोस्वामी** की **'इंदुमती'**, **बंगमहिला** की **'दुलाईवाली'**, **रामचंद्र शुक्ल** की **'ग्यारह वर्ष का समय'** प्रकाशित हुई। इन कहानीकारों ने विदेशी या बंगला साहित्य के प्रभाव में आकर हिंदी में कहानी लिखने का प्रयास किया। अब **माधवराव सप्रे** की कहानी, **'एक टोकरी भर मिट्‌टी'** को हिंदी की पहली कहानी माना जाता है।

हिंदी कहानी का विकास

(क) प्रेमचंद पूर्व युग (1901–1915)

रोमानियत, आदर्श, मनोरंजन प्रधान कहानियाँ–इस काल को हिंदी कहानी का शैशव काल कहा जा सकता है। प्रथम चरण में कहानी रोमानियत, आदर्श व मनोरंजन से जुड़ी रही। किंतु ये शिक्षित वर्ग को प्रभावित नहीं कर पाई। इनमें किसी प्रकार की प्रौढ़ता दिखाई नहीं देती। इस काल की प्रमुख कहानियाँ हैं–

ग्यारह वर्ष का समय	–	**रामचंद्र शुक्ल**
दुलाईवाली	–	**बंगमहिला**
ग्राम	–	**जयशंकर प्रसाद**
राखी बंद भाई	–	**वृंदावनलाल वर्मा**
उसने कहा था	–	**चंद्रधर शर्मा गुलेरी**
गुलबहार	–	**किशोरीलाल गोस्वामी**
प्लेग की चुड़ैल	–	**मास्टर भगवान दास**

नोट

(ख) प्रेमचंद-प्रसाद युग (1915-36)

हिंदी कहानी को अपने प्रारंभिक काल में प्रेमचंद व प्रसाद जैसी दो रचनात्मक प्रतिभाएँ मिलीं, जिन्होंने कहानी में युगांतकारी परिवर्तन किया। इन दोनों में से एक प्रतिभा (प्रेमचंद) कहानी को समाज के व्यापक संदर्भों से जोड़ रही थी और दूसरी प्रतिभा (प्रसाद) व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्थापित कर रही थी।

(*i*) प्रेमचंद की कहानियाँ **समाज सुधार** की आदर्शोन्मुखी दृष्टि से लिखी गईं। उन्होंने विधवा समस्या, अनमेल विवाह, अछूतोद्धार, किसानों की समस्यायें, स्वाधीनता संघर्ष, सांप्रदायिक द्वेष आदि से जुड़ी कहानियाँ लिखीं। उनकी प्रमुख कहानियों में हैं–**'बड़े घर की बेटी'**, **'शतरंज के खिलाड़ी'**, **'पूस की रात'**, **'ठाकुर का कुआँ'**, **'कफन'**, **'सौत'**, **'पंच परमेश्वर'**, **'बूढ़ी काकी'** आदि। उनके चरित्र पुरानी नैतिक मान्यताओं में जीते हैं और नई स्थितियों तथा पुराने समाधानों की यही कशमकश संघर्ष की सृष्टि करती है। यद्यपि **'बूढ़ी काकी'**, **'मनोवृत्तियाँ'**, **'बड़े भाई साहब'** में अंतर्द्वंद्व से जूझने का प्रयास दिखाई देता है तथापि वह सतही किस्म का है।

(*ii*) प्रसाद मूलतः कवि थे। उनकी कहानियों में छायावादी साहित्य की मूल प्रवृत्ति **वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति** दिखाई देती है। **'आकाशदीप'**, **'पुरस्कार'**, **'मधुआ'**, **'ममता'**, **'छाया'**, **'प्रतिध्वनि'**, **'आंधी'**, **'इंद्रजाल'** आदि प्रसाद की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

(*iii*) प्रसाद की अनुरक्ति **संस्कृति व इतिहास** से भी रही है जो उनकी कहानियों के काल, घटना व पात्रों से प्रकट होती है। उनकी कहानियाँ व्यक्तिगत भावना एवं स्थापित नैतिकता का द्वंद्व सामने रखती हैं। इसके अतिरिक्त **सुदर्शन, विशंभर नाथ शर्मा कौशिक** ने भी प्रेमचंद की परंपरा की ही कहानियाँ लिखीं। **कौशिक की 'ताई'** और **सुदर्शन** की **'हार की जीत'** प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। **वृंदावनलाल वर्मा** ने ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं।

हिंदी कहानी के विकास की दृष्टि से यह युग क्रांतिकारी रहा। प्रेमचंद ने अनुभूत सत्य व आम आदमी के जीवन के यथार्थ को अपनी कहानियों में चित्रित किया। इनकी कहानियों में आदर्श से यथार्थ तक की यात्रा है। प्रसाद ने अंतर्द्वंद्व को अपनी कहानियों का विषय बनाया। आगे चलकर प्रसाद की परंपरा का निर्वाह **जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी** व **अज्ञेय** ने एवं प्रेमचंद की परंपरा का निर्वाह **यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत**, **ज्ञानरंजन** आदि ने किया।

(ग) उत्तर प्रेमचंद युग (1936-50)

1. **मनोवैज्ञानिक कहानियाँ**–प्रेमचंद एवं प्रसाद के बाद हिंदी कहानी को नया आयाम देने वालों में **जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी** व **अज्ञेय** प्रमुख रहे। इन्होंने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखीं। ये कहानीकार फ्रायड से प्रभावित थे। इन्होंने व्यक्ति एवं उसकी मनःस्थितियों को महत्त्व दिया।

   जैनेंद्र की कहानियों में चरित्र वैशिष्ट्य, मानसिक द्वंद्व, स्त्री-पुरुष के संबंधों से संदर्भ लिए गये। इनकी अधिकांश कहानियों में मुख्य विषय नारी है। इनकी प्रमुख कहानियाँ **'खेल'**, **'पाज़ेब'**, **'अपना–अपना भाग्य'**, **'जाह्नवी'**, **'रत्नप्रभा'** हैं।

   इलाचंद्र जोशी मानव मन के भीतर झाँककर दमित वासनाओं व कुंठाओं का विश्लेषण करते हैं। इनकी कहानियों के पात्र किसी-न-किसी हीन भावना के शिकार होते हैं **'आहुति'**, **'डायरी के नीरस पृष्ठ'**, **'दुष्कर्मी'** आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

   अज्ञेय ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर कहानियाँ लिखीं। उन पर सार्त्र के अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है। उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं **'विपथगा'**, **'रोज'**, **'शरणार्थी'**, **'जयदोल'।**

2. **मार्क्सवादी दृष्टिकोण**–इस व्यक्तिवादी विचारधारा के साथ यशपाल ने **मार्क्सवादी दृष्टि** से कहानियाँ लिखीं। समस्या चाहे नारी शोषण की हो या पुरुष वर्ग के शासन की, वर्ग वैषम्य की, धर्म संबंधी आडंबरों

की अथवा समाज में फैले भ्रष्टाचार की, समाजवादी चिंतन ही प्रमुख रहा है। इस समाजवादी परंपरा पर आगे चलकर **राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, नागार्जुन, अश्क** ने सशक्त कहानियाँ लिखीं। इस दौर की कहानियाँ किसी-न-किसी विचारधारा में लिखी गईं लेकिन इसने हिंदी कहानी को नई दिशा भी दी।

(घ) नयी कहानी

(i) **नयी कहानी का आरंभ**—नयी कहानी का प्रारंभ 1950 ई. में हुआ, परंतु उसे प्रतिष्ठा मिली 1956 ई. में भैरवप्रसाद गुप्त के संपादन में 'नयी कहानी' पत्रिका के प्रकाशन से। कहानी में नयेपन की माँग नयी नहीं है। हर युग की कहानी अपनी पूर्ववर्ती कहानियों की तुलना में नयेपन की माँग करती है। किंतु नई कहानी के पीछे नयेपन का सामूहिक व सचेत आग्रह था।

नयी कहानी आजादी के बाद मध्यवर्ग द्वारा **'भोगे गये यथार्थ'** को प्रमाणिकता और ईमानदारी से प्रस्तुत करती है। इसका बल **'अनुभूति की प्रमाणिकता'** पर है।

(ii) **नयी कहानी के उदय की स्थितियाँ**—नयी कहानी का जन्म स्वातंत्र्योत्तर युग में हुआ। आजादी से आम आदमी का मोह भंग हो चुका था। विभाजन का दर्द, सामाजिक जीवन की विसंगतियों, आर्थिक संघर्ष, सांस्कृतिक अवमूल्य व राजनीति की वितंडावादी स्थितियों के बीच जीने वाले मनुष्यों और लेखकों ने जो अंतर्द्वंद्व झेला उसकी अभिव्यक्ति का ही परिणाम रहा—नयी कहानी। स्वातंत्र्योत्तर भारत का यह यथार्थ व्यक्तिमन के अवसाद के रूप में पारिवारिक विघटन के रूप में एवं सामाजिक मूल्यों की संक्रान्ति के रूप में नयी कहानी में व्यक्त हुआ।

(iii) **नयी कहानी का कथ्य—**

(अ) प्रमाणिकता—राजेंद्र यादव ने लिखा—"··· अब कोई रेशमी पर्दा नहीं ··· वास्तविकता को पूरी प्रमाणिकता के साथ, पूरी सच्चाई के साथ ··· उभरने दो।" इसीलिए नयी कहानी ने समाज, परिवार, कुंठा, भीड़वाद, अजनबीपन, यौन संबंधों को कथ्य के लिए चुना। ये कहानीकार यथार्थ को रूबरू देखने एवं हर पूर्वाग्रह परंपरा को तोड़ने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए इन्होंने वर्जित प्रदेशों में भी प्रवेश किया। इन्होंने नारी को भी दया व ममता की मूर्ति की दृष्टि से नहीं देखा बल्कि नैतिक मापदंडों के बदलते संदर्भ में नारी को देखा। **राजकमल चौधरी** की **'दांपत्य', मन्नू भंडारी की 'ऊँचाई', कमलेश्वर** की **'तलाश'** कहानियाँ इसी का प्रमाण हैं। कुछ कहानियों में अतिशय देहवाद को भी प्रस्तुत किया गया।

(आ) कुंठा—स्वातंत्र्योत्तर मानव की कुंठा, निराशा, पीड़ा पर भी कहानियाँ लिखी गईं। **अमरकांत** की **'दोपहर का भोजन'**, 'गरीबी की त्रासदी पर, **रविंद्र कालिया** की **'इतवार का दिन'** भ्रष्टाचार पर, **कमलेश्वर, की 'खोई हुई दिशायें'** आदि कहानियाँ दिशाहीनता पर लिखी गई।

(इ) अंतर्द्वंद्व—स्वातंत्र्योत्तर काल में पुराने मूल्यों के विघटन व नये मूल्यों के बनने से एक अंतर्द्वंद्व की स्थिति रही। **मोहन राकेश** की **'मलबे का मालिक' उषा प्रियंवदा** की **'कोई नहीं'**, राजेंद्र यादव की **छोटे-छोटे ताजमहल'** इन्हीं स्थितियों को प्रस्तुत करती हैं।

(ई) व्यक्ति-चेतना—नयी कहानी ने व्यक्ति-चेतना को महत्त्व दिया है। नये कहानीकारों ने पहली जिम्मेदारी तो यह निभाई कि व्यक्ति अपना व्यक्तित्व न खो दे, इसलिए उसे अधिक आत्मीयता, संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया गया। दूसरी यह भी कि व्यक्ति को परिवेश से जोड़कर समग्र रूप में देखा गया। आलोचकों ने इसे 'व्यक्तिगत सामाजिकता' कहा है। नयी कहानी समाज की नयी परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण करती है, संघर्ष नहीं करती। **सोमावीरा** की **'असली तस्वीर', गिरिराज किशोर** की **'गाउन'**, उषा प्रियंवदा की **'अध्यापक'** आदि कहानियों में व्यक्तित्व-चित्रण किया गया है।

(उ) मध्यवर्ग एवं आधुनिकता बोध—नयी कहानी ने मुख्यत: मध्यवर्ग को कहानी को विषय बनाया। इस वर्ग में व्यर्थताबोध, अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास आदि के ब्यौरे नयी कहानी ने दिए हैं। आधुनिकता बोध

नोट

नयी कहानियों की एक अन्य विशेषता है। आधुनिकता बोध जीवन के जटिल यथार्थ के अनेक स्तरों–मनोदशाओं, अनुभव खंडों की एक समवेत संज्ञा है, जो गत्यात्मक और परिवर्तनशील है। सांकेतिकता नयी कहानी की अन्य प्रमुख उपलब्धि है। यहाँ सांकेतिकता विचारों के स्तर पर भी है और शिल्प के स्तर पर भी पहले की कहानी में भावुकता का पुट रहता था। अब घटनाओं, पात्रों के पीछे बुद्धि का दबाव देखा गया।

(ऊ) **सांकेतिकता**–नयी कहानी की भाषा आम जिंदगी के निकट की भाषा है। सांकेतिकता इसकी प्रमुख विशेषता है। यहाँ कथ्य एवं संवाद दोनों के संबंध में सांकेतिकता का प्रयोग किया गया। इसका कारण आधुनिक जीवन का तनाव है।

(ए) **शिल्प**–नयी कहानी ने एक मिश्रित शिल्प को जन्म दिया है। इसमें डायरी, संस्मरण, नोट्स, रिपोर्ताज आदि शिल्प प्रविधियों का प्रयोग हुआ है। **'राजा निरबंसिया'** लोककथा शैली में व **'सईदा के खत'** पत्रात्मक शैली में व **'तिक्ष्यरक्षिता की डायरी'** डायरी शैली में लिखी गई। यद्यपि इसके शिल्प पर अनगढ़ता के आरोप लगे हैं पर यह अनगढ़ता जटिल यथार्थ के कारण है।

(ऐ) **आरोप**–नयी कहानी पर आरोप भी लगे हैं। जैसे नयी कहानी की नवीनता ही उसे जड़ बना देती है। यह रोमांस आदर्श से अलग नहीं हो पाती। यद्यपि यह अदृश्य रूप में आता है परंतु अंततः प्रभाव में आदर्श निहित होता है। ये दोनों तत्व पुरानी कहानी में हैं।

(ओ) **प्रदेय**–नई कहानी ने रचना और जीवन के संबंध को लेकर एक महत्त्वपूर्ण बहस शुरू की। इसने कई नये विषय दिए एवं कहानी को अनुभूति की गरमाहट दी।

(ङ) अकहानी

सन् साठ के बाद से अकहानी का आंदोलन शुरू हुआ। फ्रांस में 'एंटीस्टोरी' की जो भूमिका थी लगभग वही भूमिका यहाँ 'अकहानी' की थी। सन् साठ के बाद की कहानी के मूल में 'जीवन के अस्वीकार का सिद्धांत' विद्यमान है। व्यर्थता बोध इन कहानियों में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। भावबोध के धरातल पर संत्रास, आत्मपीड़न, अकेलापन, अजनबीपन और विसंगति का चित्रण दिखाई देता है। **श्रीकांत वर्मा** की **'झाड़ी', प्रयाग शुक्ल** की **'अकेली आकृतियाँ'** एवं **विश्वेश्वर** की **'दूसरी गुलामी'** में व्यर्थताबोध को विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है।

अकहानी जीवन की एब्सर्ड एवं पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक मूल्यों की विघटनात्मक प्रवृत्तियों की छाया है। यह संबंध विहीनता की स्थितियों को उभारती है। पति-पत्नी संबंधों में आत्मीयता की जगह तनाव व नफरत है। महानगरीय जीवन की यांत्रिकता को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया गया है। अकहानी में सेक्स एवं समलैंगिकता पर भी लिखा गया। **मणिमधुकर** की **'कटघरे', मणिका मोहनी** की **'एक मेरा दोस्त'** का कथ्य इसी प्रकार का है।

(च) साठोत्तरी कहानी

साठोत्तरी कहानी 'अनुभव की प्रमाणिकता', 'भोगे गये यथार्थ' जैसे नारों के विरुद्ध थी। इसके प्रवर्तकों में **रवींद्र कालिया, दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल** प्रमुख थे।

इन्होंने कथानक, चरित्र आदि तक को अस्वीकार किया। मैं, तुम, वह आदि प्रयोगों से पात्रों की उपस्थिति जताई जाती है। ये शैली की दृष्टि से मौलिक रहे। चाहे इन्होंने फैंटेसी या लतीफेबाज कहानियाँ गढ़ीं, पर हर कहानी में इनकी अपनी पहचान थी। **दूधनाथ सिंह की 'रीछ', गंगाप्रसाद विमल की 'इंताफिंता'** उल्लेखनीय हैं। लेकिन कथानक के अस्वीकार ने अकहानी को कहानी की जगह अन्य विधाओं में समाविष्ट होने का खतरा पैदा किया।

यह आंदोलन इसलिए समाप्त हो गया क्योंकि यह समाज से पूरी तरह कटा था एवं नकार का आंदोलन था। कुल मिलाकर किसी वैचारिकता के अभाव में यह धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

(छ) सचेतन कहानी

नोट

1960 के बाद के आंदोलनों में अकहानी की प्रतिक्रिया में 'सचेतन कहानी' प्रारंभ हुआ, जिसका श्रेय **महीप सिंह** को है। इनका मानना है कि कहानी को वैयक्तिकता से मुक्त करके वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। उनका कहना है, ''सचेतनता एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया जाता है।'' सचेतन कहानी जिंदगी की स्वीकृति की कहानी है वह अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती है। सचेतन कहानी मृत्यु संत्रास की प्रवृत्ति को पश्चिम से आयातित एवं थोपी गई मानती है एवं आत्मसंघर्ष, सजगता व जागरूकता का समर्थन करती है। इसने अकहानी के एब्सर्ड दर्शन का विरोध किया।

सचेतन कहानीकार सामाजिक परिवेश से संबद्ध रहे हैं। वे परिवेश में व्याप्त विघटन, मूल्यहीनता को अजूबा नहीं मानते। परिवर्तित परिवेश को स्वीकारना और जीना ही सचमुच सक्रिय होकर जीना है। महीप सिंह की कहानी **'कील'**, मनहर चौहान की **'बीस सुबहों के बाद'** आदि कहानियों के कथ्य मानसिक द्वंद्वों एवं उनसे मुक्ति पाने के संदर्भों पर आधारित हैं।

इन कहानियों की एक अन्य विशेषता सहजता है। इस सहजता की प्राप्ति घटनाओं के संकलन से नहीं होती वरन् बदलते हुए युग और परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानव-संबंधों व मूल्यों की सही पहचान से होती है। कहानी के इस आंदोलन में शिल्प के आधार पर कोई नवीनता है तो यही कि सपाट व सरल है। इस आधार पर सचेतन कहानी कोई पहचान नहीं बना सकी है। यह कोई शिल्पगत आंदोलन नहीं, वैचारिक आंदोलन है। प्रमुख कहानीकार **महीप सिंह, मनहर चौहान, श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, ममता कालिया, हिमांशु जोशी** है।

सचेतन कहानी नई कहानी का विरोध नहीं करती बल्कि यह उसका विकास-विस्तार ही है। इसने नई कहानी को वैचारिक आधार दिया एवं अकहानी की निष्क्रियता व निरर्थकता बोध के विरुद्ध सचेतन व सक्रिय जीवनबोध एवं जीवन-संघर्ष का स्वर दिया है।

प्रमुख कहानियाँ–'उलझन'–महीप सिंह, 'उजाले के उल्लू'–महीप सिंह, 'एक वह'–रामदरश मिश्र, 'दरार'–वेदशाही, 'उसने नहीं कहा था'–शैलेश मटियानी।

(ज) समांतर कहानी

1970 के बाद से समांतर कहानी आंदोलन कमलेश्वर ने शुरू किया। सत्तर के दशक के बाद से ही यह महसूस किया जाने लगा कि 'आम आदमी' हिंदी कहानी से अपेक्षित हो गया है। यह आम आदमी मजदूर, किसान एवं शोषित-पीड़ित वर्ग का है। 'आम आदमी' शब्द का प्रयोग सर्वहारा शब्द के विरोध में हुआ। समांतर कहानी ने इसी आम आदमी को केंद्र में रखा। इसकी दृष्टि समाजवादी थी। इन कहानीकारों के लेखन से जो संस्थापनाएँ निकलीं वे निम्नलिखित हैं–

1. वाममार्ग चिरंतन जीवित रहने वाली एक सहज और अनिवार्य सच्चाई है। लेखक शोषण के संदर्भ में अपने वाममार्ग को रूपायित करेगा।
2. लेखक की भूमिका यही है कि वह लेखन के जरिए लड़ाई करे, अंतिम हदों तक।
3. हमारी भूमिका सामान्यजन से संबद्ध है। यह संबद्धता हर स्तर पर है।
4. समयगत सत्य एवं रचना के बीच सामंजस्य ही कहानी की आधारशिला है।
5. समांतर लेखन हर उस कथाकार को अपना समकालीन मानता है जो अपने समय की समांतर सोच को लिख रहा है तथा हर उस कथाकार को अस्वीकृत करता है जो अपने समयगत सत्यों से कटा है।
6. लेखन और जीवन को लेकर दोहरे मानदंड नहीं हैं।
7. प्रतिबद्धता से आगे बढ़कर संबद्धता को स्वीकारना समांतर लेखन की शर्त है।

नोट

ऐसा नहीं है कि ये संस्थापनाएँ पहले ही गढ़ ली गई हों एवं कहानियाँ बाद में लिखी गईं। वस्तुत: समांतर कहानी के दो पक्ष हैं—एक पक्ष में वह उन सारी शक्तियों के उन्मूलन का स्वरघोष करती है जिसके कारण आम आदमी अभिशप्त है। दूसरे पक्ष में वह आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए उन स्थलों को प्रस्तुत करता है जिसके कारण आम आदमी के संघर्ष की पकड़ दुर्लभ हो रही है।

समांतर कहानीकार का मुख्य दायित्व यही है कि वह आम आदमी को बतलाए कि लड़ाई कैसे और किससे लड़नी है। इस दृष्टि से जवाहर सिंह की **'गुस्से में आदमी'**, हिमांशु जोशी की **'जलते हुए डैने'**, आशीष सिन्हा की **'आदमी'**, अरुणमिश्र की **'अंधे कुएँ का रास्ता'** प्रमुख हैं।

आजादी के बाद आदमी की स्थिति में विशेष अंतर नहीं आया। बेरोजगारी, महँगाई, आर्थिक तंगी में बदलाव नहीं आया। जीने की शर्तें क्रूर होती गईं। समांतर कहानीकार ने सामान्यजन की इस नियति को शिद्दत से महसूस किया। उसने कहानी को आम आदमी के संघर्ष का मोर्चा बनाया। यह संघर्ष सही मानसिकता के निर्माण के लिए था।

समांतर कहानी ने समय के सत्य को ही कहानी का कथ्य बनाया। समय के सत्य से तात्पर्य उन आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक दबावों से है जो हर समय मानव जीवन को तोड़ते रहते हैं और जिसके खिलाफ संघर्ष जीवन की अनिवार्य शर्त है। इनकी आस्था भी यही है कि अंत में विजय आम आदमी की होगी। उच्चवर्ग उसकी परिधि से बाहर नहीं है, मगर कहानीकार की एक निश्चित, पूर्वाग्रह से ग्रसित दृष्टि है। इसने साधारणजन के संदर्भों में ही अन्य वर्गों की प्रकृति की पहचान की है। समांतर कहानी किसी सिद्धांत को गढ़कर कहानी लिखने का रीतिबद्ध प्रयास नहीं है। ये समय सापेक्ष कहानियाँ हैं। समय की भयानकता और व्यवस्था की क्रूरता के विरुद्ध संघर्ष करती कहानियाँ हैं। उसका चिंतन वामपंथी है। इस रूप में प्रगतिशील कहानियों की अगली कड़ी के रूप में इन्हें माना जा सकता है।

शिल्प के धरातल पर बिंब, प्रतीक का समांतर कहानी में कोई स्थान नहीं है। यहाँ कथ्यहीनता नहीं है। कहानी आंदोलनों के बीच समांतर कहानी को व्यापक समर्थन मिला और लोकप्रियता भी। लेकिन 1978 के बाद यह आंदोलन समाप्त हो गया।

विचारणीय तथ्य यह है कि 'आम आदमी की पक्षधरता' करने वाले समांतर आंदोलनकारियों ने कौन-सी नयी पक्षधरता पर बल दिया है। फिर भी समांतर लेखक पूँजीवादी सभ्यता व संस्कृति के अत्याचारों को सामने लाकर मानवीय अस्मिता व मूल्यों के प्रति आस्था प्रकट करता है।

टास्क हिंदी कहानी की विकास यात्रा तथा इसमें आए बदलावों का उल्लेख कीजिए।

(झ) सहज कहानी

सहज कहानी आंदोलन 'नयी कहानी', 'अकहानी' तथा 'सचेतन कहानी' की तरह कोई विशेष आंदोलन नहीं है, बल्कि अत्यंत सीमित दायरे में सिमटा एक ऐसा आंदोलन है जिसका अपना कोई घोषणा तंत्र नहीं है। इसके प्रवर्तक अमृतराय स्वयं इसे आंदोलन मानने से इंकार करते हैं।

सहज कहानी से अमृतराय का अभिप्राय किसी विशिष्ट लेखन शैली से नहीं बल्कि कहानी को उसकी सहज भंगिमा के साथ प्रस्तुत करने से है। सहज कहानी से अभिप्राय उस मूल कथा रस से है जो कहानी की अपनी चीज है। नयी कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी ने इसी सहज कथारस का विरोध किया। इसी कथारस को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए अमृतराय ने सहज कहानी की प्रस्तावना की।

अमृतराय की चिंता यह है कि नयी कहानी, अकहानी कथांदोलनों में एक जैसी कुंठा व व्यर्थता के भाव की कहानियाँ मिलती हैं। इनमें अनुभूति का अंश बहुत कम है। इसलिए वे कहानीकारों से सहज होकर लिखने को

कहते हैं। सहज कहानी ने सेक्स के दुरुपयोग और असामान्य स्थितियों के चित्रण का विरोध किया है। पाश्चात्य आधुनिकता के विष को चुपचाप अंगीकार कर लेने का समर्थन सहज कहानी नहीं करती।

सहज कहानी में कथ्य की तरह शिल्प के स्तर पर भी सहजता की माँग की गई। भारी-भरकम प्रतीकों, बिंबों, भाषाओं को यह असहज मानती है।

सहज कहानीकारों में **नासिरा शर्मा, केशव कौशल, विनोद, रजा जाफरी, कमल गुप्त, हेमंत, रमेश बतरा, भगीरथ, दामोदर खड़से** प्रमुख रहे हैं।

नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी की श्रृंखला में यह सहज कहानी भी एक कड़ी है। परंतु यह एक बड़ा आंदोलन नहीं बन सका अन्यथा सहजता का यह नारा कहानी को उसके कहानीपन से अधिक जोड़ता।

(ञ) सक्रिय कहानी

समांतर कहानी के बाद राकेश वत्स ने 1962 में अपनी पत्रिका 'मंच' के माध्यम से सक्रिय कहानी आंदोलन को उद्घाटित किया। इसके द्वारा आम आदमी के भीतर व्याप्त उस चेतना को जागृत करने का प्रयास किया गया, जो सामाजिक रूढ़ता के कारण जड़ हो गई थी। उस चेतनात्मक ऊर्जा द्वारा मनुष्य को स्वयं अंतर्द्वंद्व से लड़ने की प्रेरणा सक्रिय कहानी देती है। सक्रिय कहानी सामान्य मनुष्य को अपनी असहाय स्थिति से उबारकर संघर्ष करने की शक्ति द्वारा जीवंतता प्रदान करती है। क्रांति या विद्रोह ऊपर से थोपे नहीं जाते, साहित्य उनकी चेतना को विकसित करता है।

राकेश वत्स ने कहानी में सर्वहारा, जीवंतता और वर्ग चेतना का स्पर्श किया। ये कहानियाँ शोषण के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करती हैं। **'जंगली जुग़राफ़िया', 'हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी है', 'एक न एक दिन'** इसी कथ्य पर लिखी गई कहानियाँ हैं। सक्रिय कहानी ने प्रकारांतर से वामपंथी, चेतना का ही समर्थन किया। साम्यवाद का बिल्ला न लगाकर भी इसकी सोच वामपंथी चेतना की समर्थक हैं। किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिए यथास्थितिवादी ताकतों का विरोध मानसिक, व्यावहारिक सक्रियता के समन्वय से ही संभव है।

कहानी वास्तव में सक्रियता की उत्प्रेरक होती है। उसका मकसद ही यह होता है कि सचेत करके सही शक्ल दिखाकर सक्रिय चेतना को आमंत्रित करना। लेकिन कहानी में आरोपित ढंग से सक्रियता व जानबूझ कर लादे सिद्धांत आदर्श रचनात्मकता को ही खत्म करते हैं। सक्रिय कहानी जनवादी कहानियों से काफी साम्य रखती है। ये मौजूदा आर्थिक शोषण को अहम् मुद्दा बनाती है। इससे पहले प्रेमचंद, प्रगतिवादियों एवं समांतर कहानीकारों का स्वर भी यही था परंतु वे उसमें बदलाव लाने की चेतना व सक्रियता के प्रश्न नहीं उठा सके।

(ट) जनवादी कहानियाँ

सातवें दशक के अंतिम वर्षों में जनवादी कहानियाँ सामने आईं। इन कहानियों की अनिवार्य प्रतिबद्धता किसानों-मजदूरों के प्रति है। जनवादी कहानीकारों ने कहानी को सीधे जनसंघर्ष से जोड़ने का प्रयत्न किया है।

जनवादी कहानीकारों पर वामपंथी विचारधारा का प्रभाव है। इसे प्रगतिवाद का नया संस्करण माना जाता है। वर्ग-संघर्ष समांतर कहानी में अच्छी तरह उभरकर नहीं आ पाया था, जनवादी कहानीकारों ने वर्ग-संघर्ष की चेतना को साफ रूपायित किया।

इन कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में गाँव के माहौल को भी उजागर किया। नीरज सिंह की **'करिश्मा'** में गाँव में व्याप्त गरीबी, भ्रष्टाचार व सामंती व्यवस्था के चित्रण के साथ उभरती जन-चेतना को भी स्वर दिया गया है। ये चेतना मूलत: हिंसक नहीं है लेकिन हिंसा का जवाब पात्र हिंसा से देने की सोचते हैं।

अधिकतर जनवादी कहानियाँ राजनीतिक हैं। काम-संबंधों, दांपत्य और पारिवारिक विघटन की कहानियाँ अपेक्षाकृत कम लिखी गईं।

समकालीन जनवादी कथाकार भाषा एवं शिल्प के प्रति पूर्ववर्ती कथाकारों की अपेक्षा अधिक सजग हैं। यद्यपि यह आंदोलन शिल्पगत न होकर वैचारिक है फिर भी इन कथाकारों ने अपनी कहानियों में प्रतीकात्मक फैंटेसीपरक, एब्सर्ड शैली, पंचतंत्र शैली का प्रयोग किया है। इनकी भाषा लोकभाषा के नजदीक दिखाई पड़ती है।

नोट

जनवादी कहानीकारों में **इस्राइल, नमिता सिंह, नीरज सिंह, रमेश बतरा, असगर वजाहत, सूरज पालीवाल, विजेंद्र अनिल** आदि प्रमुख हैं।

जनवादी चेतना प्रेमचंद की कहानियों में भी है। परंतु वहाँ वह घोषित रूप में नहीं है फिर भी यह अत्यंत प्रखर रूप में प्राप्त होती है। यशपाल की कहानियाँ घोषित रूप में मार्क्सवादी हैं परंतु उनमें यह सोच स्थितियों से सृजित नहीं होती।

इन कहानियों में जनचेतना दो रूपों में मिलती है। एक दृष्टि में वह घोषितरूप से मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्ध है, दूसरी दृष्टि में मार्क्स की अनुयायी न होकर भी वहाँ जनवादी चेतना है। नयी कहानी में यह सोच कम ही दिखाई दी क्योंकि लेखक भोगे गये यथार्थ की प्रमाणिक अनुभूतियों का चित्रण कर रहे थे एवं राजनीति से उनका विशेष सरोकार नहीं था।

8.1.4 हिंदी के प्रमुख कहानीकार

(क) प्रेमचंद

कहानी साहित्य में प्रेमचंद का प्रवेश युगांतकारी सिद्ध हुआ है। उनका महत्त्व इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि कहानी की विकास यात्रा का वर्गीकरण प्रेमचंद को आधार बनाकर किया गया है।

उनका सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उन्होंने कहानी को कल्पना से यथार्थवाद की ओर उन्मुख किया एवं मनोरंजनपरक दृष्टि के स्थान पर उद्देश्यपरक दृष्टि दी। उन्होंने कहानी को समाज के व्यापक संदर्भों से संबद्ध किया।

प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियाँ लिखीं। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम, संयुक्त परिवार, किसान-मजदूरों की समस्याओं, अछूतोद्धार, विधवा समस्या, नारी जीवन, औद्योगीकरण, सांप्रदायिक द्वेष, सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों, प्रेम-विवाह से वर्ण्य-विषय चुने। उन्होंने कहानियों में जीवन के विराट फलक को उतारा है।

प्रेमचंद की कहानियाँ एक खास किस्म की मूल्यवादिता का आभास देती हैं। यह मूल्यवादिता एक ओर मध्यकालीन मनोवृत्ति से जुड़ी है तो दूसरी ओर यह सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना से भी जुड़ी है। बीसवीं सदी के आरंभ में सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं सुधारवाद की जो प्रबल चेतना थी वह नैतिक एवं आचरणवादी मूल्यों को स्वीकारती थी। प्रेमचंद ने इसी युग सत्य को अभिव्यक्ति दी है।

प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों के दो क्षितिज हैं। एक मानवीय मूल्यों के स्थानों से जुड़ा है तो दूसरा समसामयिक जीवन से। **'रानीसारंधा', 'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'आनंदी', 'मर्यादा की बेटी', 'पाप की अग्निकुंड', 'राजा हरदौल'** आदि पहले वर्ग की ही कहानियाँ हैं। इन आरंभिक कहानियों में **'शाप'** जैसी कहानियाँ चमत्कार से भी जुड़ी थीं परंतु यह प्रवृत्ति केवल कुछ प्रारंभिक कहानियों में ही देखी गई। लेकिन आरंभिक कहानियों पर मनोरंजनवादी होने का आरोप भी लगा है।

'शंखनाद', 'पूर्वसंस्कार', 'बौड़म', 'गरीब की हाय', 'महातीर्थ', 'प्रारब्ध', 'नागपूजा', 'ज्वालामुखी' आदि कहानियाँ समसामयिक समस्याओं से जुड़ी कहानियाँ हैं। इन कहानियों में नाटकीयता का पुट है। इन कहानियों में कई जगह सपाटता आ गई है।

परवर्ती कहानियों में **'ईदगाह', 'अलग्योझा', 'नशा', 'जादू', 'हार की जीत', 'घास वाली', 'दो कब्रें', 'मनोवृत्ति', 'कफन', 'पूस की रात'** आदि कहानियाँ आरंभिक फार्मूला कहानियों से अलग हैं। इनमें सहजता, विश्वसनीयता, 'तटस्थता' के दर्शन होते हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद तटस्थ होते हुए भी कहानी के संसार के भागीदार प्रतीत होते हैं। यों तो प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों का संसार हमारा परिचित और आत्मीय संसार है, किंतु बाद की कहानियों में बदलती हुई सामाजिकता के संस्कार जिस मानसिकता का बोध कराते हैं, वह हमारे ज्यादा नजदीक है।

प्रेमचंद ने कहानियों में प्राय: वर्णनात्मक शैली अपनाई है लेकिन वर्णन इतना सपाट नहीं है कि पात्रों की परिस्थितियों का ही पता देता रहे और परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया को मन:स्थिति के रूप में चित्रित न होने

दे। व्यंग्य करने की शैली में प्रेमचंद निपुण हैं। जैसे **'पूस की रात'** में हल्कू जबरा की पीठ सहलाते हुए कहता है–**''कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे ··· यह खेती का मजा है।''**

कहानियों में प्रेमचंद की भाषा आम, बोलचाल की, सहज, सरल व मुहावरेदार है। इन्होंने व्यंग्य को प्रगाढ़ करने में मुहावरों का प्रयोग किया। वर्णन करते समय प्रेमचंद बिंब बनाते चलते हैं। उर्दू, अरबी, फारसी, लोकभाषा, अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग प्रेमचंद की भाषा की विशेषता है। जैसे **'ईदगाह'** कहानी में **''चौधरी साहब के काबू में सौ जिन्नात है।''** या **''उसके मामू जी एक थाने में कानिस्टिबिल हैं।''** ***'पूस की रात'*** *में* ***'मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।'*** इन तीनों पंक्तियों में 'जिन्नात', एवं 'साहब' शब्द उर्दू, अरबी-फारसी के, 'कानिस्टिबिल' अंग्रेजी का एवं 'मजूरी' लोकभाषा का शब्द है।

प्रेमचंद ने इन कहानियों में आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी दृष्टि अपनायी है। **'पंचपरमेश्वर', 'वज्रपात', 'नमक का दरोगा', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'घासवाली', 'बालक'** आदि कहानियों में समस्याएँ यथार्थ है परंतु उनकी परिणति आदर्शवादी रही है। **'कफन'** तक आते-आते यह प्रवृत्ति खत्म हुई लगती है। 'कफन' एक प्रखर यथार्थवादी कहानी है। यहाँ तक पहुँचने में प्रेमचंद को लंबी कथा-यात्रा करनी पड़ी।

निष्कर्षत: प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में कल्पना, विचारधारा और स्वप्नों का सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने अमीर-गरीब, शहर-गाँव, स्त्री-पुरुष, उच्च-निम्न सभी वर्गों पर कहानियाँ लिखीं। इनमें उनकी दृष्टि आदर्शवादी ही रही है।

(ख) जयशंकर प्रसाद

जिस समय प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी कहानियाँ लिख रहे थे उसी समय प्रसाद ने स्वच्छंदतावादी या रोमांटिक कहानियाँ लिखीं। 1911 में प्रसाद की कहानी **'इंदु'** पत्रिका में छपी।

प्रसाद मूलत: कवि थे अत: उनकी कहानियों में छायावाद की मूल प्रवृत्ति 'वैयक्तिकता' की सूक्ष्म प्रतिच्छाया दिखाई देती है।

प्रसाद के कहानी संग्रह हैं–**'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' व 'इंद्रजाल'। 'छाया'** संग्रह की कहानियाँ प्रेमवृत्त पर आधारित हैं, उनमें कथातत्व अत्यंत झीना है। इनमें प्राय: प्रकृति के काव्यपरक चित्रण का समावेश है। **'प्रतिध्वनि'** में भावात्मकता और भी गहरी हो गई है। भावविवृत्ति के साथ कुछ अतीतोन्मुखता और छायावादी रहस्योन्मुखता भी है।

इसके बाद **'आकाशदीप'** और **'आँधी'**, दो संग्रह प्रकाशित हुए। **'आकाशदीप'** में संग्रहीत कहानियाँ मानसिक अंतर्द्वंद्व की कहानियाँ हैं। संवेदना की दृष्टि से इनमें करुणा व अवसाद की अभिव्यक्ति हुई है। **'आकाशदीप'** कहानी में प्रेम और घृणा की गहन आवेगमयता की गहरी टकराहट है। **'आँधी'** में प्रसाद यथार्थवादी समस्याओं से टकराते हैं। इनमें भावों का बहाव उतना नहीं है जितना उनका विश्लेषण। **'सालवती'** और **'गुंडा'** इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

प्रसाद की कहानियाँ भी उनके नाटकों की तरह प्रगीतात्मक हैं। अतीत के प्रति प्रसाद की विशेष रुचि रही है। इसके प्रमाण उनके नाटक भी रहे हैं और कहानियाँ भी। प्रसाद की कहानियाँ अपने ढंग की अद्वितीय कहानियाँ हैं। भावों को वहन करने के लिए इनमें काव्यमयी भाषा का प्रयोग किया है। वातावरण निर्माण की कला में वे बेजोड़ हैं। उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं–**'पुरस्कार', 'ममता' 'मधुआ', 'आकाशदीप', 'व्रतभंग'** आदि। देशप्रेम, त्याग, प्रेम, अंतर्द्वंद्व अतीत उनकी कहानियों के प्रिय विषय रहे हैं। वे समग्रत: रोमांटिक कलाकार थे। मनोभावों व अंतर्द्वंद्व पर कहानियों की परंपरा जो प्रसाद ने चलाई वह बाद में अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी ने विकसित की। प्रसाद ने प्रेमचंद के समान ही उसी युग में हिंदी कहानी को एक नयी दृष्टि दी।

(ग) अज्ञेय

जैनेंद्र मूलत: व्यष्टि-बोध के साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद की सामाजिक दुनिया से हटकर व्यक्ति-मन की भीतरी गहराइयों में झाँका। उनका संपूर्ण कथा साहित्य व्यक्ति की व्यथा व व्यक्ति के आत्मपीड़न से पूरित है

नोट

क्योंकि वे यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति ही वह आधार बिंदु है जिस पर समस्त जीवन की भित्ति स्थापित है। **'परंपरा', जयदोल', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'अमरवल्लरी', 'ये तेरे प्रतिरूप', 'फाँसी', 'स्पर्द्धा', 'एक रात', 'वातायन', 'पाज़ेब', 'जयसंधि', 'दो चिड़ियाँ', 'उद्भ्रांत'** आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संकलन हैं। नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

व्यक्तिमन के गहरे स्तरों का अवलोकन **'होलीबोन की बत्तखें', 'मेजर चौधरी की वापसी'** में हुआ है।

इन कहानियों पर अस्तित्ववाद की झलक दिखाई देती है। अस्तित्ववाद उनके उपन्यासों एवं कविताओं में भी मुखर हुआ है। यद्यपि बाद की रचनाओं में अज्ञेय ने अस्तित्ववाद से भिन्न और अधिक संगत दृष्टि विकसित करने की कोशिश की है।

'पठार का धीरज', 'जयदोल', 'अमरवल्लरी' में रोमांस व सेक्स से संबंधित अनुभूतियों के चित्र हैं।

'परंपरा' कहानी संग्रह की कहानियाँ मध्यमवर्गीय सामाजिक यथार्थ की कहानियाँ हैं।

'कोठरी की बात', 'पुलिस की सीटी', 'एक घंटे का समय' राष्ट्रीय क्रांतिकारियों पर आधारित कहानियाँ हैं।

अज्ञेय ने मनोविश्लेषणवादी उपन्यास भी लिखे। **'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी'** ये तीन उपन्यास हैं।

अज्ञेय ने अपने कथा साहित्य में कई नयी शैलियों के प्रयोग किए जैसे 'फ्लैशबैक', 'चेतना-प्रवाह शैली', पत्र शैली, प्रत्यवलोकन शैली, प्रतीकात्मक, बिंबविधान शैली आदि।

जीवन के प्रति गूढ़ बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, दृष्टि के साथ सूक्ष्म आभ्यंतर चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण करने में अज्ञेय अग्रणी हैं।

(घ) मोहन राकेश

मोहन राकेश नयी कहानी के प्रवर्तकों में से एक हैं। उनकी पहली कहानी **'दोराह'** थी। उनके पाँच कहानी संग्रह हैं–**'इन्सान के खंडहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर' 'एक और जिंदगी', 'फौलाद का आकाश'।**

अपनी कहानियों के विषय में **मोहन राकेश** ने लिखा है–**''मेरी कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं।''** संबंधों की यंत्रणा मुख्यत: स्त्री-पुरुष संबंधों के टूटने-दरकने की है। मोहन राकेश ने व्यवस्था के खोखलेपन पर भी प्रहार किया है और विभाजन की त्रासदी का चित्रण भी। **'मलबे का मालिक'** में विभाजन का उन्माद ही है। मोहन राकेश की कहानियाँ त्रासद-तनाव की कहानियाँ हैं उनका सारा साहित्य अंतर्द्वंद्व, तनाव से भरा है। उनके पात्र प्राय: ऐसी स्थितियों में होते हैं जो उन्हें टूटने की हद तक छोड़ जाते हैं। **'एक और जिंदगी'** में मनुष्य न छूटी हुई जिंदगी को छोड़ पाता है न चुनी हुई जिंदगी को अपना पाता है। महानगरीय जीवन की यांत्रिकता और उसके दबाव से व्यक्ति के अकेले पड़ते जाने की मानसिकता का चित्रण मोहन राकेश ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। जिस **'प्रमाणिक अनुभव'** और **'भोगे हुए यथार्थ'** की बात नयी कहानी में की जाती है। वह सबसे अधिक **मोहन राकेश** की कहानियों में देखा जा सकता है।

मोहन राकेश की एक अन्य कहानी **'परमात्मा का कुत्ता'** व्यवस्था की विसंगतियों को चित्रित करने वाली कहानी है। **'मिसपॉल'** कहानी बदलते-टूटते सामाजिक संबंधों को पूरी कलात्मकता के साथ रेखांकित करती है। **'जंगला'** कहानी में स्वातंत्र्योत्तर काल में बदलते मूल्यों से उपजा अंतर्द्वंद्व है। **'ग्लासटैंक'** कहानी स्वातंत्र्योत्तर काल में नारी जीवन की विसंगतियों को रेखांकित करती है।

(ङ) कृष्णा सोबती

महिला कहानीकारों की धारा में कृष्णा सोबती प्रमुख हैं। महिला कहानीकारों ने स्त्रीजनोचित दृष्टि से कहानियाँ लिखीं। इनका मानना है कि महिलाओं की समस्या महिलाएँ ही समझ सकती हैं–पुरुष नहीं। पुरुष ज्यादा-से-ज्यादा सहानुभूति दे सकते हैं। अत: महिला की दृष्टि से लिखा गया साहित्य ही महिलाओं के सरोकार पूरे कर सकता है।

कृष्णा सोबती ने कहानियों में नैतिकता के मापदंड पुन: निर्धारित करते हुए उसमें महिला की एक व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठा की। इन्होंने नारी के अपने ढंग से जीने की वकालत की इसलिए सेक्स एवं दूसरी वर्जनाओं को बड़ी निर्ममता से तोड़ती दिखाई देती हैं।

'मित्रोमरजानी' नामक लंबी कहानी में पहली बार एक ऐसे नारी पात्र की सृष्टि कृष्णा सोबती ने की है जिसमें देहधर्म के उफनते ज्वार के सहज स्वीकार की साहसिकता है।

'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह में सभी कहानियाँ नयी कहानी के दौर की हैं। इसकी एक कहानी **'सिक्का बदल गया'** भारत-पाक विभाजन के दर्द को उकेरती है। **'बादलों के घेरे'** में नारी जीवन के आधुनिक संदर्भों का चित्रण हुआ है। इनकी महिला पात्रों में भावुकता का अभाव है।

कृष्णा सोबती की कहानियों पर पंजाब के रीति-रिवाजों, संस्कृति व लोकोक्तियों की जानकारी प्राप्त होती है। आपकी भाषा में पंजाबीपन अधिक है।

आपने उपन्यास भी लिखे हैं। **'सूरजमुखी अँधेरे के'**, **'जिंदगीनामा'** प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनमें भी नारी जीवन की मनोवैज्ञानिक समस्या को उभारा गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. कहानी नामक विधा का उद्भव हिंदी साहित्य में बीसवीं सदी में हुआ।
8. सचेतन कहानी जिंदगी की स्वीकृति की कहानी है वह अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती।
9. आकाशदीप कहानी में प्रेम और घृणा की गहन आवेशमयता की गहरी टकराहट नहीं है।

8.2 सारांश (Summary)

- हिंदी में उपन्यास का आरंभ भी अंग्रेजी से अनुदित उपन्यासों से माना जाता है। सन् 1853 ई. में वंशीधर द्वारा **थामस डे** के लोकप्रिय उपन्यास **'सैण्डफोर्ड एण्ड मर्टन'** का अनुवाद किया गया तथा डॉ. जानसन के उपन्यास **'रासेलास'** का हिंदी अनुवाद सन् 1879 ई. में किया गया।
- हिंदी उपन्यासों के प्रथम चरण में लिखे गए उक्त उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन एवं समाज सुधार ही रहा है। भले ही उपन्यास कला की दृष्टि से इस काल के उपन्यास उल्लेखनीय न हों, किंतु इन्होंने उपन्यास को एक दिशा देने का प्रयास अवश्य किया है। उपन्यास से विषय, शिल्प एवं भाषा का जो विकास इस काल में हुआ उसका संशोधित रूप हमें आगे के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।
- आधुनिक उपन्यासों में विषय-वैविध्य के साथ-साथ शैलियों के विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्म-कथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आज उपन्यास का कथ्य जीवन के अधिक नजदीक है, उसमें यथार्थ का पुट अधिक है। मानवीय संबंधों के बदलते रूप को उसमें उजागर करने का प्रयास किया गया है तथा महानगरीय बोध से उत्पन्न मानसिकता को अभिव्यक्ति दी गई है। मन के भीतर की परतों को उधेड़ने का प्रयास भी इन उपन्यासों में है। आधुनिकता बोध से उत्पन्न अकेलेपन, अजनबीयत, यौन विसंगतियाँ, विद्रोह, कुंठा एवं मूल्यों का ह्रास आज के उपन्यास के विषय हैं।
- हिंदी कहानी का स्रोत पंचतंत्र, हितोपदेश व जातक कथा आदि में ढूँढ़ने के प्रयास किए गए हैं लेकिन इन्हें आख्याथिका, गल्प, आख्यान व कथा तो माना जा सकता है, इस अर्थ में कहानी नहीं जिस अर्थ में आज कहानी लिखी जा रही है।

नोट

8.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **कुसंस्कार**–बुरे संस्कार, पतित चरित्र
2. **परिवेश**–वातावरण, माहौल
3. **विभाजन**–बँटवारा, बाँटना

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी उपन्यास के क्रमिक विकास का उल्लेख कीजिए।
2. हिंदी उपन्यास के प्रमुख उपन्यासकारों तथा उनकी कृतियों का वर्णन कीजिए।
3. हिंदी कहानी के विकास तथा इसके चार चरणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

1. अंग्रेजी	2. प्रेमचंद	3. समावेश
4. (घ)	5. (ग)	6. (क)
7. सत्य	8. सत्य	9. असत्य

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास–*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*

नोट

इकाई–9 : हिंदी नाटक का विकास एवं प्रमुख नाटककार

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
9.1 हिंदी नाटक का विकास
9.1.1 हिंदी नाटक विधा का आरंभ
9.1.2 हिंदी नाट्य साहित्य का विकास
9.1.3 हिंदी नाटक के प्रमुख नाटककार
9.2 सारांश (Summary)
9.3 शब्दकोश (Keywords)
9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी नाटक का विकास जानने में।
- हिंदी नाटक विधा के आरंभ का वर्णन करने में।
- हिंदी नाटक के प्रमुख नाटककारों के विषय में जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी नाटक का विकास या हिंदी नाट्य-साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। हिंदी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य-परंपरा थी। लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के लगभग कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जो ब्रजभाषा में थे। इनमें कुछ मौलिक नाटक थे एवं कुछ अनूदित। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पारसी थियेटर कंपनियाँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। भारतेंदु के हिंदी नाटक को साहित्यिक, कलात्मक रूप देने की परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने नया स्वरूप व नयी दिशा प्रदान की है।

9.1 हिंदी नाटक का विकास

9.1.1 हिंदी नाटक विधा का आरंभ

हिंदी नाट्य–साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। हिंदी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य-परंपरा थी लेकिन हिंदी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। मध्यकाल में लीलाओं–रासलीला, रामलीला, नौटंकी आदि का उदय होने से जननाटकों का प्रचलन बढ़ा। इन लीलाओं में गीत

नोट

और नृत्य की अधिकता रहती थी और गद्य का बहुत कम प्रयोग होता था। ये लोक–नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

17वीं 18वीं शताब्दी के लगभग कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जो ब्रजभाषा में थे। इनमें कुछ मौलिक नाटक थे एवं कुछ अनूदित। मौलिक नाटकों में **प्राणचंद चौहान** का **''रामायण महानाटक'', लछिराम का ''करुणाभरण''** व **विश्वनाथ सिंह** का **'आनंद रघुनंदन'** हैं। इसमें ''आनंद रघुनंदन'' के अतिरिक्त शेष सभी पद्य वर्णनात्मक हैं। यह हिंदी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि के कारण **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने इसे हिंदी का **प्रथम मौलिक नाटक** माना है।

इन सभी नाटकों पर संस्कृत नाट्य साहित्य की छाप नजर आती है। इनके सभी आख्यान धार्मिक व पौराणिक हैं। इनके संवाद भी पद्यात्मक हैं। शृंगार इनकी मूल प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा के ये नाटक ''नाट्य'' की सभी माँगों और रीतियों को पूरा न करते हों किंतु वे हिंदी नाटक के पूर्व रूप अवश्य कहे जा सकते हैं।

अनूदित नाटकों में **सोमनाथ माथुर** का **''माधव विनोद''** तथा **यशवंत सिंह** का **''प्रबोध चंद्रोदय''** प्रमुख हैं।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में **पारसी थियेटर कंपनियाँ** अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। इनके नाटकों के कथानक कभी रामायण–महाभारत से, कभी पारसी प्रेमकथाओं से और कभी अंग्रेजी नाटकों **'हेमलेट', 'रोमियो-जूलियट'** आदि से लिये जाते थे। इनमें बचकाने नृत्य, स्थान–स्थान पर गीत, शेरो–शायरी, ग़ज़ल आदि का समावेश रहता था। ऐसा ही नाटक अमानत द्वारा लिखित **'इंदरसभा'** है। **'ऑपेरा'** के समान इस नाटक का अधिकांश भाग गीतों से भरा है। बीच–बीच में संवाद हैं। ऐसे नाटकों द्वारा उत्पन्न कलाहीन, असंस्कृत वातावरण से क्षुब्ध होकर भारतेंदु ने हिंदी नाटक को साहित्यिक, कलात्मक रूप देने का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित इस परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने नया स्वरूप व नयी दिशा प्रदान की है।

9.1.2 हिंदी नाट्य साहित्य का विकास

जिस तरह हिंदी कहानी व उपन्यास में प्रेमचंद का स्थान केंद्रीय महत्त्व का है, उसी तरह हिंदी नाटकों में जयशंकर प्रसाद का है। उन्हें केंद्र में रखकर हिंदी नाट्य-साहित्य को हम विभिन्न युगों में बाँट सकते हैं–

1. प्रसाद पूर्व हिंदी नाटक
2. प्रसाद युगीन हिंदी नाटक
3. प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिंदी नाटक
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक (1947 से आज तक)

प्रसाद-पूर्व हिंदी नाटक

इस काल के साहित्य को दो उप-खंडों में विभाजित किया जा सकता है–(*i*) भारतेंदु युगीन नाटक, (*ii*) द्विवेदी युगीन नाटक।

(*i*) भारतेंदु युगीन नाटक–(1850-1900 ई.)–खड़ी बोली में युग-बोध के साथ, मंचीय तत्वों सहित प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेंदु को है। भारतेंदु का युग नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों का दौर था। एक वर्ग पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन कर रहा था तो दूसरा विरोध। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ रहा था। ऐसे में साहित्य में नयी मान्यताएँ, दृष्टिकोण और सृजनात्मक दिशा देने की आवश्यकता थी। भारतेंदु ने यही किया है। भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना था। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखने तथा पश्चिम के गलत प्रभावों से समाज को बचाये रखने का प्रयास इन नाटकों में हुआ है।

भारतेंदु काल में रचित नाटकों को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, प्रहसन वर्ग में रखा जा सकता

है। भारतेंदुयुगीन नाटक हैं–**देवकी नंदन खत्री** का **'सीताहरण'**, **भारतेंदु** का **'चंद्रावली'**, **'सत्यहरिश्चंद्र'**, **'भारत दुर्दशा'**, **बालकृष्ण भट्ट** का **'नल-दमयंती'**, **'स्वयंवर'** तथा **प्रताप नारायण मिश्र** का **'शिक्षादान'** आदि। इस युग में प्रहसन अधिक लिखे गये। इन प्रहसनों में हास्य-व्यंग्य शैली में तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं अंधविश्वासों का मजाक उड़ाया गया है**–जैसे भारतेंदु का 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'** तथा **राधाचरण गोस्वामी** का **'बूढ़े मुँह मुहाँसे'।**

भारतेंदु युगीन नाटकों में प्राचीन-नवीन शैलियों का सामंजस्य दिखाई देता है। जो नाटक संस्कृत शैली में लिखे गये उनके पात्र आदर्श आधारित हैं जबकि नवीन शैली में नाटकों के पात्र सच्चे जीवन के प्रतिनिधि नजर आते हैं। शिल्प की दृष्टि से ये नाटक न तो पूर्णतया प्राचीन नाट्य शास्त्र से जुड़े हैं और न ही इनमें अंग्रेजी परंपरा की नकल उतारी गयी है। भारतेंदु ने ही पाश्चात्य ट्रेजेडी पद्धति पर दुखांत नाटक लिखे। उनका **'नीलदेवी'**, **श्रीनिवास दास** का **'रणधीर प्रेम मोहिनी'** नाटक दुखांत थे।

क्या आप जानते हैं भारतेंदु युग में व्यंग्यात्मक शैली में लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्तियों का प्रयोग बड़ी सुंदरता से किया गया है। भाषा पात्रानुकूल है फिर भी संस्कृत के लंबे काव्यात्मक संवादों का प्रभाव भी इन पर पड़ा है।

इस काल में अनुदित नाटक भी लिखे गये। भवभूति, कालिदास के संस्कृत नाटकों के हिंदी अनुवाद अधिक हुए। **राजा लक्ष्मण सिंह** ने **'अभिज्ञान–शाकुंतलम'** व **अंबिकादत्त व्यास** ने **'वेणीसंहार'** का अनुवाद किया। बाँग्ला से माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटकों के अनुवाद हुए। अंग्रेजी से **शेक्सपियर** के **'मर्चेंट ऑफ वेनिस'**, **'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स'**, **'रोमियो-जूलियट'**, **'मैकबेथ'** का अनुवाद हुआ।

भारतेंदु युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे–**श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास।** इनमें सभी ने भारतेंदु का ही अनुसरण किया। भारतेंदु ने अपने कई नाटकों का मंचन स्वयं किया और भूमिका अदा की।

नोट्स भारतेंदु युगीन नाटकों में प्राचीन-नवीन शैलियों का सामंजस्य दिखाई देता है।

भारतेंदु को हिंदी का प्रथम नाटककार व युग प्रवर्तक स्वीकार किया गया। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. पहली बार हिंदी गद्य में अनेक विषयों पर मौलिक नाटकों की रचना की तथा कथानक के क्षेत्र में विविधता लाए।
2. पहली बार हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन लिखने की परंपरा का सूत्रपात किया।
3. पहली बार भारतीय जीवन के यथार्थ के विविध नवीन पक्षों का उद्घाटन किया।
4. पहली बार हिंदी रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया।
5. अनेक भाषाओं के नाटकों के सुंदर अनुवाद किए।
6. संस्कृत, बाँग्ला, अंग्रेजी नाट्य कला का समन्वय कर हिंदी की स्वतंत्र नाट्यकला की नींव डाली।

भारतेंदु ने अनूदित व मौलिक नाटकों को मिलाकर सत्रह नाटक लिखे। उन्होंने हिंदी नाटकों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। लेकिन भारतेंदु युग का नाट्यलेखन भारतेंदु द्वारा दिखाये मार्ग को प्रशस्त तो करता है परंतु नाट्य-कला, रंग-कला, नाट्य-भाषा की दृष्टि से कोई मौलिक ठोस कदम नहीं उठाता। यही भारतेंदु युग की सीमा है।

नोट

(*ii*) **द्विवेदी युगीन नाटक**–द्विवेदी युग में भारतेंदु जैसी कोई प्रतिभा नहीं हुई। भारतेंदु द्वारा स्थापित रंगमंच आगे न बढ़ सका। पश्चिमी नाट्य कला संबंधी मान्यताओं की जो बाढ़ आ रही थी उसके अनुकूल नाट्य रचना नहीं हो सकी। परिणामस्वरूप जनता व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों में अधिक रुचि लेने लगी।

द्विवेदी युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं रोमांचकारी नाटक लिखे गए। कुछ प्रहसन भी लिखे गए। इन नाटकों में नाट्यकला का विकास नहीं मिलता और अभिनय तत्व भी नहीं के बराबर है। इस युग के नाटक हैं–

जयशंकर प्रसाद	–	**करुणालय**
मिश्रबंधु	–	**नेत्रोन्मीलन**
प्रताप नारायण मिश्र	–	**भारत दुर्दशा**

द्विवेदी युगीन प्रहसनों में प्रमुख थे–

गंगा प्रसाद श्रीवास्तव	–	**उलटफेर, नोंक-झोंक**
बद्रीनाथ भट्ट	–	**चुंगी की उम्मीदवारी**

प्रतीकवादी नाटक–प्रतीकवादी नाटकों की परंपरा संस्कृत नाटकों से चली आ रही है। इस समय **ज्ञानदत्त सिंह** ने **'मायावी'** व **भगवती प्रसाद वाजपेयी** ने **'छलना'** नाटक लिखा। पंत ने भी इस तरह के नाटक लिखे।

द्विवेदी युग के नाटकों पर फारसी प्रभाव रहा। यहाँ तक कि प्रसाद के नाटकों में भी यह प्रभाव देखा गया। इन नाटकों का महत्त्व न तो शिल्प की दृष्टि से है और न ही सुरुचि-संस्कार की दृष्टि से। फिर भी कुछ नाटकों में तत्कालीन समाज की विकृतियाँ उभरकर आयी हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

प्रसादयुगीन हिंदी नाटक

जयशंकर प्रसाद के आगमन से नाटक के विकास को नयी दिशा मिली। इस समय देश में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन विकसित हो रहा था। व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना की लहर ने इस समय साहित्य को प्रभावित किया। इसलिए भारत के अतीत की खोज एवं वर्तमान समस्याओं व दुर्बलताओं से लड़ने का साहस प्रसाद के नाटकों की प्रेरणा बने।

इस युग के प्रमुख नाटककार हैं–**जयशंकर प्रसाद, आगा हश्र 'काश्मीरी', नारायण प्रसाद 'बेताब', बलदेव प्रसाद मिश्र, सुदर्शन और जी.पी. श्रीवास्तव।** इस युग के प्रमुख नाटक हैं–

जयशंकर प्रसाद	–	'सज्जन', 'कल्याणी', 'करुणालय', 'राज्यश्री', 'कामना', 'एक घूँट', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'विशाख'।
आगा हश्र	–	'सूरदास', 'श्रवण कुमार', 'सीता वनवास'
नारायण प्रसाद 'बेताब'	–	'महाभारत', 'रामायण', 'कृष्ण सुदामा'
बलदेव मिश्र	–	'असत्य संकल्प'
सुदर्शन	–	'सिकंदर', 'धूपछाँह'

इस काल के नाट्य साहित्य में प्रमुखतः पाँच प्रकार के नाटक दिखाई पड़ते हैं–

(*i*) **ऐतिहासिक नाटक**–**प्रसाद** ने **'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'चंद्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त'** आदि नाटक लिखे। **बद्रीनाथ भट्ट** ने **'दुर्गावती'** नाटक लिखा। इस युग के नाटककारों ने इतिहास संबंधी नवीन तथ्यों को कल्पना के मिश्रण से आकर्षक और प्रभावशाली बनाकर नाटकों में प्रस्तुत किया। इतिहास के बीच ही उन्होंने नाटकों में प्रेम और सौंदर्य के मधुर चित्र खींचे। इस क्षेत्र में उनकी दृष्टि रोमांटिक होते हुए भी संयमित रही। इस तरह के नाटकों में 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' प्रमुख थे। इनमें राष्ट्रीय

चेतना व सांस्कृतिक वातावरण सर्वत्र देखे जा सकते हैं। आदर्श वीरत्व, विशुद्ध प्रेम की समांतर धारा इन नाटकों में प्रवाहित हुई है। इन नाटकों में काव्यतत्व की प्रवृत्ति ज्यादा है।

(ii) **रोमांचकारी नाटक**–**रौनक बनारसी** का **'इंसाफे-महमूद'**, **हुसैन मियाँ ज़रीफ** का **'लैला-मजनूँ'**, **'अली बाबा'** आदि प्रमुख रोमांचकारी नाटक हैं। इन नाटकों में शृंगारपूर्ण वातावरण, उत्तेजक घटना विधान, वेश विन्यास की तड़क-भड़क व छिछले किस्म के संवादों से जनता का मनोरंजन प्रमुख उद्देश्य था। नाट्यकला की दृष्टि से इन्हें नाटक नहीं माना जा सकता।

(iii) **पौराणिक नाटक**–पौराणिक नाटक एक ओर तो नैतिक उपदेशों से भरे होते थे किंतु दूसरी ओर इनमें रोमांचकारी प्रभाव उत्पन्न करने का भी प्रयास रहता था। पौराणिक नाटकों में कुछ नाटक **प्रसाद**, **सुदर्शन** आदि ने लिखे।

(iv) **समसामयिक नाटक**–इसी काल में कुछ और नाटक भी लिखे गए जिनके प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं–

बेचन शर्मा उग्र	–	**'चार बेचारे', 'उजबक'**
जी. पी. श्रीवास्तव	–	**'उलटफेर', 'विवाह विज्ञापन'**
राधेश्याम कथावाचक	–	**'कौंसिल की मेम्बरी'**

इन नाटकों में समसामयिक समस्याओं को उठाया गया है परंतु उनमें गंभीरता का अभाव है। इनमें हास्य की व्यंजना की गई है परंतु अतिनाटकीयता व सस्ते किस्म के हास्य ने नाटकों के उद्देश्य को क्षति ही पहुँचाई है।

(v) **यथार्थवादी नाटक**–इस युग में **यथार्थवादी नाटकों** की भी नींव पड़ी जिसमें जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ चित्रण गंभीरतापूर्वक किया गया। इनमें **प्रेमचंद** का **'संग्राम'** नाटक उल्लेखनीय है।

प्रसाद युग के नाटकों के संवाद पात्रों के सूक्ष्म चरित्र के उद्घाटक और कथानक को गतिशील बनाने में सहायक हैं लेकिन संवाद योजना में अनेक स्थलों पर लंबे-लंबे कथोपकथन आए हैं। प्रसाद युगीन नाटकों की भाषा सशक्त है। विशेषकर प्रसाद ने भाषा का प्रयोग भावों के अनुसार किया, पात्रों के अनुसार नहीं। उनके यहाँ कलात्मकता, अलंकारिता, लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं उनकी भाषा बोझिल हो गई है। प्रसाद युग की नाट्य शैली न तो दुखांत है, न ही सुखांत। उसमें दोनों शैलियों का सुंदर समन्वय किया गया है।

इस युग में नाटकों के अनुवाद भी हुए। **मैथिलीशरण गुप्त** ने **भास** के **'स्वप्नवासवदत्ता'** का अनुवाद किया। **रवींद्रनाथ ठाकुर** और **गिरीश घोष** के नाटकों के अनुवाद भी हुए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. जिस तरह हिंदी कहानी व उपन्यास में प्रेमचंद का स्थान केंद्रीय महत्त्व का है, उसी तरह हिंदी नाटकों में .... का है।
2. भारतेंदु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें .... जगाना था।
3. .... के नाटकों के संवाद पात्रों के सूक्ष्म चरित्र के उद्घाटन और कथानक को गतिशील बनाने में सहायक हैं।

प्रसादोत्तर स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी नाटक

इस युग तक आते-आते मानव जीवन में कई परिवर्तन आए। अब जीवन में भावना तथा आदर्श का स्थान यथार्थ ने ले लिया। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में मजदूर-किसान भी शामिल हो गए। पारसी रंगमंच की लोकप्रियता कम

नोट

हुई क्योंकि सिनेमा का प्रभाव अधिक पड़ रहा था। इस काल में प्रमुखत: दो प्रकार के नाटक लिखे गए–

(*i*) **राष्ट्रीय चेतना पर आधारित नाटक**–राष्ट्रीय चेतना पर नाटक लिखने वालों में थे–**हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविंददास** तथा **उदयशंकर भट्ट।** इन्होंने सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना से युक्त इन नाटकों में समन्वयवादी दृष्टि व नैतिक मूल्यों पर बल दिया। इस कोटि के उल्लेखनीय नाटक हैं–

हरिकृष्ण प्रेमी	–	**'रक्षाबंधन', 'आहुति'।**
गोविंद वल्लभ पंत	–	**'राजमुकुट'**
सेठ गोविंददास	–	**'कर्तव्य'**

(*ii*) **यथार्थपरक समस्या प्रधान नाटक**–समस्या प्रधान नाटकों में व्यक्ति-मन के द्वंद्व, स्वच्छंद प्रेम, विवाह समस्या, मूल्यों के विघटन आदि विषय प्रमुख रहे। यह पहली बार हुआ कि 'व्यक्ति' पर नाटक लिखे गये। इस कोटि के नाटक हैं–

उपेंद्र नाथ अश्क	–	**'अंजोदीदी'**
बेचन शर्मा उग्र	–	**'आवारा', 'डिक्टेटर'**
हरिकृष्ण प्रेमी	–	**'छाया'**
लक्ष्मीनारायण मिश्र	–	**'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य'**

समस्या प्रधान नाटकों में पात्र कम होते हैं एवं इनका कार्य-व्यापार सीमित होता है। फलत: इसमें जीवन की विस्तृत भूमि नहीं आ सकी है। **लक्ष्मीनारायण मिश्र** समस्या नाटकों के प्रतिनिधि नाटककार हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक (1947 से आज तक)

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हिंदी नाट्य साहित्य में कई नई प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं जो इस प्रकार हैं–

(*i*) **आधुनिकता बोध एवं विसंगति बोध**–स्वतंत्रता के बाद नव-निर्माण की आकांक्षा ने लोगों में उत्साह का संचार किया, लेकिन इस दिशा में मिली असफलता ने लोगों को निराश एवं कुंठित भी किया। इन परिस्थितियों में मध्यवर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुआ। अत: इस दौर में जो नाटक लिखे गये, उनमें मध्यवर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं व विडंबनाओं का चित्रण किया गया। इन नाटककारों ने आधुनिकता बोध के नाटक लिखे। **भुवनेश्वर प्रसाद** के **'असर'** नाटक से आधुनिकता बोध का आरंभ माना गया। इन्हीं के दूसरे नाटक, **''ताँबे के कीड़े''** से विसंगति बोध के नाटकों की शुरुआत हुई। (विसंगति बोध का अर्थ है मानव जीवन का निरुद्देश्य और अर्थहीन होना)।

आधुनिकता बोध को स्थापित करने की दृष्टि से धर्मवीर भारती का **'अंधा युग'** एवं मोहन राकेश का **'आधे-अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन'** व **'लहरों के राजहंस'** उल्लेखनीय हैं।

'अंधा युग' में महाभारत युद्ध के उपरांत की जिन परिस्थितियों एवं घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है, वे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की घटनाओं का चित्रण करती हैं। अपनी प्रतीकात्मकता से यह नाटक सिद्ध करता है कि कोई भी लड़ाई सत्य के लिए नहीं होती, सत्य से हटकर होती है। दोनों पक्ष होते हैं–कोई कम, कोई अधिक।

मोहन राकेश ने मूलत: आधुनिक मानव के द्वंद्व और तनाव को अपने नाटकों का विषय बनाया है। रंगमंच के स्तर पर मोहन राकेश प्रसाद की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। इनकी भाषा चरम रचनात्मकता तथा नाटकीय संभावनाओं से युक्त है। **'आषाढ़ का एक दिन'** की कथा कालिदास की प्रणयकथा है। यह नाटक सत्ता और सर्जनात्मकता के द्वंद्व एवं जटिल संबंधों को व्यक्त करता है। **'लहरों के राजहंस'**–गौतम बुद्ध के भ्राता नंद के द्वंद्व को रूपायित करता है। इसमें राग–विराग, मोह–त्याग, सांसारिकता-आध्यात्मिकता के द्वंद्व को सफलतापूर्वक उभारा गया है। **'आधे अधूरे'** यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति करने वाला एक आडंबरहीन नाटक है जो आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के टूटने-बिखरने की कथा है। कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक कहा है कि आधे-अधूरे आधुनिक भाव-बोध तथा आधुनिक रंग चेतना का पहला नाटक है।

नोट

लक्ष्मीनारायण लाल इसी समय के एक अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार हैं जिन्होंने **'मादा कैक्टस'** नाटक में कला और प्रणय के अंतर्विरोध को प्रस्तुत किया है। यह नाटक एक दूसरे स्तर पर पीढ़ियों के मूल्यों के संघर्ष को रूपायित करता है। लक्ष्मी नारायण लाल लघु नाटकों के लिए भी प्रसिद्ध हैं जो भले ही पाश्चात्य रंग शिल्प और आधुनिकता के प्रयोग हों–पर यथार्थवादी हैं।

मोहन राकेश की परंपरा में ही एक अन्य नाम है–**'सुरेंद्र वर्मा'।** इन्होंने खासतौर पर आधुनिक जीवन के तनाव और तल्खी को व्यक्त करने की कोशिश की है। **'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग'** इनके प्रमुख नाटक हैं। **'द्रौपदी'** में आधुनिक मनुष्य के बहु-मुखौटेपन को व्यक्त किया गया है। **'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक'** में स्त्री के काम-मनोविज्ञान को बहुत काव्यात्मकता के साथ व्यक्त किया गया है। **'आठवाँ सर्ग'** में अश्लीलता और लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया गया है।

इस काल में भ्रष्टाचार, पीढ़ियों के संघर्ष, संबंधों की अर्थहीनता, समसामयिक व्यंग्य, राजनीतिक संदर्भ आदि विषयों पर नाटक लिखे गए।

(ii) **पाश्चात्य शिल्प**–इस समय पाश्चात्य रंगशिल्प पर आधारित कई नाटक आए। इनमें सूत्रधार, कथाविहीनता, नायकहीनता का प्रचलन बढ़ा। हिंदी नाटक को नवीनता की ओर उन्मुख करने में **रमेश बक्षी** का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा। इन्होंने नाटकों में भाषा, परिवेश व संदर्भ में 'बोल्डनेस' का मुहावरा चलाया।

सत्तर के दशक तक हिंदी नाटक की रंगमंचीयता काफी खुली और कथ्य के स्तर पर उसमें विस्तार एवं सूक्ष्मता आ गई। सत्तर के बाद की नाट्य रचना अपने समय के जटिल यथार्थ से टकराती है एवं रंगचेतना की भी पूरी रक्षा करती है। इन नाटकों की अंतर्वस्तु काफी व्यापक है। प्रमुख नाटककार हैं–

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – बकरी

ज्ञानदेव अग्निहोत्री – 'शुतुरमुर्ग'

भीष्म साहनी – 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'मुआवज़े'

बृजमोहन शाह – 'त्रिशंकु'

इनमें ज्ञानदेव अग्निहोत्री तथा बृजमोहनशाह नाटक से रंगमंच की ओर नहीं बल्कि रंगमंच की सक्रियता से लेकर नाटक रचना की ओर अग्रसर हुए हैं। **ज्ञानदेव** के **'शुतुरमुर्ग'** में प्रतीक फैंटेसी के प्रयोग विशेष हैं, और **बृजमोहन शाह** के **'त्रिशंकु'** की रंगमंचीय गतिशीलता महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही कई महत्त्वपूर्ण निर्देशकों ने भी अपनी कल्पना से नाटकों को समृद्ध किया। इनमें प्रमुख हैं–**इब्राहिम अलकाजी, श्यामानंद जालान, ब. व. कारंत, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर, सत्यव्रत सिन्हा** आदि।

टास्क हिंदी नाटक का विकास तथा हिंदी नाट्य-साहित्य के विभिन्न युगों का उल्लेख कीजिए।

(iii) **नुक्कड़ नाटक**–हिंदी नाट्य परंपरा के विकास में एक धारा नुक्कड़ नाटकों की भी है। नुक्कड़ नाटकों ने जीवन की समस्याओं को रंगमंचीय तामझाम के बिना ही सामने रखने की कोशिश की है। यह कुल मिलाकर जनता एवं रंगकर्मी के बीच संवाद है और आश्वासन देता है कि रंगमंच को शास्त्रीय अड़चनों के बिना भी सामने रखा जा सकता है। **हबीब तनवीर** नुक्कड़ नाटकों के प्रतिनिधि हैं।

समग्रत: हिंदी नाटक के क्षेत्र में स्वातंत्र्योत्तर-काल भारतेंदु-काल के बाद सर्वाधिक सक्रियता का काल रहा है। इस दौर में कथ्य और शिल्प के स्तर पर तीव्र परिवर्तनों ने हिंदी नाटक को एक नयी दिशा दी। संचार माध्यमों के दबाव के बावजूद ये परिवर्तन हिंदी नाटक के विकास के प्रति आश्वस्त करते हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. लक्ष्मीनारायण मिश्र .... नाटकों के प्रतिनिधि नाटककार हैं।
   (क) व्यंग्य समस्या (ख) आर्थिक समस्या
   (ग) सामाजिक समस्या (घ) समस्या
5. रंगमंच के स्तर पर .... प्रसाद की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं।
   (क) कालिदास (ख) मोहन राकेश
   (ग) भीष्म साहनी (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
6. हिंदी नाटक को नवीनता की ओर उन्मुख करने में .... का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।
   (क) रमेश बक्षी (ख) ज्ञानदेवी अग्निहोत्री
   (ग) बृजमोहन शाह (घ) सत्यदेव दूबे

9.1.3 हिंदी नाटक के प्रमुख नाटककार

भारतेंदु हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी के प्रथम मौलिक नाटककार हैं। उन्होंने न केवल नाटक को युगीन समस्याओं से जोड़ा बल्कि नाटक और रंगमंच के परस्पर संबंध को समझते हुए अभिनय भी किया। भारतेंदु ने हिंदी नाट्य विकास के लिए योजनाबद्ध ढंग से एक संपूर्ण आंदोलन की तरह काम किया है।

भारतेंदु ने पारसी नाटकों के विपरीत जनसामान्य को जागृत करने एवं उनमें आत्मविश्वास जगाने के उद्देश्य से नाटक लिखे हैं। इसलिए उनके नाटकों में देशप्रेम, न्याय, त्याग, उदारता जैसे मानवीय मूल्य नाटकों की मूल संवेदना बनकर आए हैं। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम एवं ऐतिहासिक पात्रों से प्रेरणा लेने का प्रयास भी इन नाटकों में हुआ है।

भारतेंदु के लेखन की एक मुख्य विशेषता यह है कि वे अक्सर व्यंग्य का प्रयोग यथार्थ को तीखा बनाने में करते हैं। हालांकि उसका एक कारण यह भी है कि तत्कालीन परिवेश में अपनी बात को सीधे तौर पर कह पाना संभव नहीं था। इसलिए जहाँ भी राजनीतिक, सामाजिक चेतना के बिंदु आये हैं वहाँ भाषा व्यंग्यात्मक हो चली है। इसलिए भारतेंदु ने कई प्रहसन भी लिखे हैं।

भारतेंदु ने मौलिक व अनूदित–दोनों मिलाकर सत्रह नाटकों का सृजन किया। भारतेंदु के प्रमुख नाटक हैं–

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति–मांस भक्षण पर व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। **'प्रेमयोगिनी'** में काशी के धर्माडंबर का वहीं की बोली और परिवेश में व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। **'विषस्य विषमौषधम्'** में अंग्रेजों की शोषण नीति और भारतीयों की मोहासक्त मानसिकता पर चुटीला व्यंग्य है। **श्री 'चंद्रावली'** वैष्णव भक्ति पर लिखा गया नाटक है। **'अँधेर नगरी'** में राज व्यवस्था की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, विवेकहीनता एवं मनुष्य की लोभवृत्ति पर तीखा कटाक्ष है जो आज भी प्रासंगिक है। **'नीलदेवी'** में नारी व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा है। यह दुखांत नाटक है। **'भारत दुर्दशा'** में पराधीन भारत की दयनीय आर्थिक स्थिति एवं सामाजिक सांस्कृतिक अध:पतन का चित्रण है। **'सती प्रताप'** सावित्री के पौराणिक आख्यान पर लिखा गया है। उन्होंने अंग्रेजी के **'मर्चेंट ऑफ वेनिस'** नाटक का **'दुर्लभबंधु'** नाम से अधूरा अनुवाद किया।

भारतेंदु के नाटक सोद्देश्य लिखे गए हैं। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। लोकजीवन के प्रचलित शब्द, मुहावरे एवं अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के सहज चलन में आने वाले शब्द उनके नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। रंगमंचीय दृष्टि से वे भारतीय परंपरा का अनुसरण करते हैं जैसे नांदी पाठ, मंगलाचरण आदि। वैसे उन्होंने

नोट

'नीलदेवी' नामक दुखांत नाटक लिखकर पाश्चात्य नाट्य परंपरा से प्रभाव भी ग्रहण किया है। भारत दुर्दशा में भी दुखांत का सीमित प्रभाव विद्यमान है।

भारतेंदु को हिंदी के प्रथम नाटककार एवं युग प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है। हिंदी नाट्य साहित्य को उनकी देन निम्नलिखित हैं–

1. पहली बार प्रहसन परंपरा का आरंभ
2. कथानक में विविधता
3. यथार्थ जीवन के पक्षों का उद्घाटन
4. प्रथम बार हिंदी के अपने रंगमंच की स्थापना का प्रयास
5. संस्कृत-बांग्ला-अंग्रेजी नाट्यकला का समन्वय
6. अनुदित नाटकों से नाट्य साहित्य को समृद्धि प्रदान करने का प्रयास।

जयशंकर प्रसाद

भारतेंदु के बाद जयशंकर प्रसाद ने ही हिंदी नाटक को एक नया आयाम दिया। उन्होंने ऐतिहासिक सांस्कृतिक परंपराओं को आत्मसात् कर पाश्चात्य एवं भारतीय नाट्य साहित्य का समन्वय किया। यह श्रेय प्रसाद को ही है कि उन्होंने सात्विक मनोरंजन के साथ पहली बार हिंदी नाटकों को हास्य व्यंग्य, गहरी संवेदना, आदर्श, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं ऐतिहासिक चेतना से युक्त किया।

प्रसाद के नाटक हैं–**'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित्त', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूँट', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'अग्निमित्र'।**

इनमें प्रथम चार नाटक प्राचीन नाट्य परंपरा से मुक्त नहीं हैं, यद्यपि करुणालय में उन्होंने गीति-नाट्य शैली का प्रयोग किया है। **'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी'** आदि नाटकों में ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रयास किया गया है। इन नाटकों में उन्होंने इतिहास के बीच से ही प्रेम और सौंदर्य के मधुर चित्र खींचे हैं। यहाँ प्रसाद की दृष्टि रोमांटिक होते हुए भी संयमित रही है। प्रसाद ने इन नाटकों में ऐतिहासिक तथ्यों के द्वारा वर्तमान जीवन की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का भी चित्रण किया। जैसे 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के माध्यम से आधुनिक नारी की संबंध-विच्छेद व पुनर्विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया है।

प्रसाद ने पहली बार पात्रों को उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। उन्होंने पात्रों के अंतर्मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को प्रस्तुत किया है। उनके पात्र अंतर्द्वंद्व से युक्त हैं। इसलिए कहीं-कहीं उनका नायकत्व खंडित होता भी प्रतीत होता है, परंतु प्रसाद ने पात्रों को यथार्थवादी मानव सुलभ रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। यद्यपि उनके पात्र त्याग व उत्सर्ग में ही संतोष प्राप्त करते हैं लेकिन यह समय की जरूरत थी। साथ ही पारसी नाटकों की सस्ती मनोरंजकता से भी प्रसाद क्षुब्ध थे, इसलिए भी नाटकों में वे आदर्शों, मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे।

प्रसाद ने भारतीय व पाश्चात्य नाट्य परंपरा का समन्वय कर नयी स्थापनाएँ भी कीं। उन्होंने पाश्चात्य दुखांत व भारतीय सुखांत नाटकों के सामंजस्य से 'प्रसादांत' नाटकों की रचना की।

उन्होंने नाटकों में सस्ते गीतों की जगह रसपूर्ण गीतों का प्रयोग किया है। यद्यपि कहीं-कहीं इन गीतों से नाटकों के प्रवाह में व्यवधान भी लगता है फिर भी काव्यत्व की दृष्टि से ये गीत सुंदर बन पड़े हैं।

जहाँ तक प्रसाद की भाषा का प्रश्न है, उनके नाटकों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। दार्शनिक संवादों, स्वगत कथनों व गीतों की अधिकता के कारण उनकी भाषा पर दुरूहता के आरोप भी लगे हैं।

एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि प्रसाद के नाटक रंगमंच की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं। वस्तुत: प्रसाद ने पहले ही यह घोषित कर दिया था कि ''नाटकों के लिए रंगमंच होना चाहिए, रंगमंच के लिए नाटक नहीं''। फिर भी उनके नाटकों के सफल मंचन होते रहे हैं। आधुनिक तकनीकों ने भी इनके मंचन को संभव बनाया है।

नोट

समग्रत: प्रसाद का हिंदी नाट्क साहित्य में वही स्थान है जो उपन्यास में प्रेमचंद का है। आधुनिक नाटकों में आज जिस मानवीय द्वंद्व को प्रस्तुत किया जा रहा है उसकी नींव प्रसाद ने ही डाली थी। ऐतिहासिक नाटकों द्वारा समसामयिक समस्याओं के चित्रण की परंपरा मोहन राकेश आदि नाटककारों में आज भी चल रही है। प्रसाद के नाटक इस अर्थ में आज भी प्रासंगिक हैं कि न केवल उन्होंने नाटक को नयी संवेदना दी है बल्कि एक नया शिल्प भी दिया है।

मोहन राकेश

हिंदी नवनाट्य लेखन को एक व्यापक-सर्जनात्मक एवं ठोस आंदोलन के रूप में स्थापित करने का श्रेय मोहन राकेश को है। सामान्यत: राकेश को प्रसाद की परंपरा का नाटककार कहा जा सकता है क्योंकि उनके नाटकों में ऐतिहासिक नारी पात्रों की प्रधानता, भावुकता, काव्यात्मकता मौजूद है। फिर भी मोहन राकेश ने इस परंपरा का नये रूप में विकास किया है एवं प्रसाद परंपरा से इतर आधुनिक भाव-बोध के नाटक भी लिखे हैं। उन्होंने आधुनिक संवेदनाओं, आधुनिक मानव के द्वंद्व को पकड़ना चाहा है। उनके नाटकों में पात्रों की भीड़भाड़ नहीं है। साथ ही उन्होंने नाटकों के चलते रूप को आधे-अधूरे नाटक में तोड़ा भी है।

मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे अधूरे', तथा **'पैरों तले की जमीन'** कुल चार नाटक लिखे। इसके अतिरिक्त, उन्होंने कुछ एकांकियों की भी रचना की।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक कवि कालिदास के सत्ता एवं सर्जनात्मकता के मध्य अंत:संघर्ष का चित्रण करता है। यह केवल कालिदास का द्वंद्व नहीं बल्कि आधुनिक मानव का भी अंतर्द्वंद्व है। कालिदास एक सृजनशील कलाकार के व्यवस्था द्वारा कुचल दिए जाने का प्रतीक है।

'लहरों के राजहंस' बुद्ध के भ्राता नंद पर आधारित नाटक है। इसमें भी भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का द्वंद्व है। इन दोनों किनारों के मध्य खड़े मनुष्य को उचित समन्वय से ही सही दिशा मिल सकती है। इसमें 'सुंदरी' प्रवृत्ति पक्ष का प्रतीक है तो 'बुद्ध' निवृत्ति पक्ष के एवं नंद दोनों के बीच द्वंद्वग्रस्त मानव चेतना का। प्रतीकों की बहुलता से कहीं-कहीं यह नाटक बोझिल प्रतीत होता है। लेकिन चारित्रिक अंतर्द्वंद्व, मनोवैज्ञानिकता के स्तर पर यह नाटक उल्लेखनीय बन पड़ा है।

'आधे-अधूरे' में मोहन राकेश अभिजात्य संस्कारों से मुक्त हो सीधे यथार्थ से टकराते हैं। प्रश्न यहाँ भी द्वंद्व, असंतोष और एक अंतहीन खोज का है, केवल परिवेश भिन्न है। मध्यवर्गीय महानगरीय जीवन में आर्थिक संकटों एवं अस्तित्व के संकट के कारण एक परिवार के विघटन को यह नाटक रूपायित करता है। यह नाटक कई स्तरों पर संकेत देता है। पारिवारिक विघटन, मानवीय संबंधों में दरार, संबंधों की कटुता, आपसी रिश्तों की रिक्तता, यौन विकृतियों, द्वंद्व एवं नियति आदि को समेटता चलता है। **'आधे-अधूरे'** नाटक में उन्होंने एक ही अभिनेता से पाँच भूमिकाएँ कराने का प्रयोग किया है लेकिन यह प्रयोग एक नाटकीय युक्ति बनकर ही रह गया। इसमें उन्होंने 'प्रस्तावना' का भी प्रयोग किया तथा परंपरा को नये संदर्भ में प्रयुक्त किया। यह नाटक पहले के दो नाटकों से एक अन्य दृष्टि से भी भिन्न है। नंद एवं कालिदास अंत में चले जाते हैं जबकि इसमें महेंद्रनाथ पुन: वापस लौट आता है जो नाटककार की समसामयिक दृष्टि की प्रमाणिकता को सिद्ध करता है।

'पैरों तले की जमीन' में कोई कथानक नहीं है। स्थितियों की विसंगतियों से उत्पन्न अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति है। इसमें नेपथ्य की ध्वनियों के आधार पर रंगमंच को नया अर्थ देने का प्रयोग है।

इन चारों नाटकों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने **'अंडे के छिलके', 'शायद', 'धारियाँ'** नामक लघु नाटक भी लिखे हैं।

इन सभी नाटकों में **आधे-अधूरे** की भाषा सबसे जानदार बन पड़ी है जो आज के जीवन के तनाव को पकड़ पाती है। यहाँ स्थितियों का चित्रण उतना नहीं है, जितना पात्रों की मन:स्थितियों का है।

मोहन राकेश ने अपने सभी नाटकों में भाव और स्थिति की गहराई में जाने का प्रयत्न अधिक किया है, शिल्प की बनावट का उतना नहीं। फिर भी उनकी कोशिश रही है कि शब्दों के संयोजन से ही दृश्यत्व पैदा हो न कि

नोट

अन्य उपकरणों से। यही उनके आंतरिक शिल्प की खोज है। उनके नाटकों में रंगमंच नाटक की बनावट में ही है, कहीं से अधिक आरोपित नहीं। मोहन राकेश के नाटकों में कथा की उतनी चिंता नहीं की गई जितनी संवेदना को सही रूप में व्यक्त करने की। उन्होंने हिंदी नाटक को प्रसादीय और कृत्रिम भाषा से मुक्त कर युगीन विसंगतियों को मूर्त करने के लिए समर्थ भाषा प्रदान की। मोहन राकेश के नाटक रंगमंचीय दृष्टि से सफल एवं प्रयोगशील नाटक हैं।

जगदीशचंद्र माथुर

जगदीशचंद्र माथुर प्रसादोत्तर नाट्य परंपरा के नाटककार हैं। उनका पहला नाटक **'कोणार्क'** समकालीन नाटक का प्रस्थान बिंदु है। इस नाटक में रंगमंचीय शिल्प के साथ काव्यत्व का अपूर्व सामंजस्य प्राप्त होता है। इस नाटक ने एक अर्से के बाद नाटक और रंगमंच का रिश्ता पुनर्जीवित किया।

'कोणार्क' शीर्षक इतिहास बोध से प्रेरित है पर शेष नाटककार की रचनात्मकता है। इस नाटक में तीन प्रकार की अवधारणाओं में संघर्ष समायोजित है–सर्जना और विध्वंस के बीच, पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच तथा राजसत्ता और जनसत्ता के बीच। इसमें विशु एक शिल्पी है और वह शिल्पी ही रहना चाहता है। वह शासन के मामले में पड़ना नहीं चाहता किंतु उसका पुत्र धर्मपाल उसका प्रतिवाद करता है और राजसत्ता के विरोध में सक्रिय होता है।

टास्क हिंदी नाटक के दो प्रमुख नाटककारों का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

उनके दूसरे नाटक **'शारदीया'** में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ली गई है। इसमें उन्नीसवीं शदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में तत्कालीन समाज एवं मानवीय संबंधों की अंतरंग झाँकी प्रस्तुत की गई है।

जगदीशचंद्र माथुर का तीसरा नाटक **''पहला राजा''** है। यह न तो ऐतिहासिक है न पौराणिक और न ही यथार्थवादी। यह माडर्न एलिगेरी (आधुनिक अन्योक्ति) का मंचीय रूप है। इसमें प्राचीन पात्रों व प्रसंगों के माध्यम से समसामयिक समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। इसमें प्रथु के रूप में प्रकारांतर से नेहरू को मूर्त किया गया है। इसकी परंपरा पाश्चात्य साहित्य में रही है। **बर्नार्ड शॉ, ब्रेख्त, लारेंस** ने ऐसे प्रयोग किए हैं।

एक अन्य नाटक **'दशरथ नंदन राम'** में लेखक ने 'रामचरितमानस' की मुख्यकथा एवं उसके चुने हुए शब्दों, पदों, विचारों, दर्शन को यथासंभव उसके मूल रूप में आधुनिक पाठकों तक पहुँचाया है। यह रामलीला पद्धति पर लिखा गया है। **'रघुकुल रीति'** एक अन्य नाटक है।

इस प्रकार जगदीशचंद्र माथुर ने सर्वप्रथम नाटक को समकालीन संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने समसामयिक समस्याओं व मानवीय संबंधों को ऐतिहासिक, पौराणिक संदर्भों में व्याख्यायित किया है लेकिन उनके समाधान आधुनिक हैं। शिल्प संबंधी नवीन प्रयोगों द्वारा नाट्य विधा को समृद्ध करने का श्रेय भी उन्हें है।

रामकुमार वर्मा

प्रसादोत्तर नाट्य परंपरा में **रामकुमार वर्मा** प्रमुख नाटककार हैं। 1950 के बाद जब रचनाकार रोमांटिक भाव-बोध से मुक्त होने का प्रयास कर रहे थे तब रामकुमार वर्मा प्रसाद का अनुगमन कर इतिहास का आधार लेकर अपने युग के राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ एवं समृद्ध कर रहे थे।

रामकुमार वर्मा के प्रमुख नाटक हैं–**'कौमुदी महोत्सव'**, **'विजय पर्व'**, **'कला और कृपाण'**, **'नाना फड़नवीस'**, **'महाराणा प्रताप'**, **'शिवाजी'**, **'अशोक का शोक'**, **'भगवान बुद्ध'**, **'समुद्रगुप्त पराक्रमांक'**, **'सम्राट कनिष्क'**, **'जहीरुद्दीन बाबर'** आदि।

नोट

प्रसाद की तरह इन्होंने भी इतिहास के उज्ज्वल पक्ष का प्रयोग प्रेरणा और शक्ति देने में किया है। वे जातिभेद और वर्गभेद को मिटाकर नये समाज की रचना करना चाहते हैं। उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों को सहज, विश्वसनीय एवं मनोविज्ञान-सम्मत रूप में चित्रित किया है। किंतु वे रोमांटिक भाव-बोध से मुक्त नहीं हो सके हैं।

समकालीनता रामकुमार वर्मा के नाटकों में कहीं-कहीं उभरकर तिरोहित हो जाती है। उदाहरणार्थ **'पृथ्वी का स्वर्ग'** नाटक में जमाखोरी, कालाबाजारी, मिलावट आदि का मानवीय सरोकार जो प्रारंभ में दिखाई देता है, वह उत्तरोत्तर अनाटकीय, अयथार्थ होता गया है। वर्मा जी के नाटक प्रायः दुखांत हैं इसके कारण है वे पाठक को अंततः मनन करने लायक स्थिति में छोड़ जाते हैं। उनके नाटकों में आदर्शवादिता का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. जयशंकर प्रसाद ने ही हिंदी नाटक को एक नया आयाम दिया।
8. आधे-अधूरे नाटक में मोहन राकेश अभिजात संस्कारों से मुक्त हो सीधे यथार्थ से टकराते हैं।
9. प्रसाद की तरह रामकुमार वर्मा ने भी इतिहास के उज्जवल पक्ष का प्रयोग प्रेरणा और शक्ति देने में किया है।

9.2 सारांश (Summary)

- उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में **पारसी थियेटर कंपनियाँ** अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। इनके नाटकों के कथानक कभी रामायण-महाभारत से, कभी पारसी प्रेमकथाओं से और कभी अंग्रेजी नाटकों **'हेमलेट', 'रोमियो-जूलियट'** आदि से लिये जाते थे।
- भारतेंदु ने अनूदित व मौलिक नाटकों को मिलाकर सत्रह नाटक लिखे। उन्होंने हिंदी नाटकों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया।
- द्विवेदी युग के नाटकों पर फारसी प्रभाव रहा। यहाँ तक कि प्रसाद के नाटकों में भी यह प्रभाव देखा गया। इन नाटकों का महत्त्व न तो शिल्प की दृष्टि से है और न ही सुरुचि-संस्कार की दृष्टि से। फिर भी कुछ नाटकों में तत्कालीन समाज की विकृतियाँ उभरकर आयी हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।
- प्रसाद युग के नाटकों के संवाद पात्रों के सूक्ष्म चरित्र के उद्घाटक और कथानक को गतिशील बनाने में सहायक हैं लेकिन संवाद योजना में अनेक स्थलों पर लंबे-लंबे कथोपकथन आए हैं। प्रसाद युगीन नाटकों की भाषा सशक्त है। विशेषकर प्रसाद ने भाषा का प्रयोग भावों के अनुसार किया, पात्रों के अनुसार नहीं।
- भारतेंदु के नाटक सोद्देश्य लिखे गए हैं। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। लोकजीवन के प्रचलित शब्द, मुहावरे एवं अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के सहज चलन में आने वाले शब्द उनके नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। रंगमंचीय दृष्टि से वे भारतीय परंपरा का अनुसरण करते हैं जैसे नांदी पाठ, मंगलाचरण आदि।
- प्रसाद का हिंदी नाट्क साहित्य में वही स्थान है जो उपन्यास में प्रेमचंद का है। आधुनिक नाटकों में आज जिस मानवीय द्वंद्व को प्रस्तुत किया जा रहा है उसकी नींव प्रसाद ने ही डाली थी। ऐतिहासिक नाटकों द्वारा समसामयिक समस्याओं के चित्रण की परंपरा मोहन राकेश आदि नाटककारों में आज भी चल रही है। प्रसाद के नाटक इस अर्थ में आज भी प्रासंगिक हैं कि न केवल उन्होंने नाटक को नयी संवेदना दी है बल्कि एक नया शिल्प भी दिया है।

नोट

9.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **दृष्टिकोण**–विचार, नजरिया, किसी विषय आदि को समझने-देखने का तरीका
2. **ऐतिहासिक**–इतिहास से संबंधित
3. **अतिक्रमण**–कब्जा करना, अपनी सीमा से बाहर जाना

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी नाटक का विकास तथा इसके विभिन्न युगों का उल्लेख कीजिए।
2. हिंदी नाटक के प्रमुख नाटककारों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. हिंदी नाट्य साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. जयशंकर प्रसाद	2. आत्मविश्वास	3. प्रसाद युग
4. (घ)	5. (ख)	6. (क)
7. सत्य	8. सत्य	9. असत्य

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास–*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*

नोट

इकाई–10 : हिंदी निबंध का विकास एवं प्रमुख निबंधकार

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
10.1 हिंदी निबंध का विकास
10.1.1 हिंदी निबंधों के प्रकार
10.1.2 हिंदी के प्रमुख निबंधकार
10.2 सारांश (Summary)
10.3 शब्दकोश (Keywords)
10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी निबंधों का विकास जानने में।
- हिंदी निबंधों के प्रकार समझने में।
- हिंदी के प्रमुख निबंधकारों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी निबंधों की विकास यात्रा तथा हिंदी की अन्य गद्य-विधाओं का विकास भारतेंदु युग से प्रारंभ हुआ। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने साधारण-से-साधारण और गंभीर विषयों पर रचना की। राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों पर स्वच्छंद रूप से विचार व्यक्त करते हुए भारतेंदु ने हिंदी निबंध को विकास पथ पर अग्रसर किया। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। पढ़े-लिखे लोग अपने विचारों को स्वच्छंदतापूर्वक एक निजीपन लिए हुए स्वतंत्र रूप में व्यक्त करने लगे थे। इस समय तक हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगी थीं। इन समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे, उन्हें हिंदी निबंध का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है।

10.1 हिंदी निबंध का विकास

भारतेंदु युग तक हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थीं, जिनमें **उदंत मार्तण्ड, ब्राह्मण, प्रदीप, बनारस अखबार, सार-सुधानिधि**, आदि महत्त्वपूर्ण थीं। इन समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे, उन्हें हिंदी निबंध का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। निबंध इन पत्र-पत्रिकाओं

नोट

से सीधे जुड़े हुए थे। लेखकों के समक्ष अनेक विषय थे। वे सामयिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विषयों पर प्राय: निबंधों के माध्यम से प्रकाश डालते रहते थे। स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि हिंदी के प्रारंभिक निबंध पत्रकारिता से सीधे जुड़े हुए थे।

भारतेंदु युग के निबंधकारों ने साधारण-से-साधारण और गंभीर विषयों पर निबंधों की रचना की। सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों पर स्वच्छंद रूप से विचार व्यक्त करते हुए इन्होंने हिंदी निबंध को विकास पथ पर अग्रसर किया। हिंदी निबंध के विकास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **भारतेंदु युग** (1873 ई.-1900 ई.)
2. **द्विवेदी युग** (1900 ई.-1920 ई.)
3. **शुक्ल युग** (1920 ई.-1940 ई.)
4. **शुक्लोत्तर युग** (1940 ई. के उपरांत)

1. भारतेंदु-युग (1873 ई.-1900 ई.)

भारतेंदु युग को हिंदी निबंध की विकास यात्रा का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है। इससे पूर्व के गद्य लेखकों की रचनाओं में निबंध के गुण उपलब्ध नहीं थे। सही अर्थों में भारतेंदु जी के निबंध ही हिंदी के प्राथमिक निबंध हैं, जिनमें निबंध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेंदु जी ने हिंदी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात ही किया अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी प्राप्त किया। **भारतेंदुजी** के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य-विनोद जैसे विषयों पर निबंधों की रचना की। अपने सामाजिक निबंधों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए तो राजनीतिक निबंधों में अंग्रेजी राज्य पर तीखे व्यंग्य किए। भारतेंदु जी के निबंधों में विषयानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। उनके आलोचनात्मक निबंधों की भाषा प्रौढ़ होते हुए भी दुरूह एवं बोझिल नहीं हो पाई है। भारतेंदु जी के कुछ निबंधों के नाम यहाँ देना अप्रासंगिक न होगा-**अंग्रेज स्तोत्र, पांचवें पैगम्बर, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, लेवी प्राण लेवी** आदि। उनके निबंधों की भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है-''**गाड़ी भी ऐसी टूटी-फूटी जैसे हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तो तपस्या करके गोरी-गोरी, कोख से जन्म लें तब ही संसार में सुख मिले।**''

भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकारों में स्वयं **भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र** के अतिरिक्त **बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास** आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने भी हिंदी निबंध के विकास में पर्याप्त योगदान किया है। **पं. बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप'** के यशस्वी संपादक थे और वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारोत्तेजक निबंधों के लेखक के रूप में जाने जाते थे। हास्य को वे बहुत महत्त्व देते थे। इसका पता उनके इस विचार से लगता है-''**सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़कर कुंद कली समान दांत न खिल उठें तो वह लेख ही क्या।**'' उनके निबंध भावात्मक भी हैं और विचारात्मक भी। 'चंद्रोदय' उनका भावात्मक निबंध है तो 'मुग्ध' 'माधुरी' में विचार और भावना का संतुलित समन्वय दिखाई पड़ता है। गंभीर बातों को सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत कर पाने की कला में वे निष्णात थे। विषय की व्यापकता एवं मौलिकता के साथ-साथ शैली की रोचकता उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है।

नोट्स भारतेंदु युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार स्वयं **भारतेंदु जी** ही माने जा सकते हैं।

'ब्राह्मण' के संपादक **पंडित प्रतापनारायण मिश्र** इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार थे। वे मनोरंजक एवं व्यंग्य प्रधान निबंधों को लिखने में अति कुशल थे। **भौं, पेट, दांत, नाक** आदि पर उन्होंने विनोदपूर्ण शैली में निबंध

लिखे हैं। कैसा भी विषय क्यों न हो वे उसमें विनोद की सामग्री खोज ही लेते हैं। मिश्र जी की भाषा मुहावरेदार है जिसमें कहीं-कहीं व्यर्थ की उछलकूद एवं चंचलता भी देखी जा सकती है।

श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' 'आनंद कादंबिनी' नामक मासिक पत्रिका के संपादक थे और भारतेंदु जी के मित्र थे। उनके निबंधों की भाषा में अलंकारिकता, कृत्रिमता एवं चमत्कारप्रियता सर्वत्र दिखाई देती है।

बालमुकुंद गुप्त ने **'शिवशम्भू का चिट्ठा'** नाम से **लॉर्ड कर्ज़न** को संबोधित करते हुए जो निबंध लिखे हैं उनमें भारतवासियों की राजनीतिक विवशता का कच्चा चिट्ठा पेश किया गया है। **राधाचरण गोस्वामी** ने अनेक निबंध सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करने के उद्देश्य से लिखे। **'यमपुर की यात्रा'** निबंध में वे 'गोदान' पर करारा प्रहार करते हुए लिखते हैं-

''यदि गौ की पूंछ पकड़कर पार उतर जाते हैं तो क्या बैल से नहीं उतर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं, तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?''

संक्षेप में, भारतेंदु युग के निबंधकारों में विषय की व्यापकता एवं विविधता है। वे निबंध-लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी हैं अत: उनमें वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का भी समावेश है। इनकी शैली में हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन की प्रधानता है। इन निबंधों का प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक विषमता और सामाजिक कुरीतियों पर चोट करना रहा है। भारतेंदु युग के निबंधकारों का मूल्यांकन करते हुए **डॉ. राम विलास शर्मा** ने लिखा है-''जितनी सफलता भारतेंदु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। ... भारतेंदु युग की गद्य शैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निदर्शन निबंधों में ही मिलते हैं।'' बाबू गुलाबराय के अनुसार, ''निबंध की पृष्ठभूमि में रहने वाला निजीपन, हृदयोल्लास और चलतेपन के लिए भारतेंदु युग चिरस्मरणीय रहेगा।''

टास्क हिंदी निबंध के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2. द्विवेदी-युग (1900 ई.-1920 ई.)

हिंदी निबंध के विकास के द्वितीय चरण को **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी** के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी ने **'सरस्वती'** पत्रिका का **संपादकत्व सन्** 1903 ई. में संभाला था, अत: द्विवेदी युग का प्रारंभ हम इसी समय से मान सकते हैं। द्विवेदी जी ने सरस्वती के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण-शुद्धि के जो प्रयास प्रारंभ किए उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी-न-किसी रूप में अवश्य पड़ा।

आचार्य द्विवेदी ने **'बेकन'** के निबंधों को आदर्श निबंध मानते हुए उनके निबंधों का **हिंदी अनुवाद 'बेकन-विचार रत्नावली'** के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबंधों का संग्रह **'रसज्ञ रंजन'** नाम से प्रकाशित हुआ है। द्विवेदी जी के कुछ प्रसिद्ध निबंधों के नाम हैं-कवि और कविता, कवि कर्तव्य, प्रतिभा, साहित्य की महत्ता, लोभ, 'मेघदूत' आदि। उनके निबंधों में वैचारिकता एवं गम्भीरता है तथा भारतेंदु युग की हास्य-व्यंग्य शैली का यहाँ अभाव है। इन निबंधों की भाषा शुद्ध, सार्थक एवं परिमार्जित है। ये निबंध प्राय: व्यास शैली में लिखे गए हैं जिससे वे बोधगम्यता के गुण से युक्त हो गए हैं। उनमें कहीं भी दुरूहता अथवा क्लिष्टता नहीं है। विषय के अनुरूप वे अपनी शैली में परिवर्तन करते दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, 'मेघदूत' निबंध की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं, जिनमें शैली की गम्भीरता स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है-''कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का 'मेघदूत' एक ऐसे भव्य भवन के सदृश है, जिसमें पद्य रूपी अनमोल रत्न जड़े हुए हैं।''

भारतेंदु युग की निबंध परंपरा से एक स्पष्ट अलगाव द्विवेदीयुगीन निबंधों में परिलक्षित होता है। भारतेंदु युग के निबंधों में जहाँ वैयक्तिकता की प्रधानता थी, वहीं द्विवेदी युग के निबंधों में व्यक्तित्व-व्यंजक परंपरा का ह्रास दिखाई पड़ता है। द्विवेदी युग के निबंधकारों में पंडित **महावीरप्रसाद द्विवेदी** के अतिरिक्त अन्य प्रमुख निबंध

लेखक थे—**माधवप्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, बाबू श्यामसुंदरदास, अध्यापक पूर्णसिंह, पद्मसिंह शर्मा, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', मिश्र बंधु, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी** आदि।

इन निबंधकारों ने द्विवेदी जी की परंपरा का अनुसरण करते हुए विचार प्रधान निबंध लिखे। **माधव प्रसाद मिश्र** के निबंधों का संग्रह **'माधव मिश्र निबंधमाला'** नाम से प्रकाशित हुआ है। इन्होंने 'धृति', 'सत्य' जैसे निबंधों की रचना विचार-प्रधान गम्भीर शैली में की है। **गोविंद नारायण मिश्र** की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं अलंकारों के बोझ से दबी हुई है। वाक्य लम्बे-लम्बे हैं और तत्सम एवं सामासिक पदावली की अधिकता है।

बाबू श्यामसुंदरदास द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार थे। वे एक उच्चकोटि के आलोचक थे। अत: उनके निबंधों का विषय प्राय: आलोचना से संबंधित रहा यथा—**'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ', 'कर्तव्य और सभ्यता', 'समाज और साहित्य'** आदि। इनके निबंधों में आत्माभिव्यंजन एवं वैयक्तिकता के तत्वों की उपेक्षा करते हुए केवल विचारों की अभिव्यक्ति पर ही ध्यान केंद्रित किया गया है। शैली में प्रौढ़ता है, किंतु कहीं भी अस्पष्टता नहीं दिखाई देती।

तुलनात्मक समालोचना के लिए प्रख्यात **पं. पद्म सिंह शर्मा** के दो निबंध संग्रह **'पद्यपराग'** एवं **'प्रबंध मंजरी'** नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में वैयक्तिकता एवं भावुकता की प्रधानता है। इनकी शैली प्रशंसात्मक एवं प्रभावपूर्ण है तथा उसमें खंडन-मंडन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वाक्य रचना से उन्होंने कथ्य को विशेष प्रभावशाली बना दिया है।

प्रसिद्ध पुरातत्वविद् **चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'** के निबंधों में प्रखर पांडित्य की झलक दिखाई पड़ती है। उनमें गंभीर चिंतन, सूक्ष्म विश्लेषण और व्यंग्य का पुट है। गुलेरीजी की भाषा प्रौढ़ एवं विषयानुकूल है। इनके निबंध संग्रहों के नाम हैं—**'गोबर गणेश संहिता', 'कछुआ धर्म'** और **'मारेसि मोहि कुठांव'**।

द्विवेदी युग के सर्वाधिक सशक्त निबंधकार हैं—सरदार पूर्णसिंह जो हिंदी में भावात्मक निबंधों की रचना के लिए तथा शैली की विशिष्टता एवं भाषा की लाक्षणिकता के लिए सुविख्यात रहे हैं। उनके निबंध हिंदी की अमूल्य निधि हैं। यह सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जा सकते हैं। इनके निबंधों के नाम हैं—**आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता, पवित्रता, कन्यादान** और **अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट व्हिटमैन**। स्वाधीन चिंतन के साथ-साथ लाक्षणिक एवं व्यंग्य प्रधान शैली की छाप दिखाई पड़ती है। पूर्णसिंह जी की लाक्षणिक पदावली के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—''आजकल भारत में परोपकार का बुखार फैल रहा है।''....''वह वीर ही क्या जो टिन के बर्तन की तरह झट गरम और झट ठंडा हो जाता है।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों की रचना अधिक हुई है। भारतेंदु युग की अपेक्षा इस युग के निबंधकारों की भाषा-शैली में प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेक्षा साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए निबंधों के विषयों की खोज की। हास्य-व्यंग्य के स्थान पर इनमें गंभीरता अधिक है। अध्यापक पूर्णसिंह एवं गुलेरी जी के निबंधों को छोड़कर शेष निबंधों में वैयक्तिकता का प्रस्फुटन नहीं हुआ है। इस युग (द्वितीय युग) के निबंधकारों ने भावात्मक, विचारात्मक, शोधपरक सभी शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से ये निबंध निश्चित रूप से भारतेंदुयुगीन निबंधों से अधिक प्रौढ़ हैं, क्योंकि इनकी भाषा व्याकरणसम्मत, प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।

3. शुक्ल-युग (1920 ई.-1940 ई.)

हिंदी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से इसे नए आयाम एवं नई दिशाएँ प्राप्त हुईं। उन्होंने **'चिंतामणि'** में जो निबंध संकलित किए हैं उनसे हिंदी निबंध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है। वस्तुत: निबंध कला के सभी गुण इनके निबंधों में उपलब्ध होते हैं। शुक्लजी के निबंधों में भाव एवं विचार का अर्थात् हृदय एवं बुद्धि का संतुलित समन्वय है। उनके निबंध दो प्रकार के हैं—**साहित्यिक समीक्षा संबंधी निबंध** तथा **मनोविकार संबंधी निबंध। तुलसी का भक्तिमार्ग, कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद** प्रथम कोटि के निबंध हैं तो **'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानि', 'श्रद्धा-भक्ति', 'क्रोध'** द्वितीय प्रकार के निबंध हैं। गहन विचार वीथियों के साथ-साथ रसपूर्ण छींटे यहाँ सर्वत्र बिखरे हुए हैं। शुक्लजी के निबंधों में चिंतन की मौलिकता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एवं

नोट

शैली की प्रौढ़ता के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके निबंधों के संबंध में यह निर्णय करना दुष्कर है कि वे विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान? इनके निबंधों में वैयक्तिकता का तत्व भी है और गंभीर विवेचन तथा सूक्ष्म विश्लेषण भी है। भाषा की दृष्टि से उनके निबंधों को **'हिंदी निबंध का आदर्श'** कहा जा सकता है। उनका वाक्य विन्यास सुसंगठित एवं सटीक है। प्रत्येक शब्द स्फटिक मणि की भाँति अपने उचित स्थान पर जड़ा हुआ है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। यदि कहा जाए कि 'शैली ही व्यक्तित्व है' तो यह कथन शुक्लजी के निबंधों पर पूर्णत: चरितार्थ होता है। शुक्ल जी ने विषयानुरूप सभी शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं वे सूत्र शैली का प्रयोग करते हैं तो कहीं शोधपरक गवेषणात्मक शैली का। उनके निबंधों में उपलब्ध कुछ सूत्रात्मक वाक्य दृष्टव्य हैं–**''यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण'', ''बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।''**

शुक्लजी अपने विचारों को ऐसी कुशलता से व्यक्त करते हैं कि पाठकों को उनसे सहमत होने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। **डॉ. गणपति चंद्रगुप्त** ने निबंधकार शुक्लजी के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है–''वस्तुत: शुक्लजी के निबंधों में वे सभी गुण मिलते हैं, जो गंभीर विषयों के निबंधों के लिए अपेक्षित हैं। ··· शुक्लजी की शैली में भी निजी विशिष्टता मिलती है। भारतेंदु युग की-सी मौलिकता उसमें है, किंतु वे उनके छिछलेपन से दूर हैं, द्विवेदी युग की सी विचारात्मकता उसमें है किंतु वैसी शुष्कता का उनमें अभाव है।'' शुक्लजी के निबंधों में परिष्कृत, प्रांजल, साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है। शब्द चयन, वाक्य रचना और सादृश्य विधान सबमें उनकी काव्यात्मक रुचि का परिचय मिलता है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त इस काल के अन्य चर्चित निबंधकार हैं–**बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, वासुदेव शरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी** और **माखनलाल चतुर्वेदी।** इनमें से **बाबू गुलाबराय** को हिंदी निबंध साहित्य की एक उपलब्धि कहा जा सकता है। उनके निबंध संग्रहों के नाम हैं–**'मेरे निबंध', 'मेरी असफलताएँ'** और **'फिर निराशा क्यों'**। गुलाबराय जी एक उच्चकोटि के आलोचक भी थे अत: उनके कुछ निबंधों में साहित्यिक समस्याओं पर विचार किया गया है। कुछ निबंध नितांत वैयक्तिक हैं, जिन्हें रोचक ढंग से लिखा गया है तथा इनमें उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू उभरकर सामने आए हैं।

बख्शीजी के निबंध **'कुछ'** और **'पंचपात्र'** में संकलित हैं, जिनमें मौलिक विचार एवं नूतन शैली के दर्शन होते हैं। **'अतीत स्मृति', 'उत्सव', 'रामलाल पंडित', 'श्रद्धांजलि के दो फूल'** और निबंधों में लेखक की भावुकता, आत्मीयता और व्यंग्य का समन्वय मिलता है। इनकी शैली बाबू श्यामसुंदरदास के निबंधों से मिलती-जुलती दिखाई पड़ती है।

शांतिप्रिय द्विवेदी ने एक ओर आलोचनात्मक निबंध लिखे तो दूसरी ओर **वैयक्तिक निबंधों की रचना की। 'कवि और काव्य'** तथा **'साहित्यिकी'** में संकलित निबंधों में भावुकता एवं आत्मीयता की प्रधानता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्राय: सांस्कृतिक विषयों पर निबंध लिखे हैं जिनमें उच्चकोटि की विद्वत्ता झलकती है। **माखनलाल चतुर्वेदी** ने भावप्रधान निबंधों की रचना की है, किंतु उनमें गंभीर चिंतन भी विद्यमान है। उनके निबंधों में प्रयुक्त भाषा-शैली लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि शुक्ल युग हिंदी निबंध के विकास का स्वर्ण युग है। इस युग में निबंधों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ साथ ही उसमें गंभीरता एवं सूक्ष्मता भी आई। ये निबंध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं। इन विषयों की मौलिक समस्याओं को बड़ी सूक्ष्म पकड़ के साथ प्रस्तुत किया गया, किंतु निबंधों में भावुकता एवं आत्मीयता का तत्व भी पर्याप्त मात्रा में बना रहा। निजी अनुभूतियों एवं वैयक्तिक भावनाओं का प्रकाशन भी शुक्ल युग के निबंधकारों ने खूब किया है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह युग द्विवेदी युग की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस युग की महानतम उपलब्धि हैं और वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जा सकते हैं।**

4. शुक्लोत्तर-युग (1940 ई. के उपरांत)

शुक्लजी ने हिंदी निबंध को जो नए आयाम दिए उससे हिंदी निबंध का परवर्ती काल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय क्षेत्र, वैचारिकता, भाषा-शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंध ने नई दिशाएँ खोजीं। इस काल में न केवल समीक्षात्मक और विचारात्मक निबंधों की ही रचना हुई अपितु 'ललित निबंधों' की भी पर्याप्त रचना हुई।

नोट

शुक्लोत्तर निबंधकारों में **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र, प्रभाकर माचवे, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'** आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी शुक्लजी की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख निबंधकार हैं। उनके निबंध **'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', 'नए प्रश्न'** में संकलित हैं। **वैयक्तिकता एवं व्यंग्य विनोद की झलक भी उनके निबंधों में पर्याप्त मात्रा** में उपलब्ध है। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** शुक्लोत्तर युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जा सकते हैं। इनके प्रकाशित निबंध संग्रहों में **'कल्पलता', 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार-प्रवाह', 'विचार और वितर्क'** उल्लेखनीय हैं। इनके निबंधों में विषय और व्यक्ति का संतुलित समन्वय तो है ही साथ ही उनकी विद्वता एवं विषय की गहरी पकड़ भी परिलक्षित होती है। द्विवेदीजी के निबंधों का विषय क्षेत्र व्यापक है। उनमें संस्कृति एवं परंपरागत ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ युगीन प्रवृत्तियों एवं समस्याओं को भी सम्मिलित किया गया है। द्विवेदीजी की शैली विषय के अनुरूप परिवर्तित होती रही है। आधुनिक युग की विकृतियों का चित्रण करते समय वे प्राय: हास्य-व्यंग्यमयी शैली का प्रयोग करते हैं, जबकि कालिदासयुगीन वातावरण का चित्रण करते समय शब्दावली संस्कृत गर्भित हो गई है। उनके निबंधों में भाषा की लय संस्कृत तत्सम शब्दों से गुम्फित पदावली के साथ-साथ विषयांतर एवं विभिन्न संदर्भ जुड़े हुए हैं। उन्होंने शोधपरक, समीक्षात्मक निबंध भी लिखे हैं और ललित निबंधों की रचना भी की है।

शांतिप्रिय द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के प्रमुख समीक्षात्मक निबंध लेखक के रूप में जाने जाते हैं। **'संचारिणी', 'युग और साहित्य', 'धरातल', 'आधान', 'साकल्य', 'वृंत और विकास'** उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इन निबंध संकलनों का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। शैली की दृष्टि से भी ये निबंध सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि **रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने भी निबंध रचना में योगदान किया है। **'अर्धनारीश्वर', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य'** उनके निबंध संग्रहों के नाम हैं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के निबंध 'पुरातत्व' एवं भारतीय संस्कृति से संबंधित हैं। **'पृथ्वी पुत्र', 'मातृभूमि', 'कला और संस्कृति'** आदि उनके प्रमुख निबंध संकलन हैं। इन निबंधों में एक ओर तो निबंधकार के गंभीर अध्ययन की झलक मिलती है तो दूसरी ओर चिंतन की मौलिकता एवं शैली की विशिष्टता भी झलकती है।

डॉ. नगेंद्र शुक्लोत्तर युग के एक अन्य प्रमुख निबंधकार हैं। उनके प्रमुख निबंध संग्रहों के नाम हैं–**'विचार और विवेचन', 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण'** आदि। यद्यपि उनके निबंधों में विषय की प्रधानता है तथापि उनमें लेखक के व्यक्तित्व का समावेश भी हुआ है। गूढ़-गंभीर विषयों को रोचक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करना जिससे पाठक की समझ में बात पूरी तरह आ जाए, नगेंद्रजी की प्रमुख विशेषता है। साहित्य और कला जैसे विषयों पर भी उनके निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। **'कला, कल्पना और साहित्य'** तथा **'साहित्य की झांकी'** में उन्होंने उत्कृष्ट निबंध प्रस्तुत किए हैं। आलोचनात्मक निबंधों के लेखन में भी डॉ. नगेंद्र ने असाधारण योगदान किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिशील निबंधकार माने जाते हैं जिन्होंने व्यंग्यपूर्ण शैली में गंभीर विचारों को निबंध का रूप दिया है। **'प्रगति और परंपरा'** तथा **'प्रगतिशील साहित्य'** की समस्याओं में उन्होंने विषय का प्रतिपादन 'प्रगतिवादी' दृष्टिकोण से किया है। साहित्य, कला, संस्कृति और राजनीति पर भी उन्होंने अपने विचार निबंध रूप में प्रस्तुत किए हैं। इन विषयों पर संकलित निबंध **'संस्कृति और साहित्य', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य'** में संग्रहित किए गए हैं।

इनके अतिरिक्त इस काल में **डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, दिनेश नंदिनी डालमिया, विनयमोहन शर्मा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', नलिन विलोचन शर्मा, प्रभाकर माचवे** आदि अनेक निबंधकारों ने निबंध रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। संस्मरण, रेखाचित्र आदि निबंध से मिलती-जुलती विधाओं में भी बहुत कुछ सामग्री निबंध जैसी प्राप्त होती है। वस्तुत: वर्तमान युग समीक्षा का युग है अत: प्राय: सभी निबंधकारों ने समीक्षक की भूमिका का निर्वाह करते हुए निबंध लिखे हैं।

नोट

> *क्या आप जानते हैं* हिंदी निबंध साहित्य ने बहुत कम समय में आशातीत प्रगति की है। भारतेंदु युग से लेकर वर्तमान युग तक हिंदी निबंध ने क्रमश: प्रौढ़ता प्राप्त की है और निबंधों का विविधमुखी विकास हुआ है।

आज हिंदी निबंध में विषय-वैविध्य है, विविध शैलियाँ हैं और गंभीर चिंतन-मनन है, किंतु उसमें व्यक्तित्व का प्रकाशन कम होता जा रहा है। हास्य-व्यंग्य और रोचकता में भी ह्रास हो रहा है। परिणामत: वे शुष्क, नीरस एवं दुरूह बनते जा रहे हैं। आज के निबंधों में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा हो रही है तथा कुछ निबंधकार तो केवल अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए पाश्चात्य लेखकों के मतों को बिना पचाए हुए व्यक्त करने में ही अपनी शान समझ रहे हैं। आज निबंध में वैयक्तिकता का तत्व समाप्त होता जा रहा है। हिंदी निबंध को आज भी नए आयामों की खोज है साथ ही नवीनता की भी खोज है तभी वह अपने अस्तित्व को बनाए रख पाने में सफल हो सकेगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... निबंधकारों ने साधारण-से साधारण और गंभीर विषयों पर निबंधों की रचना की।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने .... में जो निबंध संकलित किए हैं उनसे हिंदी निबंध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है।
3. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी शुक्लजी की .... को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख निबंधकार है।

10.1.1 हिंदी निबंधों के प्रकार

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने निबंध के पाँच प्रकार (भेद) बताए हैं–

1. विचारात्मक निबंध
2. भावात्मक निबंध
3. वर्णनात्मक निबंध
4. विवरणात्मक निबंध
5. आत्मपरक निबंध

1. **विचारात्मक निबंध–**गंभीर विषयों पर चिंतन-मनन करके लिखे गए निबंध विचारात्मक निबंध होते हैं। इनमें बुद्धि की प्रधानता होती है और विचारसूत्रों की प्रमुखता रहती है। लेखक का हृदय पक्ष दबा रहता है तथा बुद्धि पक्ष की प्रबलता इन निबंधों में दिखाई पड़ती है। निबंधों में विचारों की एक शृंखला रहती है और सारे विचार पूर्वापर संबंध से एक सूत्र में जुड़े रहते हैं। निबंधों में कहीं व्यास शैली, कहीं समास शैली और कहीं सूत्र शैली अपनाई जाती है। भाषा विषय के अनुसार प्रौढ़, गंभीर एवं संस्कृतनिष्ठ रहती है। हिंदी में इस प्रकार के निबंध लेखक हैं–आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र आदि।
2. **भावात्मक निबंध–**भावात्मक निबंधों में भाव पक्ष अर्थात् हृदय पक्ष की प्रधानता होती है। भावात्मक निबंध लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। हिंदी में लिखे गए वे निबंध जिनमें वैयक्तिक संस्पर्श है, संस्मरणात्मक तथ्य दिए गए हैं अथवा जिनमें हास्य-व्यंग्य की प्रधानता है, इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंधों में से कुछ इसी कोटि के हैं। ऐसे निबंधों के लिए ही उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है–''यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है।'' उनके 'चिंतामणि' में संकलित

नोट

निबंध 'उत्साह', 'करुणा' आदि इसी प्रकार के हैं। हिंदी में भावात्मक निबंधकारों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निबंधकार हैं—अध्यापक पूर्णसिंह। उनके निबंध आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, पवित्रता आदि इसी प्रकार के भावात्मक निबंध हैं। भावात्मक निबंधों में हृदय पक्ष की प्रधानता रहती है तथा हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन का तत्व प्रमुख होता है। ये निबंध लेखक के संवेदनशील हृदय का परिचय देते हैं। समाज में व्याप्त राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक विद्रूपताओं को भी इस प्रकार के निबंधों के माध्यम से उजागर किया जाता है। हिंदी निबंधकारों में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, गुलेरी जी, पद्मसिंह शर्मा, ब्रजनंदन सहाय, रायकृष्ण दास इसी प्रकार के निबंधकार हैं।

3. **वर्णनात्मक निबंध**—वर्णनात्मक निबंधों में निबंधकार किसी घटना, तथ्य, दृश्य, वस्तु, स्थान आदि का क्रमबद्ध वर्णन इस प्रकार करता है कि पाठक के समक्ष वह दृश्य या घटना साकार हो जाती है। वर्णनात्मक निबंधों में बौद्धिकता एवं भावुकता का सामंजस्य रहता है। भाषा सरल एवं सुबोध रहती है तथा लेखक का ध्यान तथ्य निरूपण पर अधिक रहता है, कल्पना पर कम। हिंदी में बालकृष्ण भट्ट, बाबू गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर एवं रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध इसी श्रेणी के हैं।
4. **विवरणात्मक निबंध**—विवरणात्मक निबंधों में ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक घटनाओं का विवरण दिया जाता है तथा उनमें कल्पना का भी यथोचित समावेश होता है। वर्णन संवेदनशील एवं मार्मिक होते हैं तथा उनमें क्रमबद्धता पर विशेष बल नहीं होता। वर्णन का संबंध वर्तमान से होता है जबकि विवरण का भूतकाल से। अतः इनमें संभावना पर विशेष बल होता है। हिंदी के प्रारंभिक निबंधकार—भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, शिवपूजन सहाय आदि ने विवरणात्मक निबंध लिखे हैं।

टास्क भावात्मक निबंध तथा वर्णनात्मक निबंध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5. **आत्मपरक निबंध**—यद्यपि हर प्रकार के निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है तथापि 'आत्मपरक निबंधों' में लेखक का व्यक्तित्व पूरी तरह उभरकर सामने आता है। वर्तमान युग में लिखे जाने वाले ललित निबंध भी आत्मपरक निबंधों की कोटि में आते हैं। ललित निबंधों में लालित्य का समावेश भाषा, विषयवस्तु, शैली-शिल्प आदि में किया जाता है। लेखक का पांडित्य, लोक संपृक्ति एवं भाषागत सौंदर्य ऐसे निबंधों में साफ झलकता है। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय** हिंदी के प्रमुख ललित निबंधकार हैं। इनके अतिरिक्त **डॉ. विवेकी राय, देवेंद्र सत्यार्थी** ने भी आत्मपरक निबंधों की रचना की है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने निबंध के कितने भेद बताएं है?
   (क) दस (ख) बारह
   (ग) पाँच (घ) दो
5. .... लेखक की संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं।
   (क) विचारात्मक निबंध (ख) भावात्मक निबंध
   (ग) वर्णनात्मक निबंध (घ) विवरणात्मक निबंध
6. वर्तमान युग में लिखे जाने वाले ललित निबंध भी .... निबंधों की कोटि में आते हैं।
   (क) आत्मपरक (ख) विवरणात्मक निबंध
   (ग) वर्णनात्मक निबंध (घ) भावात्मक निबंध

नोट

10.1.2 हिंदी के प्रमुख निबंधकार

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941 ई.)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म 1884 ई. में बस्ती जिले के अगौना नामक ग्राम में हुआ था। भले ही उनकी औपचारिक शिक्षा मैट्रिक तक ही थी, परंतु स्वाध्याय से उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। **बाबू श्यामसुंदरदास ने इन्हें 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन के लिए 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा'** से संबद्ध कर लिया तथा इस कार्य को अत्यंत निष्ठा एवं योग्यता से संपन्न किया। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' इसी की भूमिका हेतु लिखा गया। आपने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया।

शुक्लजी एक उच्चकोटि के निबंधकार तथा युग प्रवर्तक आलोचक रहे हैं। समीक्षक, निबंधकार एवं हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक के रूप में आपने मानदंड स्थापित किए हैं। सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाएँ आपने लिखी हैं। शुक्लजी के निबंध **चिंतामणी** भाग-1 एवं भाग-2 में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त आपके निबंध **'विचारवीथी'** में भी संकलित हैं। **'रस मीमांसा'** भी आपका निबंध संकलन है। सूरदास, तुलसीदास एवं जायसी के काव्य पर विस्तृत समीक्षाएँ आपने प्रस्तुत कीं। सूरदास के भ्रमरगीत का संपादन करने के साथ-साथ शुक्लजी ने जायसी ग्रंथावली का संपादन एक विस्तृत भूमिका के साथ किया। **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (1929 ई.) आपके द्वारा लिखा गया श्रेष्ठ ग्रंथ है, जिसकी मान्यताएँ आज भी यथावत ग्रहण की जाती है।

शुक्लजी की भाषा शुद्ध, परिष्कृत एवं मानक हिंदी है। भाषा पर उनका विलक्षण अधिकार है। उनका वाक्य गठन बेजोड़ है जिसमें से एक शब्द को भी इधर से उधर कर पाना संभव नहीं है। उनकी निबंध शैली विषय के अनुरूप बदलती है। वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, भावात्मक, आलोचनात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक, अलंकारित आदि अनेक शैलियों का प्रयोग उनके अलंकारिक निबंधों में हुआ है।

शुक्लजी के निबंध हिंदी निबंध कला के निष्कर्ष हैं। उनमें हृदय एवं बुद्धि का संतुलित समन्वय है। चिंतामणि में संकलित निबंध दो प्रकार के हैं—भाव या मनोविकार संबंधी निबंध तथा समीक्षात्मक निबंध। शुक्लजी अपने विचारों को इस कुशलता के साथ व्यक्त करते हैं कि पाठकों को उनके निष्कर्षों से सहमत होना ही पड़ता है। परिष्कृत, प्रांजल साहित्यिक भाषा का प्रयोग करने के साथ-साथ उनका शब्द चयन, वाक्य विन्यास एवं सादृश्य विधान भी अनुपम है। उनके निबंध 'शैली ही व्यक्तित्व है' के उदाहरण माने जा सकते हैं। इन निबंधों में शुक्ल जी का व्यक्तित्व पूर्णत: आत्मसात दिखाई पड़ता है।

2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (1907-1979 ई.)

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी के सांस्कृतिक एवं ललित निबंधकार के रूप में जाने जाते हैं। वे हिंदी के महान गद्य लेखकों में से एक हैं। उनका अध्ययन क्षेत्र व्यापक एवं विशद था। हिंदी और संस्कृत के महान विद्वान आचार्य द्विवेदी की ख्याति एक उपन्यासकार, निबंधकार, समीक्षक के रूप में रही है। आपके लिखे निबंधों के संकलन इस प्रकार हैं—**अशोक के फूल** (1948), **विचार और वितर्क** (1949), **कल्पलता** (1957), **विचार प्रवाह** (1959), **कुटज** और **आलोक पर्व**।

इन निबंधों के अतिरिक्त आपने **हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य का आदिकाल, हिंदी साहित्य** नामक इतिहास संबंधी ग्रंथ लिखे। आपके आलोचनात्मक ग्रंथों में **सूरदास, कबीर, नाथ संप्रदाय, कालिदास की लालित्य योजना, मृत्युंजय रवींद्र, साहित्य का मर्म** नामक कृतियों के नाम लिए जा सकते हैं। धर्म एवं संस्कृति पर भी आपने लिखा है। **प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, मध्यकालीन धर्म साधना, सहज साधना** आपकी धर्म एवं कला संबंधी कृतियाँ हैं।

नोट्स शुक्ल जी एक उच्चकोटि के निबंधकार तथा युग प्रवर्तक आलोचक रहे हैं।

ललित निबंधकार के रूप में भी द्विवेदी जी का नाम आदर से लिया जाता है। कुटज, शिरीष के फूल, अशोक के फूल आपके ऐसे ही निबंध हैं। आपकी विद्वता, लोकजीवन के प्रति आस्था एवं भारत की सांस्कृतिक विरासत इन निबंधों में साफ झलकती है।

द्विवेदी जी के निबंधों में पांडित्य साफ झलकता है। इतिहास, पुराण, साहित्य से गंभीर तथ्य उठाकर उन्हें समसामयिकता से जोड़ देना उनके निबंधों की विशिष्टता है। द्विवेदी जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिंदी है, जो अपनी समाज बहुला प्रवृत्ति के कारण कहीं-कहीं क्लिष्ट हो गई है। ललित निबंधों में वे विचारात्मक, व्याख्यात्मक, शोधपरक शैली का प्रयोग करते हैं। द्विवेदी जी आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जा सकते हैं।

3. बाबू गुलाबराय (1888-1963 ई.)

बहुमुखी प्रतिभा के धनी बाबू गुलाबराय एक सफल अध्यापक, गंभीर चिंतक, मनीषी दार्शनिक, जागरूक संपादक, श्रेष्ठ समीक्षक एवं सफल निबंधकार थे। गुलाबराय जी के प्रमुख निबंध संकलन हैं–**मेरे निबंध, मेरी असफलताएँ** और **फिर निराशा क्यों?** दर्शन के प्रकांड पंडित और साहित्य मर्मज्ञ बाबू गुलाबराय युगानुकूल विचारधारा को आत्मसात् कर साहित्य सर्जना करने वाले निबंधकार थे। विचार और भाषा शैली की दृष्टि से वे शुक्ल परंपरा के निबंधकार हैं। उनकी भाषा में संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के प्रचलित शब्दों का समावेश है। आलोचनात्मक निबंधों की भाषा शुद्ध परिनिष्ठित हिंदी है। आवश्यकतानुसार लोकोक्तियों, मुहावरों एवं उद्धरणों का प्रयोग भी वे अपनी भाषा में करते हैं। आत्मपरक निबंधों में उनकी विनोद वृत्ति झलकती दिखाई देती है। शैली की विविधता भी उनके निबंधों में परिलक्षित देती है। शैली की विविधता भी उनके निबंधों में परिलक्षित होती है। भावात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, हास्यव्यंग्यपूर्ण, आलंकारिक शैलियों के प्रयोग विषय के अनुरूप उनके निबंधों में हुआ है।

बाबू गुलाबराय जी आत्मपरक निबंधों के सृजक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। डॉ. विजयेंद्र स्नातक के शब्दों में–**''बाबूजी साहित्यशास्त्र के सफल अध्यापक हैं, आचार्य नहीं। अध्यापक की सफलता इसमें है कि वह पक्ष-विपक्ष के विभिन्न मत-मतांतरों को एकत्र करके एक चातुर्य से अध्येता के समक्ष प्रस्तुत करे जिससे उनकी ज्ञान वृद्धि के साथ जिज्ञासा शांत हो सके और वह दुरूह एवं क्लिष्ट प्रसंगों को सुगमतापूर्वक हृदयंगम कर सके। इस कला में उन्हें अद्‌भूत सफलता मिली है।''**

वैयक्तिक निबंधों के जन्मदाता के रूप में गुलाबराय जी का योगदान हिंदी निबंध साहित्य में सदैव स्मरणीय रहेगा।

4. कुबेरनाथ राय (1935-2002 ई.)

ललित निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध कुबेरनाथ के प्रमुख निबंध संकलन हैं–**रस आखेटक, प्रिया नीलकंठी, विषादयोग पर्ण मुकुट, लौह मृदंग, गंधमादन, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु, त्रेता का वृहद साम।** उन्होंने वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक निबंध भी लिखे हैं। कुबेरनाथ जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली से युक्त परिनिष्ठित, प्रांजल हिंदी है। शब्द चयन में वे पर्याप्त सजग हैं तथा लोकजीवन के शब्दों का प्रयोग भी निबंधों में करते हैं।

आपके निबंधों में चिंतन का गाम्भीर्य, आत्म-व्यंजकता बहुलता, लोकजीवन की अभिव्यक्ति, रागात्मकता, बौद्धिकता, आदि का समन्वय दिखाई पड़ता है। इन निबंधों के विषय लोकजीवन एवं लोक संस्कृति से लिए गए हैं। सामयिक युग चेतना भी इन निबंधों में अनिवार्य रूप से समाहित रहती है। कल्पना के बल पर वे सामान्य विषयों को भी भारतीय संस्कृति से संबद्ध कर देने में कुशल हैं। इनके निबंधों में समाज, राजनीति का समसामयिक स्वरूप भी दिखाई देता है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए संस्कृत के उद्धरण वे प्रायः देते रहते हैं।

कुबेरनाथ जी के निबंधों में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय है। समकालीन लोकजीवन एवं ग्रामीण संस्कृति उनके निबंधों में देखी जा सकती है। हृदय और बुद्धि का समन्वय भी इन निबंधों में स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। तत्सम भाषा, सुगठित वाक्य विन्यास, सामाजिक पदावली आपके निबंधों की विशेषताएँ हैं। आवश्यकतानुरूप शैली का स्वरूप भी आपके निबंधों में बदलता रहता है।

नोट

5. विद्यानिवास मिश्र

व्यक्ति व्यंजक निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था एवं अद्‌भुत पांडित्य के साथ-साथ भावुकता उनके निबंधों में स्थान-स्थान पर झलकती है। एक ललित निबंधकार के रूप में भी मिश्रजी ने हिंदी पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। आपकी निबंध रचनाओं में प्रमुख हैं–

1. छितवन की छांह, 2. कदम की फूली डाल, 3. तुम चंदन हम पानी, 4. आंगन का पंछी और बंजारा मन, 5. मैंने सिल पहुँचाई, 6. वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, 7. मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, 8. हल्दी-दूब, 9. कंटीले तारों के आर-पार, 10. कौन तू फुलवा बीनन हारी।

इनके अतिरिक्त आपने अनेक समीक्षा ग्रंथ भी लिखे हैं यथा–**हिंदी शब्द संपदा, पाणिनीय व्याकरण का विश्लेषण पद्धति, रीति विज्ञान।**

मिश्र जी के निबंधों में लोकजीवन एवं ग्रामीण समाज मुखरित हो उठा है। किसी भी प्रसंग को लेकर वे उसे ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्यिक संदर्भों से युक्त कर लोकजीवन से जोड़ देने की कला में पारंगत हैं। उनके निबंधों में लोकतत्व का समावेश है। विशेष रूप से भोजपुरी लोकजीवन उनके निबंध में समाया हुआ है।

आपके ललित निबंधों में भावात्मकता के साथ-साथ लोक संस्कृति की छटा विद्यमान है। इनके निबंधों में प्रसादमयी भाषा-शैली, कथात्मक चित्रों की अधिकता और विवेचना की तथ्यपूर्ण गंभीरता दिखाई देती है। अज्ञेय के अनुसार–''विद्यानिवास जी ने संस्कृत साहित्य को मथकर उसका नवनीत चखा है और लोकवाणी की गौरव ग्रंथ से सदा स्फूर्ति भी पाते रहे हैं। ललित निबंध वह लिखते हैं तो लालित्य के किसी मोह से नहीं, इसलिए कि गहरी, तीखी, चुनौती भरी बात भी एक बेदाग और निर्दोष बल्कि कौतुकभरी सहजता से कह जाते हैं।''

मिश्रजी के निबंधों को भावात्मक, विचारात्मक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक एवं संस्मरणात्मक–इन पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, किंतु उसमें उर्दू, अंग्रेजी एवं ग्रामीण जीवन के शब्द भी मिलते हैं। शैली की विविधता उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता है। आलंकारिक शैली, तरंग शैली, व्यंग्यपूर्ण शैली, व्याख्यात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली उनके निबंधों में है।

मिश्र जी ललित निबंधकारों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। साहित्य के साथ-साथ भाषा विज्ञान के भी आप पंडित है। उन्होंने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वे प्राचीन संस्कृत, साहित्य को समसामयिक दृष्टि से देखते हैं और उसमें से मानवता के मोती निकाल लाते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद जी का प्रभाव उनके निबंधों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

6. हरिशंकर परसाई (1924-1995 ई.)

हिंदी के श्रेष्ठ व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई ने समाज, राजनीति, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों को अपनी व्यंग्य रचनाओं में व्यक्त किया है। उनके व्यंग्य अत्यंत चुटीले एवं प्रभावकारी होते हैं जिनका उद्देश्य विसंगति को दूर करते हुए व्यवस्था में सुधार लाना हैं सामाजिक विषयों पर लिखी गई उनकी व्यंग्य रचनाओं ने पाठकों को बहुत कुछ सोचने-विचारने पर मजबूर किया है। यद्यपि परसाई जी ने उपन्यास एवं कहानियाँ भी लिखीं, किंतु उन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि अपनी व्यंग्य रचनाओं से ही मिली है।

क्या आप जानते हैं परसाईजी हिंदी के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य लेखक माने जाते हैं। उन्होंने जीवन के जिन क्षेत्रों में भी विसंगतियाँ देखीं उन पर करारा प्रहार किया। स्थितियों के प्रति क्षोभ और आक्रोश जगाकर वे पाठकों को सोचने के लिए विवश कर देते हैं।

इस प्रकार आपकी रचनाएँ एक ओर तो पाठकों का मनोरंजन करती हैं और दूसरी ओर सुधार के लिए वातावरण तैयार कर साहित्य की उपयोगिता को बढ़ाती हैं। निश्चित रूप से आपका व्यंग्य लेखन सोद्देश्य एवं सार्थक है।

आपने अनेक हास्य-व्यंग्य संकलन लिखे हैं जिनमें प्रमुख निम्न हैं–

1. विकलांग श्रद्धा का दौर, 2. सदाचार का ताबीज, 3. बेईमानी का परत, 4. तब की बात और थी, 5. शिकायत मुझे भी है, 6. ठिठुरता हुआ गणतंत्र, 7. वैष्णव की फिसलन, 8. पगडंडियों का जमाना, 9. निठल्ले की कहानी, 10. सुनो भाई साधो, 11. और अंत में, 12. भूत के पांव पीछे।

परसाईजी की रचनाओं में व्यंग्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी रचनाओं में बोलचाल के शब्दों, तत्सम शब्दों तथा विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। अर्थवत्ता की दृष्टि से इनका शब्द-चयन अत्यंत सार्थक है। लक्षणा एवं व्यंजना का कुशल प्रयोग पाठकों को प्रभावित करता है। भाषा के प्रवाह के लिए इन्होंने यत्र तत्र मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है परसाई जी सरल भाषा के पक्षपाती है। उनके वाक्य छोटे-छोटे एवं व्यंग्य प्रधान हैं। संस्कृत शब्दों के साथ-साथ उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी वे पर्याप्त मात्रा में करते हैं।

उनकी व्यंग्य रचनाओं में हास्य व्यंग्य शैली के साथ-साथ प्रतीकात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली, सूत्रशैली आदि का प्रयोग भी हुआ है। भाषा में लाक्षणिकता का प्रयोग भी वे करते हैं।

परसाई जी ने समाज, राजनीति, धर्म के क्षेत्र में व्याप्त पाखंड पर करारी चोट की है। उनकी व्यंग्य रचनाएँ हिंदी जगत में आदर से पढ़ी जाती हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों पर उन्होंने करारा प्रहार कर चेतना को झकझोरने का स्तुत्य प्रयास किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया।
8. बाबू गुलाबराय जी विवरणात्मक निबंधों के सृजक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।
9. सामाजिक विषयों पर लिखी गई हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचनाओं ने पाठकों को बहुत कुछ सोचने-विचारने पर मजबूर किया है।

10.2 सारांश (Summary)

- भारतेंदु युग के निबंधकारों ने साधारण-से-साधारण और गंभीर विषयों पर निबंधों की रचना की। सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों पर स्वच्छंद रूप से विचार व्यक्त करते हुए इन्होंने हिंदी निबंध को विकास पथ पर अग्रसर किया।
- भारतेंदु युग के निबंधकारों में विषय की व्यापकता एवं विविधता है। वे निबंध-लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी हैं अत: उनमें वैयक्तिकता के साथ-साथ सामाजिकता का भी समावेश है। इनकी शैली में हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन की प्रधानता है। इन निबंधों का प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक विषमता और सामाजिक कुरीतियों पर चोट करना रहा है।
- भारतेंदु युग (द्विवेदी युग) के निबंधकारों ने भावात्मक, विचारात्मक, शोधपरक सभी शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से ये निबंध निश्चित रूप से भारतेंदुयुगीन निबंधों से अधिक प्रौढ़ हैं, क्योंकि इनकी भाषा व्याकरणसम्मत, प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।
- शुक्ल युग हिंदी निबंध के विकास का स्वर्ण युग है। इस युग में निबंधों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ साथ ही उसमें गंभीरता एवं सूक्ष्मता भी आई। ये निबंध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं। इन विषयों की मौलिक समस्याओं को बड़ी सूक्ष्म पकड़ के साथ प्रस्तुत किया गया।

नोट

10.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **मनोरंजन**—खुशी मनाना, मौज करना
2. **प्रकाशित**—कोई पत्र-पत्रिका छापना
3. **भावात्मक निबंध**—ऐसे निबंध जिनमें हृदय पक्ष की प्रधानता हो, संवेदना हो

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी निबंध का विकास तथा हिंदी निबंध के विकास के चार कालों का उल्लेख कीजिए।
2. हिंदी निबंध कितने प्रकार के हैं? संक्षेप में इनका वर्णन कीजिए।
3. हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. भारतेंदु युग	2. चिंतामणि	3. परंपरा
4. (ग)	5. (ग)	6. (क)
7. सत्य	8. असत्य	9. सत्य

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*

नोट

इकाई–11 : हिंदी आलोचना का विकास एवं प्रमुख आलोचक

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
11.1 हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक और विकास
11.1.1 हिंदी आलोचना का शुक्ल-पूर्व युग
11.1.2 शुक्लयुगीन अन्य आलोचक
11.1.3 हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक
11.2 सारांश (Summary)
11.3 शब्दकोश (Keywords)
11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिंदी आलोचना को समझने में।
- हिंदी आलोचना का शुक्ल-पूर्व युग जानने में।
- शुक्लयुगीन अन्य आलोचकों के विषय में जानने में।
- हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचकों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी आलोचना तथा हिंदी की सैद्धांतिक समीक्षा औपचारिक रूप से तो भारतेंदु युग में शुरू हुई किंतु इससे पूर्व भक्तिकाल और रीतिकाल में ही समीक्षा के बीज दिखाई पड़ते हैं। हिंदी आलोचना का वास्तविक आरंभ भारतेंदु युग से ही माना जा सकता है। द्विवेदीयुगीन आलोचना भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित हुई तथा शुक्लयुगीन हिंदी आलोचना में केंद्रीय समीक्षक आचार्य शुक्ल हैं।

11.1 हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक और विकास

11.1.1 हिंदी आलोचना का शुक्ल-पूर्व युग

हिंदी की सैद्धांतिक समीक्षा औपचारिक रूप से तो भारतेंदु युग में शुरू हुई किंतु इससे पूर्व भक्तिकाल और रीतिकाल में ही समीक्षा के बीज दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का कथन **'कीरत भनिति भूत भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई'** एक प्रकार से काव्य प्रयोजन का सैद्धांतिक विवेचन है, तो कबीर का कथन **'संस्किरत**

नोट

है कूप जल, भाषा बहता नीर' काव्य भाषा पर एक सैद्धांतिक प्रतिमान की प्रस्तुति है। रीतिकाल के रीतिमुक्त कवि घनानंद जब **'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहिं तो मोरे कवित्त बनावत'** कहते हैं तो रचनाकार और रचना के गहन आंतरिक संबंध की स्थापना करते हैं और ठाकुर जब **'डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कवित कीबो खेल करि जानो है'** कहते हैं तो कविता में अलंकारवाद का खंडन करते हैं। रीतिवादी आचार्य कवियों ने तो लक्षण ग्रंथ परंपरा में चंद्रालोक कथा कुवलयानंद की परंपरा का प्रस्तुतीकरण किया ही है।

भारतेंदु-युगीन आलोचना

इन आरंभिक संकेतों के बावजूद हिंदी आलोचना का वास्तविक आरंभ भारतेंदु युग से ही माना जा सकता है। भारतेंदु-युगीन आलोचना की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) इस काल में कई सैद्धांतिक आलोचनाएँ की गईं, जैसे—भारतेंदु का 'नाटक' निबंध इस काल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

(ii) इस काल में आलोचना मुख्यत: पत्रकारिता के माध्यम से हुई। इस दृष्टि से भारतेंदु के पत्र 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', 'कवि वचन सुधा' के साथ-साथ बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप', प्रताप नारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' और चौधरी बद्रीनारायण प्रेमघन का 'आनंद कादंबिनी' इस काल के प्रमुख पत्र हैं।

(iii) इस काल में व्यावहारिक समीक्षाओं का भी चलन था जिसकी शुरुआत **'हिंदी प्रदीप' में 'सच्ची समालोचना' नामक** स्तंभ से हुई। इस स्तंभ में लाला श्रीनिवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की समीक्षा हुई, जो हिंदी की पहली व्यावहारिक समीक्षा मानी जाती है। इसके बाद तो इसमें भट्ट जी ने 'नीलदेवी', 'परीक्षागुरु' आदि रचनाओं की भी व्यावहारिक समीक्षाएँ प्रस्तुत कीं।

(iv) इसी युग में साहित्येतिहास के दो प्रमुख ग्रंथ लिखे गये जिनमें सीमित मात्रा में आलोचनात्मक तत्व विद्यमान थे—प्रथम शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' तथा द्वितीय जार्ज ग्रियर्सन कृत ''द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नोर्दर्न हिंदुस्तान''।

(v) इस काल की हिंदी समीक्षा में उपयोगितावादी, नैतिक व राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रमुख रूप से दिखता है, अत: रूपवादी समीक्षाएँ यहाँ नहीं हुईं।

द्विवेदी-युगीन आलोचना

(i) द्विवेदीयुगीन आलोचना भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित हुई। इस काल में 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'माधुरी', 'वीणा', 'विशाल भारत' और 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

(ii) **महावीर प्रसाद द्विवेदी इस युग** के सर्वाधिक प्रसिद्ध आलोचक रहे जिनकी आलोचनाओं का संग्रह **''आलोचना समुच्चय''** के नाम से प्रकाशित हुआ। उन्होंने सैद्धांतिक पक्ष में इतिवृत्तात्मकता और नैतिक आदर्शवादी मान्यताओं को अत्यधिक महत्त्व दिया और रीतिवादी कवियों को गौण सिद्ध करते हुए कालिदास, भवभूति, सूर, तुलसी, भारतेंदु और मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं के महत्त्व को प्रकाशित किया। उनकी भाषाई आलोचनाओं ने खड़ी बोली और ब्रज के भाषाई द्वैत को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(iii) इस युग में एक महत्त्वपूर्ण साहित्येतिहास ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ—'मिश्रबंधु विनोद' जिसमें आलोचनात्मक पक्ष अत्यंत विरल होते हुए भी अनुपस्थित नहीं है।

(iv) तुलनात्मक आलोचना इस काल की एक महत्त्वपूर्ण शैली है जिसकी शुरुआत **पंडित पद्म सिंह शर्मा** ने **'बिहारी' और 'सादी'** की तुलना से की। **इसके बाद मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'हिंदी नवरत्न'** में तुलनात्मक आलोचना को महत्त्व दिया। आगे चलकर लाला **भगवानदीन और कृष्ण बिहारी मिश्र ने** 'देव' और 'बिहारी' को एक-दूसरे से बड़ा कवि सिद्ध करने का प्रयास किया।

शुक्लयुगीन आलोचना

नोट

शुक्लयुगीन हिंदी आलोचना में केंद्रीय समीक्षक आचार्य शुक्ल हैं, यद्यपि उनके साथ-साथ बाबू गुलाब राय, श्याम सुंदर दास आदि समीक्षक भी आलोचना क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं। लक्ष्मी नारायण सुधांशु और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसी काल के अन्य आलोचक हैं। इस युग में छायावाद के कवियों ने भी छायावाद के पक्ष में कई आलोचनाएँ लिखीं, जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

1. आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्धति

आचार्य शुक्ल हिंदी समीक्षा के केंद्रीय पुरुष हैं, जिनकी समीक्षा पद्धति कई दृष्टियों से संश्लिष्ट है। उन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों समीक्षाओं पर बल दिया।

सैद्धांतिक समीक्षा

शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि जिस प्रविधि पर आधारित है, उसे तार्किक, विश्लेषणात्मक और निगमनात्मक विधि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी साहित्येतिहास दार्शनिक **तेन के 'प्रत्यक्षवाद' या 'विधेयवाद' का स्पष्ट प्रभाव उनकी प्रविधि पर है** जिसमें किसी रचना का मूल्यांकन जाति, वातावरण तथा क्षण इन तीन तत्वों के आधार पर किया जाता है।

नोट्स शुक्ल जी की सैद्धांतिक समीक्षा में रसवाद और लोकमंगलवाद साथ-साथ शामिल हैं।

उन्होंने रसवाद की नई दृष्टि से व्याख्या अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'रस-मीमांसा'** में की और कहा–''**लोकहृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।**'' पारंपरिक रसवादी विवेचन, जो आरंभ में व्यापक था किंतु पंडितराज जगन्नाथ तक आते-आते संकीर्ण हो गया था, उसे आचार्य शुक्ल ने पुनः लोकमंगलवाद से जोड़ा। इसके अतिरिक्त, उन्होंने रस विवेचन में साधारणीकरण के सिद्धांत को अत्यधिक महत्त्व दिया। साधारणीकरण की व्याख्या में उन्होंने एक नयी अवधारणा 'रसात्मकता की मध्यम कोटि' का भी ज़िक्र किया, जो इस बात की व्याख्या करता है कि कभी-कभी कुछ रचनाओं में नायक के विरोधी पक्ष के प्रति सहानुभूति क्यों उत्पन्न होने लगती है।

उन्होंने अपनी अन्य सैद्धांतिक मान्यताओं को 'कविता क्या है' तथा 'काव्य में रहस्यवाद' जैसे निबंधों को व्यक्त किया जिनके आधार पर उनकी सैद्धांतिक समीक्षा के कुछ प्रतिमान निर्धारित किए जा सकते हैं–

(*i*) उन्होंने कविता को 'भावयोग' माना और ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के समकक्ष माना।

(*ii*) कविता या साहित्य का प्रयोजन व्यक्ति की संकीर्ण भावनाओं को समष्टि भावनाओं में लीन करना है ताकि व्यक्ति में पृथकत्व की अनुभूति न रहे।

(*iii*) प्रबंध काव्य का महत्त्व मुक्तक-काव्य से अधिक है क्योंकि रस योजना और लोकमंगल की दृष्टि से प्रबंध काव्य में बेहतर संभावनाएँ होती हैं।

(*iv*) उन्होंने बिंबों को अत्यधिक महत्त्व दिया और कहा कि, ''कविता में अर्थग्रहण ही पर्याप्त नहीं होता, बिंब ग्रहण भी अपेक्षित होता है।''

(*v*) उन्होंने काव्य में स्पष्टता को महत्त्व दिया और प्रतीकवाद तथा रहस्यवाद जैसी प्रवृत्तियों को सामान्यतः खारिज किया।

(*vi*) उक्ति वैचित्र्य के संदर्भ में उन्होंने 'भावप्रेरित वक्रता' को महत्त्व दिया किंतु 'बुद्धि प्रेरित वक्रता' को कविता के क्षेत्र से बाहर करके सूक्ति के वर्ग में रखा।

(*vii*) अलंकारों को उन्होंने सीमित महत्त्व देते हुए कविता में वांछनीय माना किंतु स्पष्ट कहा कि जिस प्रकार कुरूप स्त्री आभूषण लादकर सुंदर नहीं बन सकती; वैसे ही अलंकार गुण-सौंदर्य को बढ़ा भले दें, सौंदर्य उत्पन्न नहीं कर सकते।

(*viii*) कविता की भाषा के संदर्भ में उन्होंने माना कि शब्दों में नाद सौंदर्य होना चाहिए, नामबोधक शब्दों के स्थान पर गुणबोधक शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से कवि को बचना चाहिए क्योंकि इनसे अप्रतीतत्व दोष उत्पन्न होता है।

(*ix*) काव्य की दृष्टि से उन्होंने लोकमंगल की साधनावस्था की प्रस्तुति को अधिक महत्त्व दिया जबकि सिद्धावस्था को काम्य नहीं माना।

(*x*) गद्य साहित्य के संदर्भ में उन्होंने कहा कि यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।

व्यावहारिक आलोचना

आचार्य शुक्ल की व्यावहारिक आलोचना जिन ग्रंथों में व्यक्त हुई, उसमें प्रमुख हैं–**'जायसी ग्रंथावली'**, **'भ्रमरगीत'**, **'गोस्वामी तुलसीदास'** और **'हिंदी साहित्य का इतिहास'**। उनकी व्यावहारिक आलोचना की प्रमुख मान्यताएँ इस प्रकार हैं–

(*i*) उन्होंने आदिकालीन सिद्ध-नाथ साहित्य को साहित्य के क्षेत्र से बाहर कर दिया क्योंकि उनकी दृष्टि में उसमें सांप्रदायिक मान्यताओं का प्रचार मात्र था, न कि साहित्यिक या रसात्मक अनुभूति। आगे चलकर आचार्य द्विवेदी ने उनके इस मत का खंडन किया।

(*ii*) विद्यापति की समीक्षा करते हुए उन्होंने अध्यात्म और श्रृंगार के मिश्रण की कठोर आलोचना की और कहा, ''आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ आलोचकों ने विद्यापति के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही जयदेव के पदों को भी।''

(*iii*) प्रत्यक्षवादी पद्धति से उन्होंने भक्ति आंदोलन के उद्‌भव की समीक्षा की और भक्ति आंदोलन को इस्लामी आक्रमण से उत्पन्न हताशा का परिणाम बताया। वे कहते हैं–''अपने पौरुष से हताश जाति के पास भगवान की करुणा और भक्ति में ध्यान लगाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?''

(*iv*) उन्होंने भक्तिकाल के चारों प्रमुख कवियों पर विस्तार से लिखा। वे तुलसी की साहित्यिक रचनाशीलता को सर्वोच्च महत्त्व देते हैं। **जायसी के 'सर्ववादी रहस्यवाद'** की भी उन्होंने प्रशंसा की है। वे सूर की **'भाव प्रेरित वक्रता' की प्रशंसा** करते हुए भी अति अलंकारप्रियता और लोकमंगल की सिद्धावस्था की आलोचना करते हैं और कबीर के सामाजिक महत्त्व को मानते हुए भी उनकी साहित्यिक क्षमताओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं।

(*v*) रीतिकालीन कवियों में उन्होंने केशवदास के उक्तिवैचित्र्य तथा बिहारी की जीवन दृष्टि की आलोचना की और घनानंद की संवेदन क्षमता और भाषा क्षमता की प्रशंसा की।

(*vi*) आधुनिक काल में वे भारतेंदु और उनके मंडल के सामाजिक-साहित्यिक योगदान के प्रशंसक हैं। द्विवेदीयुगीन स्वच्छंदतावादी काव्यधारा उन्हें अत्यंत प्रिय है। पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा स्थापित भाषायी अनुशासन की उन्होंने प्रशंसा की है किंतु द्विवेदी जी के अनुशासनवाद और ईसाई संतों के 'फेंटसमाटा' के परिणामस्वरूप उत्पन्न छायावादी काव्य उन्हें कोरा प्रतीकवाद और रहस्यवाद नज़र आता है।

शुक्ल जी की आलोचना पद्धति की कमियाँ

(*i*) आचार्य शुक्ल प्रबंध काव्य को अधिक महत्त्व देने के कारण मुक्तक काव्य को यथेष्ट महत्त्व नहीं दे सके। इस कारण कबीर और सूर को उतना महत्त्व नहीं मिल पाया, जितना तुलसी और जायसी को।

(*ii*) वे पारंपरिक अभिजात्य संस्कारों से मुक्त नहीं हो सके, इसलिए उन्हें कबीर के काव्य में वह महानता नहीं दिखाई दी जो बाद में आचार्य द्विवेदी देख सके।

(*iii*) शुक्ल जी का मर्यादावाद कई बिंदुओं पर आड़े आया और रचनाकारों का तटस्थ मूल्यांकन करने में बाधक बना।

(*iv*) उन्होंने 'रसात्मकता की मध्यम कोटि' की अवधारणा से साधारणीकरण की समस्या सुलझाने का जो प्रयास किया वह अपर्याप्त था। इसका समाधान आगे चलकर डॉ. नगेंद्र ने यह कहकर दिया कि साधारणीकरण 'कवि की अनुभूति' का होता है।

(*v*) प्रत्यक्षवादी या विधेयवादी पद्धति को महत्त्व देने के कारण वे परंपरा, इतिहास और रचनाकार के व्यक्तित्व को यथेष्ट महत्त्व नहीं दे सके। कबीर की अक्खड़ता पर नाथपंथ का प्रभाव और भक्ति आंदोलन के उद्‌भव की व्याख्या में पहले से चली आ रही परंपरा को इसलिए पर्याप्त महत्त्व नहीं मिल सका।

(*vi*) रहस्यवाद और प्रतीकात्मकता के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यधिक विरोधी रहा, जिस कारण छायावाद जैसे साहित्यिक आंदोलन उनके गलत मूल्यांकन के शिकार हुए।

(*vii*) उन्होंने साहित्य को स्वदेशी और विदेशी में विभाजित किया जिसका परिणाम यह हुआ कि जायसी के प्रेम तथा कबीर के भावनात्मक रहस्यवाद को उन्होंने सामान्यत: अभारतीय साबित कर दिया जबकि तुलसी को भारतीय प्रेम पद्धति का पूर्ण प्रतिनिधि माना। यह वर्गीकरण औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता।

(*viii*) उन्होंने निबंध को गद्य विधाओं में केंद्रीय महत्त्व दिया और निबंधों में भी विचारात्मक निबंधों को आदर्श के रूप में स्थापित किया। आलोचकों के अनुसार यह एक प्रकार से अपनी रुचियों को केंद्र में स्थापित करने का प्रयास है।

(*ix*) अपने समकालीन साहित्य से वे प्राय: कटे रहे। उन्होंने न तो प्रगतिवाद पर कुछ लिखा और न ही प्रेमचंद के उपन्यासों पर।

टास्क शुक्लयुगीन आलोचना तथा समीक्षा पद्धति का उल्लेख कीजिए।

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में वैसा ही क्रांतिकारी परिवर्तन किया जैसा प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में किया था। उन्होंने साहित्य को रीतिवादी मानसिकता से पूर्णत: मुक्त किया तथा पहली बार सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा का समन्वय भी किया। रस जैसे वैयक्तिक तत्व को लोकमंगल से जोड़कर उसके भीतर निहित सामाजिक पक्ष को उभारा। उन्होंने हिंदी समीक्षा को न केवल संस्कृत काव्यशास्त्र के मानदंडों से संबद्ध किया बल्कि अंग्रेज़ी समीक्षा के प्रतिमानों का भी पर्याप्त समन्वय किया। यही कारण है कि इतना समय बीत जाने के बाद भी समीक्षा के इतिहास में उनका महत्त्व अक्षुण्ण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. हिंदी आलोचना का वास्तविक आरंभ .... से ही माना जा सकता है।
2. आचार्य शुक्ल ने कविता को .... माना और ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के समकक्ष माना।
3. जायसी के सर्ववादी रहस्यवाद की भी .... ने प्रशंसा की है।

नोट

11.1.2 शुक्लयुगीन अन्य आलोचक

आचार्य शुक्ल के समय में ही कई अन्य आलोचक सक्रिय थे, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(*i*) **बाबू श्याम सुंदर दास**–इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है **'साहित्यालोचन'** जो अकादमिक समीक्षा अर्थात् एम.ए. के विद्यार्थियों को जानकारी देने के लिए लिखा गया है। इनकी व्यावहारिक आलोचनाओं में **'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'कबीर ग्रंथावली की भूमिका'** और **'भारतेंदु हरिश्चंद्र'** प्रमुख ग्रंथ हैं। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों समीक्षाओं पर कार्य किया किंतु उनमें पर्याप्त समन्वय नहीं साध सके। इनका महत्त्व यह है कि रस और अलंकार के साथ-साथ इन्होंने उपन्यास, कहानी जैसी समकालीन विधाओं का भी विवेचन किया। शोध और अनुसंधान के जगत में इनका पर्याप्त महत्त्व है।

(*ii*) **बाबू गुलाब राय**–इनके दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं–(1) **सिद्धांत और अध्ययन,** (2) **काव्य के रूप।** इनका मुख्य योगदान छायावाद के दर्शन को स्पष्ट करना तथा हिंदी साहित्य की अकादमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

(*iii*) **विश्वनाथ प्रसाद मिश्र**–इनके प्रमुख ग्रंथ है–'हिंदी साहित्य का अतीत', 'हिंदी का सामयिक साहित्य' **'बिहारी की वाग्विभूति'** और **'वाङ्मय विमर्श'।** इनका महत्त्व मध्यकालीन साहित्य की साफ-सुथरी समीक्षा के कारण है।

(*iv*) **लक्ष्मी नारायण सुधांशु**–इन्होंने दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधारों का प्रयोग करते हुए सैद्धांतिक समीक्षा का विवेचन अपनी पुस्तक **'जीवन के तत्व'** और **'काव्य के सिद्धांत'** में किया।

(*v*) **छायावादी कवि**–आचार्य शुक्ल द्वारा छायावाद का एकपक्षीय मूल्यांकन कर दिए जाने के कारण छायावाद के चारों बड़े कवियों को आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय होना पड़ा। सबसे पहले सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' और 'वीणा' की भूमिकाओं में अन्य युगों की कविताओं की कमज़ोरियाँ बताते हुए छायावादी काव्य का महत्त्व प्रतिपादित किया। 'पल्लव की भूमिका' को तो छायावाद में लगभग वही महत्त्व दिया जाता है, जो अंग्रेज़ी स्वच्छंदतावाद में 'Preface to lyrical Ballads' को। इसी के समानांतर निराला ने 1927 ई. में 'पंत और पल्लव' निबंधमाला में पल्लव की कविताओं का सूक्ष्म मूल्यांकन किया। 1930 ई. में 'परिमल' की भूमिका में तो उन्होंने पारंपरिक छंदशास्त्र का खंडन करते हुए मुक्त छंद के रूप में नये छंदशास्त्र की स्थापना की। इनके उपरांत जयशंकर प्रसाद आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय हुए। उन्होंने अपनी मृत्यु से ठीक पहले 1936 ई. में 'हंस' पत्रिका में कई आलोचनात्मक लेख लिखे, जिनका संकलन 1939 ई. में 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' शीर्षक से हुआ। उन्होंने छायावाद के पक्ष में जो महत्त्वपूर्ण बिंदु उठाये, वे इस प्रकार हैं–

(क) उन्होंने छायावाद को भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से जोड़ा।

(ख) उन्होंने छायावादी कविताओं में निहित चमत्कार को शैली से अलग अनुभूतिगत चमत्कार के रूप में व्याख्यायित किया।

(ग) उन्होंने छायावादी सौंदर्य-बोध में निहित कल्याण तत्व और आध्यात्मिकता का स्वरूप स्पष्ट किया।

(घ) उन्होंने लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, चित्रभाषा, अनुभूति की निवृत्ति तथा उपचार वक्रता जैसे सैद्धांतिक सूत्रों के माध्यम से छायावादी काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया।

महादेवी वर्मा ने भी कुछ आलोचनात्मक लेख लिखे। सबसे पहले 1936 में रचित **'सांध्यगीत'** की भूमिका में उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद में निहित अस्पष्टता को दूर करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त कई अन्य लेखों में उन्होंने छायावाद में निहित वैयक्तिकता का स्वरूप स्पष्ट किया, जो **'साहित्यकार की आस्था अन्य निबंध'** नामक संकलन में संकलित हैं।

स्वच्छंदतावादी समीक्षा

स्वच्छंदतावादी समीक्षा वह पद्धति है, जो आचार्य शुक्ल की शास्त्रीय मान्यताओं से हिंदी समीक्षा को मुक्त करने का प्रयास करती है। इस आंदोलन से जुड़े समीक्षकों ने पश्चिमी स्वच्छंदतावाद (Romanticism) से प्रभाव

नोट

ग्रहण किया। ये रचना का मूल्यांकन मर्यादावाद और सामाजिक उपादेयता के आधार पर करने के स्थान पर रचनाकार की अनुभूतियों, उसकी वैयक्तिकता और सूक्ष्म सौंदर्यबोध आदि को महत्त्व देते हैं।

> *नोट्स* हिंदी स्वच्छंदतावादी समीक्षा में मुख्यत: तीन आलोचक शामिल हैं–पं. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र तथा पं. शांतिप्रिय द्विवेदी।

पं. नंद दुलारे वाजपेयी स्वच्छंदतावादी समीक्षा धारा के पहले समर्थ आलोचक हैं, जिन्होंने आचार्य शुक्ल के प्रबंधकाव्यवाद, मर्यादावाद और नैतिकतावाद जैसे आग्रहों से हिंदी समीक्षा को मुक्त किया। इन्होंने रसानुभूति की समीक्षा करते हुए उसे अलौकिकता से पूर्णत: मुक्त किया तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का भारतीयकरण किया। इन्होंने न केवल छायावाद बल्कि प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, प्रेमचंद और सूरदास आदि की विस्तृत और गंभीर आलोचना की। इन्होंने छायावाद को रहस्यवाद होने के आरोप से मुक्त किया, उसकी रहस्यात्मकता का स्रोत व्यक्ति-समाज संबंधों की टकराहट में खोजा और छायावादी काव्य की चिंताओं को समाज के संदर्भ में परिभाषित किया। **इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं–**'हिंदी साहित्य-बीसवीं शताब्दी', 'महाकवि सूरदास', 'नया साहित्य: नये प्रश्न'।

डॉ. नगेंद्र स्वच्छंदतावादी समीक्षा के दूसरे बड़े आलोचक हैं। 1937-38 ई. में इन्होंने **'सुमित्रानंदन पंत'** नामक ग्रंथ के माध्यम से अपनी समीक्षा-यात्रा आरंभ की जिसकी प्रशंसा आचार्य शुक्ल ने भी की। धीरे-धीरे इनकी व्यावहारिक समीक्षाओं में सैद्धांतिक पक्ष मजबूत होता गया, जो **'रीतिकाव्य की भूमिका'** तथा **'देव और उनकी कविता'** में स्पष्ट है। 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' उनकी अपनी दृष्टि में उनकी व्यावहारिक समीक्षा का सर्वोच्च स्तर है। 'राम की शक्ति पूजा' का भाष्य भी उनकी समीक्षा का सुंदर नमूना है।

डॉ. नगेंद्र सैद्धांतिक समीक्षा में भी खासे सफल रहे। उन्होंने रसवाद के साथ फ्रॉयड के मनोविश्लेषणवाद का संश्लेषण किया। अंग्रेजी के 'नई समीक्षा' आंदोलन के प्रसिद्ध समीक्षक आई. ए. रिचर्ड्स की पुस्तक 'Principles of Literary Criticism' का अनुवाद किया। 1964 ई. में इनकी सैद्धांतिक समीक्षा का सर्वोच्च स्तर **'रस सिद्धांत'** में स्पष्ट हुआ, जिसमें 'कवि की अनुभूति के साधारणीकरण' की व्याख्या के माध्यम से इन्होंने 'रसात्मकता की मध्यम कोटि' की समस्या को दूर किया। पश्चिमी काव्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतकारों अरस्तु और लोंज़ाइनस के ग्रंथों को हिंदी में प्रस्तुत किया और अंतिम काल में तो उन क्षेत्रों को भी छुआ, जिन्हें छूने से विद्वान प्राय: बचते रहे हैं, जैसे **'शैलीविज्ञान'** और **'साहित्य का समाजशास्त्र।'**

शांतिप्रिय द्विवेदी को **'प्रभाववादी समीक्षक' भी कहा जाता है।** इन्होंने अपनी पुस्तकों जैसे 'साहित्यिकी' तथा 'हमारे साहित्य निर्माता' में मुख्यत: छायावाद पर विचार किया। इन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि छायावाद भीतरी तौर पर गाँधीवादी चिंतन दृष्टि से संबंद्ध है, उसे समाज से कटा हुआ नहीं माना जा सकता। एक अन्य निबंध **'छायावाद और उसके बाद'** में उन्होंने छायावादोत्तर काव्य की संक्षिप्त समीक्षा भी की।

प्रगतिवादी समीक्षा

हिंदी की प्रगतिवादी समीक्षा 1936 ई. में **'प्रगतिशील लेखक संघ'** की स्थापना के बाद अस्तित्व में आई। इसका-सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवाद पर आधारित है हालांकि व्यवहारत: इसके प्रयोक्ताओं ने कहीं-कहीं मार्क्सवादी दृष्टि का अतिक्रमण भी किया है।

सैद्धांतिक पक्ष

प्रगतिवादी समीक्षा मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसे साहित्यिक जगत में 'समाजवादी यथार्थवाद' कहा जाता है। इसके अनुसार प्राकृतिक जगत की व्याख्या 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' से होती है और मानवीय इतिहास की व्याख्या 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' से। प्रत्येक समाज का इतिहास दो वर्गों–'शोषक' और 'शोषित'–के वर्ग संघर्ष का इतिहास है, जिसमें शोषक वर्ग उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर शोषित वर्ग का दमन करता है। प्रगतिवादी समीक्षा की सैद्धांतिक मान्यताएँ इस विचार पर आधारित हैं–

नोट

(*i*) साहित्य स्वायत्त वस्तु नहीं है वरन् वह अपने सामाजिक दायित्वों से बंधा है। उसका सामाजिक दायित्व शोषित वर्ग की मुक्ति की प्रक्रिया में सहायक होना है। **लेनिन** का स्पष्ट कथन है, ''साहित्य जनक्रांति के लिए एक हथियार मात्र है।''

(*ii*) साहित्यकार मूलत: एक नागरिक है। उसके सहित्यिक महत्त्व की पहचान उसके सामाजिक योगदान से होती है। यदि कोई साहित्यकार सामाजिक दृष्टि से 'तटस्थ' है, तो भी वह अस्वीकार्य है क्योंकि तटस्थता शोषण के समर्थन का ही प्रच्छन्न रूप है।

(*iii*) साहित्य का उद्देश्य आनंद या रस की उद्भावना नहीं है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज को आनंदित नहीं, आंदोलित करने की आवश्यकता है।

(*iv*) साहित्य में महत्त्व वस्तु (content) का है, रूप (form) का नहीं। यह मान्यता पारंपरिक मार्क्सवादी चिंतन में बेहद उग्रता के साथ मानी गयी है और अर्नेस्ट फिशर जैसे लेखकों के लेखन में दिखती है। इसका कुछ लचीला रूप 'जॉर्ज लुकाच' के 'महान यथार्थवाद' (Great Realism) में दिखता है, जहाँ वस्तु को अधिक महत्त्व देते हुए भी रूप के प्रति कुछ लचीला दृष्टिकोण अपनाया गया है। हिंदी प्रगतिवादी समीक्षा में भी **मुक्तिबोध** और **नामवर सिंह** का दृष्टिकोण ऐसा ही है।

(*v*) साहित्य में प्रतीक वांछनीय नहीं हैं क्योंकि प्रतीक मूल बात को छिपाते हैं, जबकि साहित्य का कार्य शोषण के छिपे हुए रूपों को सामने लाना है।

(*vi*) अपने भौतिकवादी दर्शन के अनुरूप प्रगतिवादी समीक्षा साहित्यकार की चेतना की व्याख्या जन्म-जन्मांतरीय प्रतिभा के रूप में नहीं करती। चेतना भौतिक शरीर और भौतिक परिस्थितियों के संघात का परिणाम है, इससे अधिक कुछ नहीं।

व्यावहारिक समीक्षा

प्रगतिवादी व्यावहारिक समीक्षा कई समीक्षकों के माध्यम से विकसित हुई जिनमें प्रमुख हैं–**शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चंद्र गुप्त, रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध** और **नामवर सिंह।** इनके अतिरिक्त, **समकालीन समीक्षकों में मलयज, नंद किशोर नवल, निर्मला जैन, नित्यानंद तिवारी, मैनेजर पांडेय** और **विश्वनाथ त्रिपाठी** भी इस धारा में शामिल हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(*i*) **शिवदान सिंह चौहान**–यह पहले प्रगतिवादी समीक्षक हैं। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं–**'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष'** तथा **'आलोचना के सिद्धांत'।** इनके अनुसार प्रगतिशील शक्ति वह है, जो न केवल संसार की व्याख्या करती है बल्कि उसे परिवर्तित करने में लगी रहती है। यह व्याख्या मार्क्सवाद की प्रैक्सिस (Praxis) की धारणा से प्रभावित है। चौहान जी के अनुसार प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवादी ही हो, यह अनिवार्य नहीं है।

(*ii*) **प्रकाश चंद्र गुप्त**–इनकी प्रमुख पुस्तक है–**'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा'**। इन्होंने सुबोध, सरल और शालीन शैली में मार्क्सवादी सिद्धांत का हिंदी साहित्य में प्रक्षेपण किया।

(*iii*) **डॉ. रामविलास शर्मा–डॉ. शर्मा प्रगतिवादी समीक्षा में 'भीष्म पितामह'** कहलाते हैं। इन्होंने न केवल मार्क्स को स्वीकार किया बल्कि कई बिंदुओं पर मार्क्सवाद में संशोधन भी किया। इनकी प्रमुख पुस्तकें हैं–**'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'प्रेमचंद', 'निराला की साहित्य साधना'।** इन्होंने **वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति** के साहित्य का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया। भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी इनके अन्य प्रिय साहित्यकार हैं जिन पर इन्होंने स्वतंत्र पुस्तकें लिखीं। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन्होंने मार्क्सवादी साहित्यिक सिद्धांतों में कई क्रांतिकारी संशोधन किए जैसे–(*i*) निराला के संदर्भ में जन्मजात प्रतिभा को स्वीकारा। (*ii*) आस्था और सौंदर्य में सौंदर्य की व्याख्या में सीमित रूप से आत्मनिष्ठता को भी महत्त्व दिया। (*iii*) 'उर्वशी' की समीक्षा में रसात्मकता की भी संक्षिप्त चर्चा की। इनकी सीमा यह रही कि नई कविता, विशेषत: मुक्तिबोध की कविताओं पर इनका रुख विध्वंसात्मक रहा।

(*iv*) **गजानन माधव मुक्तिबोध**—मुक्तिबोध ने मार्क्सवादी समीक्षा मूल्यों को तो स्वीकार किया ही, साथ में नई समीक्षा, अस्तित्ववाद तथा मनोविश्लेषणवाद के कुछ मुहावरों को भी शामिल किया। उनकी सैद्धांतिक समीक्षाएँ 'एक साहित्यिक की डायरी' में व्यक्त हुई हैं, जबकि **व्यावहारिक समीक्षा 'कामायनी: एक पुनर्विचार'** तथा **'नई कविता का आत्मसंघर्ष'** में। इन्होंने अपनी समीक्षा में फेंटेसी को अत्यधिक महत्त्व दिया और माना कि यथार्थवादी तथ्य की प्रस्तुति के लिए फेंटेसी जैसे गैर-यथार्थवादी शिल्प को स्वीकार किया जाना चाहिए। इन्होंने कामायनी को भी एक फेंटेसी के रूप में व्याख्यायित किया क्योंकि उसमें यथार्थ लोक की समस्याओं का समाधान कल्पनालोक के स्तर पर किया गया है। इन्होंने समीक्षाओं के कुछ नए मुहावरे भी गढ़े जैसे **'सत-चित-वेदना'**; 'संवेदनात्मक ज्ञान' या 'ज्ञानात्मक संवेदना'। रचना के तीन क्षणों के संबंध में इनका विवेचन अत्यंत सूक्ष्म है।

(*v*) **नामवर सिंह**—नामवर सिंह समकालीन प्रगतिवादी समीक्षक हैं। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने प्रगतिवादी दृष्टिकोण में कई अन्य समकालीन विचारधाराओं का संश्लेषण किया है। इनकी कई समीक्षात्मक पुस्तकें हैं, जैसे– **'कविता के नये प्रतिमान', 'इतिहास और आलोचना', 'छायावाद', 'इतिहास का दर्शन', 'दूसरी परंपरा की खोज'** आदि। **'छायावाद' इनकी आलोचना का सर्वोत्कृष्ट स्तर है,** जहाँ न केवल आलोचना का सूक्ष्मतम स्तर उपस्थित है बल्कि अभिव्यक्ति इतनी प्रखर है कि यह समीक्षात्मक ग्रंथ स्वयं में एक रचना बन गया है। 'कविता के नए प्रतिमान' में इन्होंने नई कविता पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया और बदलते हुए जीवन के अनुसार साहित्य के परिवर्तनों को भी स्वीकारा। **'कहानी: नई कहानी'** में इन्होंने विधा, विशेषत: नई कहानियों का सूक्ष्मतम और मर्मस्पर्शी विश्लेषण प्रस्तुत किया।

(*vi*) समकालीन आलोचना में कई अन्य आलोचक प्रगतिवादी दृष्टि का प्रयोग करते हुए निरंतर लेखन कर रहे हैं। इस दृष्टि से मैनेजर पांडेय का सूर संबंधी विश्लेषण, मलयज का सरोज-स्मृति का विवेचन, नंद किशोर नवल और निर्मला जैन द्वारा निराला और मुक्तिबोध की समीक्षा, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा तुलसी और नागार्जुन की समीक्षाएँ और डॉ. नित्यानंद तिवारी द्वारा सूफी काव्यधारा तथा फणीश्वरनाथ रेणु की समीक्षाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा, समीक्षा की वह पद्धति है, जिसमें मनोविज्ञान के एक विशेष संप्रदाय मनोविश्लेषणवाद के सैद्धांतिक पक्ष को स्वीकार किया जाता है। यह सिद्धांत मुख्यत: सिग्मंड फ्रॉयड ने दिया। इनके अतिरिक्त एडलर और कार्ल युग भी इस मनोवैज्ञानिक संप्रदाय के महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं।

सैद्धांतिक पक्ष

(*i*) मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक फ्रॉयड के अनुसार मनुष्य की मूल व्याख्या उसके मन में निहित प्रवृत्तियों तथा ग्रंथियों के माध्यम से हो सकती है। मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है 'काम-चेतना' या 'लिबिडो' जो उसके संपूर्ण जीवन को रूपायित करती है। मनुष्य इस प्रवृत्ति का नियंत्रण और दमन करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें कई ग्रंथियाँ और कुंठाएँ विकसित होती हैं। साहित्यकार वह व्यक्ति है, जो इन दमित इच्छाओं या कुंठाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति करता है। साहित्य में उपस्थित घटनाएँ, चरित्र इत्यादि इसी मूल मनोवृत्ति की व्याख्या करते हैं।

(*ii*) कोई भी रचना रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रक्षेपण होती है और व्यक्तित्व की पहचान अवचेतन या अचेतन मन से होती है। समीक्षक का दायित्व है कि वह रचना की व्याख्या रचनाकार के व्यक्तित्व के माध्यम से करे।

(*iii*) काम चेतना के सिद्धांत के अतिरिक्त 'प्रभुत्व की कामना' और 'जीवित रहने की इच्छा' के सिद्धांत भी मनुष्य की गहनतम प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हैं, जिनका प्रयोग साहित्यिक समीक्षा में किया जाना चाहिए।

(*iv*) साहित्य का मूल दायित्व समाज को बदलना नहीं बल्कि मनोग्रंथियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति करना है। इससे न केवल रचनाकार को मानसिक संतुष्टि मिलती है बल्कि पाठक की ग्रंथियाँ भी खुलती हैं।

(*v*) चूँकि साहित्य का मूल संबंध बहिर्जगत से नहीं अंतर्जगत से है, इसलिए प्रतीकों का प्रयोग साहित्य में आवश्यक है। बिंब और मिथक जैसे तत्व भी अंतर्मन की ग्रंथियों को सुलझाने में या व्यक्त करने में सक्षम हो सकते हैं।

(*vi*) चूँकि साहित्य का उद्देश्य व्यक्तित्व की कई परतों का विश्लेषण करना है, इसलिए स्वाभाविक है कि भाषा की प्रकृति विश्लेषणात्मक और अमूर्त हो।

(*vii*) चेतना प्रवाह शिल्प को मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि इसी के माध्यम से रचनाकार स्वयं को पूर्ण सहजता से व्यक्त कर पाता है।

व्यावहारिक पक्ष

हिंदी में मनोविश्लेषणवादी आलोचना का व्यावहारिक पक्ष ज्यादा विकसित नहीं हो सका है। यूँ तो आचार्य शुक्ल से लेकर समकालीन समीक्षकों तक सभी ने आलोचना में मनोवैज्ञानिक तत्व का प्रयोग किया है किंतु मनोविश्लेषणवादी पद्धति पर लिखी गई व्यवस्थित आलोचनाएँ काफी कम हैं। मुख्य रूप से **अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, डॉ. देवराज** और **डॉ. नगेंद्र की समीक्षाओं** में यह पद्धति दिखती है। डॉ. नगेंद्र के ग्रंथ 'काव्य में बिंब' पर 'प्रभुत्व के सिद्धांत' का प्रभाव स्पष्टत: दिखाई पड़ता है। अज्ञेय ने अपने उपन्यास **'शेखर एक जीवनी'** में शेखर के व्यक्तित्व की समीक्षा के लिए 'काम चेतना' के सिद्धांत का पर्याप्त उपयोग किया है। उनके निबंध संग्रह त्रिशंकु में 'प्रभुत्व कामना' और 'क्षतिपूर्ण' के सिद्धांत भी स्पष्टत: दिखाई पड़ते हैं। पं. इलाचंद्र जोशी की प्रसिद्ध पुस्तक है–**'साहित्य चिंतन'**। इनके अनुसार साहित्य का मूल उद्देश्य चरम सौंदर्य की अभिव्यक्ति के माध्यम से जीवनी शक्ति प्रदान करना है। फ्रॉयड और एडलर के सिद्धांतों का प्रभाव उन पर स्पष्टत: दिखता है। सीमित रूप से डॉ. देवराज और जैनेंद्र कुमार के यहाँ भी यह दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। जैनेंद्र ने तो मनोविश्लेषणवाद और गाँधीवाद को आपस में घुला-मिला दिया है।

नई समीक्षा

'नई समीक्षा' अंग्रेजी शब्द 'New Criticism' का अनुवाद है और यह 20वीं शताब्दी के आरंभ में **अमेरिका व यूरोप में विकसित हुए नई समीक्षा (New Criticism)** आंदोलन से प्रभावित भी है। **'New Criticism'** शब्द का प्रयोग पहली बार 1910 ई. में स्पिनबर्न ने किया। आगे चलकर 1941 ई. में **जॉन क्रो रैंसम** ने इसी नाम से अपनी समीक्षात्मक पुस्तक लिखी। लगभग 1950 ई. तक यह आंदोलन महत्त्वपूर्ण प्रभाव के साथ चलता रहा, जिसमें टी. एस. इलियट (The Sacred Wood), आई. ए. रिचर्ड्स (Principles of Literary Criticism) तथा मिडलटन मरे (The Problem of Style) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त क्लींथ ब्रुक्स, एलेन टैट तथा विलियम एम्पसन आदि आलोचक भी इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। यह आंदोलन 1950-60 के दशक में समाप्त हो गया क्योंकि समीक्षा की यह शैली धीरे-धीरे इतनी संकीर्ण होती गई कि **स्वयं इलियट** को इसे **नींबू-निचोड़ आलोचना** (Lemon Squeezing Criticism) कहकर खारिज करना पड़ा।

नोट्स नई समीक्षा शब्द का प्रयोग पहली बार 1910 ई. में स्पिनबर्न ने किया।

हिंदी में नई समीक्षा आंदोलन मुख्यत: प्रगतिवादी व स्वच्छंदतावादी दृष्टियों के विरुद्ध विकसित हुआ। यह प्रगतिवादी के विरुद्ध इसलिए है क्योंकि उसकी विचारधारात्मक यांत्रिकता के स्थान पर इसमें व्यक्ति की स्वानुभूति और भोगे हुए यथार्थ को महत्त्व दिया जाता है। यह स्वच्छंदतावाद के विरुद्ध इसलिए है क्योंकि इसमें जीवन की व्याख्या रोमानियत से नहीं बल्कि गैर-रोमांटिक व बौद्धिक मानिकसता से की जाती है। **नई समीक्षा आंदोलन के विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समीक्षक अज्ञेय हैं** जिनकी कई पुस्तकों जैसे **त्रिशंकु, 'भवंती', 'अंतरा'** और **'आधुनिक साहित्य'** में यह पद्धति दिखाई देती है। इसी समय इलाहाबाद में **'परिमल'** नामक

संस्था सक्रिय हुई जिसके कई सदस्य जैसे **लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी** इस समीक्षा धारा के विकास में सक्रिय हुए। 'परिमल' समूह से बाहर के जो समीक्षक इसमें सक्रिय रहे, वे हैं–**निर्मल वर्मा** तथा **रमेशचंद्र शाह**। इन आलोचकों की प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं–

लक्ष्मीकांत वर्मा	–	'नई कविता के प्रतिमान'
धर्मवीर भारती	–	'मानव मूल्य और साहित्य'
विजयदेव नारायण साही	–	'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट'
रामस्वरूप चतुर्वेदी	–	'अज्ञेय और आधुनिक रचनाशीलता की समस्या', 'काव्य भाषा पर तीन निबंध'
रघुवंश	–	'आधुनिकता और सृजनशीलता'
निर्मल वर्मा	–	'कला का जोखिम'
रमेशचंद्र शाह	–	'अज्ञेय और असाध्य वीणा', 'वागर्थ'

नई समीक्षा के प्रतिमान

(*i*) कोई भी रचना मूलत: एक भाषिक संरचना होती है। उसमें निहित अर्थ की खोज भाषिक संरचना में ही होनी चाहिए, उससे बाहर नहीं।

(*ii*) रचना एक स्वायत्त इकाई है जिसका मूल्यांकन साहित्यिक प्रतिमानों से होना चाहिए, न कि साहित्येतर या सामाजिक प्रतिमानों से।

(*iii*) रचना भावनाओं के तीव्र उच्छलन या वमन से जन्म नहीं लेती। वस्तुत: रचनाकार अपनी भावनाओं पर तीव्र अंकुश रखकर तथा रचना करने वाले मन को भोगने वाले मन से तटस्थ रखते हुए निर्वैयक्तिकता के साथ ही बेहतर सृजन कर सकता है। इस विचार पर इलियट का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

(*iv*) साहित्य किसी भी विचारधारा के प्रति जवाबदेह नहीं होता। उसकी जवाबदेही मूलत: रचनाकार की स्वानुभूति या वैचारिकता तक सीमित है।

(*v*) रचना तथा आलोचना की प्रक्रिया में केंद्रीय तत्व भाषा का होता है क्योंकि भाषा की सीमाएँ न केवल हमारी अभिव्यक्ति को सीमित करती हैं बल्कि हम चिंतन भी भाषायी सामर्थ्य के अनुसार ही कर सकते हैं।

(*vi*) साहित्य में कथ्य और शिल्प दोनों का महत्त्व है किंतु शिल्प का निर्णायक महत्त्व है क्योंकि वही रचनाकार और गैर-रचनाकार में तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं में अंतर स्थापित करता है।

(*vii*) रचना का दायित्व समाज को बदलना नहीं है, वह अधिक-से-अधिक व्यक्ति को संस्कारित कर सकती है।

टास्क समीक्षा से क्या तात्पर्य है? समीक्षा का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

व्यावहारिक पक्ष

(*i*) अज्ञेय आरंभ में मनोविश्लेषणवाद से काफी प्रभावित रहे किंतु 1960 में रचित उनकी **पुस्तक 'आत्मनेपद'** नई समीक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। 'हिंदी साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य' में संकलित निबंधों में भी यही दृष्टिकोण प्रमुख रहा। इसके अतिरिक्त 'तीसरा सप्तक' की भूमिका भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रतीकों पर अत्यधिक बल तथा सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए सटीक शब्दों का निर्माण–ये दो तत्व अज्ञेय की समीक्षा दृष्टि के केंद्र में रहे।

नोट

(*ii*) लक्ष्मीकांत वर्मा की पुस्तक **'नई कविता के प्रतिमान'** नई समीक्षा की पहली प्रमुख पुस्तक मानी जाती है, जिसमें इन्होंने विचारधाराओं के स्थान पर मानवीय अनुभूति को केंद्रीय महत्त्व प्रदान किया।

(*iii*) धर्मवीर भारती की प्रसिद्ध पुस्तक है–**'मानव मूल्य और साहित्य'**। इन्होंने प्रगतिवादी यांत्रिकता का विरोध करते हुए प्रयोगशीलता तथा नई कविता की स्वानुभूतिपरक मानसिकता का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त जीवन की सहजता, विशेषत: यौन सहजता का समर्थन इनका महत्त्वपूर्ण विचार है।

इन प्रमुख आलोचकों के अतिरिक्त डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अज्ञेय के गैर-रोमांटिक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिकता पर सूक्ष्म विचार किया। उन्होंने भाषा और साहित्य के सूक्ष्म संबंधों की पड़ताल भी की। अन्य प्रसिद्ध समीक्षात्मक ग्रंथों में शमशेर बहादुर सिंह का निबंध संकलन 'दोआब' तथा नलिन विलोचन शर्मा की पुस्तक **'साहित्य का विकास दर्शन'** प्रमुख हैं, जिनमें नई समीक्षा का दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है।

समकालीन समीक्षा

1970 के बाद की हिंदी आलोचना को सामान्यत: समकालीन समीक्षा कहा जाता है। इसके अंतर्गत दो मुख्य धाराएँ हैं तथा कुछ अन्य गौण धाराएँ। दो प्रमुख धाराएँ वस्तुवादियों तथा भाववादियों की हैं। वस्तुवाद (Realism) वह दृष्टिकोण है जो बाह्य परिस्थितियों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता है। अर्थात् साहित्य की व्याख्या बाह्य परिस्थितियों के माध्यम से ही करता है। इस धारा में डॉ. नामवर सिंह के साथ मलयज, मैनेजर पांडेय, नंद किशोर नवल, नित्यानंद तिवारी, विश्वनाथ त्रिपाठी इत्यादि समीक्षक शामिल हैं। ध्यातव्य है कि प्राय: ये सभी समीक्षक प्रगतिवादी समीक्षा आंदोलन से भी जुड़े हैं तथा उसी दृष्टिकोण को समकालीन संदर्भ में व्यक्त कर रहे हैं।

दूसरी धारा भाववादी समीक्षा की है। भाववाद (Idealism) वह दृष्टिकोण है जो रचना के केंद्र में रचनाकार की चेतना को रखता है, न कि चेतना को प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियों को। इस धारा के प्रमुख प्रतिनिधि **अशोक वाजपेयी** हैं जो कि **'पूर्वग्रह'** के संपादक हैं। इन्होंने न केवल भाववाद, बल्कि रूपवाद की कुछ मान्यताओं को भी समीक्षा प्रक्रिया में स्वीकारा है। इनकी प्रसिद्ध समीक्षा पुस्तक है **'फिलहाल'**। इसमें जो दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है, उसके अनुसार आलोचना का कार्य यह है कि कविता में घटित और अनुभूत होने वाले पक्ष को उत्कटता के साथ प्रस्तुत किया जाए। इनके नेतृत्व में जो आलोचक भाववादी, रूपवादी समीक्षा पद्धति का विस्तार कर रहे हैं, उनमें प्रमुख हैं–**विष्णु खरे, मदन-सोनी, ध्रुव शुक्ल** तथा **प्रभात त्रिपाठी।**

समकालीन समीक्षा में एक तीसरी धारा भी है जो दोनों धाराओं का समन्वय करती है। इस समन्वयवादी विचारधारा के पुरोधा रहे–**डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी**। इन्होंने अपनी पुस्तकों **'हिंदी नवलेखन', 'नई कविताएँ : एक साक्ष्य'** तथा **'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास'** में समकालीन साहित्य का मूल्यांकन करते हुए समन्वित प्रतिमान स्थापित करने का प्रयास किया है। इनके अतिरिक्त रामदरश मिश्र और बटरोही आदि समीक्षक भी ऐसे ही समन्वित प्रतिमान लेकर चले हैं। रामदरश मिश्र की पुस्तक **'हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा'** तथा **बटरोही** की पुस्तक **'कहानी-संवाद का तीसरा आयाम'** इस दृष्टि से प्रमुख हैं।

समग्रत:, नए-नए प्रयोगों के बीच से उभरती हुई संभावनाएँ आलोचना के भविष्य के प्रति आशांवित करती हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. बाबू गुलाबराय के दो प्रसिद्ध ग्रंथ है–सिद्धांत और अध्ययन तथा .... ।
   (क) जीवन के तत्व (ख) काव्य के रूप
   (ग) काव्य के सिद्धांत (क) या उपरोक्त में से कोई नहीं
5. वस्तुवाद वह दृष्टिकोण है जो बाह्य परिस्थितियों को .... प्रदान करता है।
   (क) अत्यधिक शक्ति (ख) अत्यधिक भाव
   (ग) अत्यधिक महत्त्व (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

6. .... में मनोविश्लेषणवादी आलोचना का व्यावहारिक पक्ष ज्यादा विकसित नहीं हो सकता है।

(क) तमिल (ख) गुजराती

(ग) बंगाली (घ) हिंदी

11.1.3 हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचक

पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना पद्धति

हिंदी समीक्षा के जिस दौर को शुक्लोत्तर आलोचना का दौर कहा गया है, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचकों में से एक हैं। कुछ विद्वानों ने उनकी आलोचना दृष्टि को 'ऐतिहासिक आलोचना दृष्टि' भी कहा है। वस्तुत: सैद्धांतिक दृष्टि से देखें तो आचार्य द्विवेदी आचार्य शुक्ल की तरह मूलत: आलोचक न होकर केवल कुछ प्रसंगों में आलोचना कर्म का निर्वाह करते हैं। वे मूलत: ज्योतिष के आचार्य संस्कृत के प्रकांड पंडित एवं भारतीय सभ्यता व संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इस अनूठे व्यक्तित्व के साथ हिंदी के क्षेत्र में आने पर उन्होंने **'सूर साहित्य'** और **'कबीर'** जैसी घोषित आलोचनाएँ लिखी हैं तथा इनके अतिरिक्त **'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास'** जैसी साहित्य-इतिहास पुस्तकों में, **'अशोक के फूल'** एवं **'कुटज'** जैसे ललित निबंधों में तथा **'विचार और वितर्क'** जैसे चिंतन परक निबंधों में कुछ सैद्धांतिक चर्चाएँ करते गए हैं। उसकी आलोचना-परिणाम में कम है किंतु गुणवत्ता और गहराई में किसी से कम नहीं है।

आलोचक की आलोचना मूलत: इस बात पर निर्भर करती है कि जीवन और साहित्य के प्रति आलोचक का दृष्टिकोण क्या है? इस संबंध में द्विवेदी जी की स्पष्ट मान्यता है कि **'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'**। उनकी दृष्टि में मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तथा सारी सृष्टि के मनुष्य अपनी परिस्थितियों और बाह्य अभिव्यक्तियों के अंतरों के बावजूद मूलत: एक ही भाव संपदा को धारण करते हैं। मानव और उसकी संस्कृति समय और स्थान के अनुसार परिवर्तनशील एवं विकासशील है इसमें न पूर्व-पश्चिम का भेद सही है, न प्रवृत्ति- निवृत्ति का, न आर्य-अनार्य का। उनकी सुनिश्चित धारणा है कि "सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है, शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा।"

आचार्य द्विवेदी अपनी साहित्यिक मान्यताओं में अपने पूर्ववर्ती विद्वान आचार्य शुक्ल से संपूर्ण दृष्टिकोण के स्तर पर मतभेद रखते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि साहित्य का अध्ययन विधेयवादी दार्शनिक टॉय के दृष्टिकोण से स्थान, परिस्थिति और क्षण को आधारभूत मानकर नहीं किया जा सकता। उसे सांस्कृतिक नैरंतर्य की दृष्टि से देखे जाने की जरूरत है। 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में पहले ही अध्याय का शीर्षक उन्होंने दिया है **'हिंदी साहित्य: भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास'।** स्पष्ट है कि वे साहित्य को पहले से चली आ रही सांस्कृतिक परंपरा से जोड़ कर देखते हैं इसलिए हिंदी साहित्य को उन्होंने संस्कृत, पाली और अपभ्रंश साहित्य के साथ-साथ ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध आदि धार्मिक परंपराओं से निर्मित एक समन्वित भारतीय चिंता के विकास के रूप में व्याख्यायित किया। इसी दृष्टि से विवेचन करते हुए उन्होंने कबीर आदि संतों को आदिकाल की सिद्ध नाथ परंपरा से जोड़ा तथा रीतिकालीन काव्य को गाथासप्तसती तथा कामसूत्र की परंपरा का नवोदित चरण माना। कुल मिलाकर उन्होंने साहित्यिक परिवर्तनों के मूल में राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों के परिवर्तन को अधिक महत्त्व न देते हुए एक सांस्कृतिक निरंतरता की प्रतिष्ठा की।

द्विवेदी जी की साहित्य दृष्टि से एक ओर नैरन्तर्य का महत्त्व है तो दूसरी ओर अखंडता या संश्लिष्टता का। वे साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए उसे खंडों में बाँटकर देखना पसंद नहीं करते बल्कि परस्पर संबंधों में विश्लेषित करना चाहते हैं। यही कारण है कि उन्होंने भक्ति काल को सगुण और निर्गुण आदि काव्य धाराओं में बाँटकर देखने के स्थान उसका मूल्यांकन विराट भक्ति चेतना और भक्ति धारा के रूप में किया है। इससे भी आगे बढ़कर कभी-कभी वे साहित्य की चर्चा में चित्र, संगीत और नृत्य जैसी कलाओं को तथा विज्ञान, नृशास्त्र तथा इतिहास जैसे ज्ञान संदर्भों को भी समाहित कर लेते हैं। इससे उनकी जो सोच बनती है वह कालगत विस्तार तथा विषयगत विस्तार को एक साथ धारण करने से सामाजिक चिंतन के रूप में व्यक्त होती है।

नोट

आचार्य द्विवेदी ने कला और वस्तु के संबंध में प्राय: वही दृष्टि रखी जो प्रगतिवाद में कुछ परिवर्तित रूप के साथ दिखाई देती है। मनुष्य मात्र को साहित्य का लक्ष्य मान लेने से वे एक सीमा तक शुक्ल जी के लोकमंगलवाद से जुड़ जाते हैं तथा साहित्य का यही उद्देश्य उनके चिंतन में शिल्प को कथ्य या उद्देश्य के समक्ष वैसे ही गौण बना देता है जैसे प्रगतिवाद में। उन्होंने जहाँ-जहाँ व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखी हैं उनमें प्राय: संवेदना और कथ्य पर चिंतन किया है, शिल्प पर बात करने में न उसकी रुचि है न प्रवृत्ति। कलावादी साहित्यिक विचारधाराओं को वे इतना अप्रासंगिक मानते हैं कि उन पर आक्रमण करना भी वे आवश्यक नहीं समझते। यह अवश्य है कि सामान्य समीक्षा में शिल्प के तत्व माने जाने वाले कुछ बिंदुओं को काव्यात्मक संवेदना के विकास से जोड़ा है और उन्हें महत्त्व दिया है। इस दृष्टि से पृथ्वीराजरासो की काव्य रूढ़ियों तथा कवि प्रसिद्धियों के माध्यम से की गई व्याख्या अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जिसमें वे काव्य रूढ़ियों और कवि प्रसिद्धियों को देश और जाति की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफल मानते हैं।

इस मूल दृष्टि को धारण करते हुए द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के कुछ विशेष प्रसंगों की महत्त्वपूर्ण आलोचना की है। आदिकाल के संदर्भ में उन्होने शुक्ल जी की इस मान्यता का खंडन किया जो सिद्ध और नाथों के साहित्य को सांप्रदायिक कथन मात्र बनाकर साहित्य के क्षेत्र से बाहर कर देती थी। उन्होंने तर्क दिया कि धर्म और साहित्य न उस काल में विच्छिन्न थे न आज तक हो सके हैं। यदि धर्म का होना साहित्य के खंडन का आधार है तो संपूर्ण भक्तिकाल को साहित्य के क्षेत्र से खारिज करना होगा। इस धारणा से सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में प्रतिष्ठित हुआ तथा इस बदलती हुई स्थिति में साहित्य के आरंभिक काल का नाम स्वाभाविक रूप से वीरगाथा काल के स्थान पर आदिकाल मान लिया गया।

द्विवेदी जी की आलोचक दृष्टि जिस दूसरे महत्त्वपूर्ण संदर्भ पर शुक्ल से टकराई है वह है **भक्ति काल के उद्‌भव की व्याख्या**। आचार्य शुक्ल की मान्यता थी कि भक्ति साहित्य इस्लाम के आक्रमण के कारण **'अपने पौरुष से हताश जाति'** की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। आचार्य द्विवेदी ने स्पष्ट रूप से कहा कि उनकी दृष्टि में भक्ति साहित्य एक 'हतदर्प पराजित जाति' का साहित्य नहीं हैं इसके विपरीत वे स्पष्टत: कहते हैं कि 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का रूप बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस प्रकार उन्होंने भक्ति साहित्य को तत्कालीन आकस्मिक घटनाओं की उपज मानने के स्थान पर सांस्कृतिक निरंतरता के अगले चरण के रूप में व्याख्यायित किया।

जिस बिंदु पर आचार्य द्विवेदी की आलोचना दृष्टि सर्वाधिक प्रखर हुई है और उनका शुक्लजी से गहरा मतभेद दिखाई दिया है वह है **कबीर का कृतित्व**। शुक्ल जी ने कबीर की व्याख्या जिस रूप में की थी उससे उनका दर्शन भानुमती का कुनबा प्रतीत होता था, उनकी भाषा **कवित्व क्षमता से हीन** दिखाई देती थी। उनकी उक्तियाँ गूढ़ **अंत: साधनात्मक प्रतीकों** से भरी हुई लगती थी और ऐसा महसूस होता था कि वे प्रकृति से संत, स्वभाव से सुधारक व ठोक पीटकर कवि हो गए हैं। संस्कृति के प्रकांड पंडित और कालिदास की लालित्य योजना पर मुग्ध आचार्य द्विवेदी के लिए कबीर के कबीरत्व को स्वीकार करना बहुत कठिन था किंतु कबीर में अस्वीकार करने का जितना साहस था आचार्य द्विवेदी में उतना ही साहस स्वीकार करने का था। उन्होंने न केवल कबीर के कबीरत्व को पहचाना बल्कि उनको वाणी का डिक्टेटर घोषित किया। उन्हें चकनाचूर कर देने वाली भाषा तथा तिलमिला देने वाले ओज की पहचान की। उनके फक्कड़पन लापरवाही ढूँढ़ने वाले मूल्यों पर चोट की। कबीर पर उनकी आलोचना ने केवल आचार्य द्विवेदी के जीवन की बल्कि संपूर्ण हिंदी साहित्य की अनमोल निधि है।

> *क्या आप जानते हैं* आचार्य द्विवेदी ने कला और वस्तु के संबंध में प्राय: वही दृष्टि रखी जो प्रगतिवाद में कुछ परिवर्तित रूप के साथ दिखाई देती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का आलोचक व्यक्तित्व हिंदी साहित्य के कई अन्य संदर्भों में भी स्फुटित हुआ है। उन्होंने सूरदास के सूरसागर के लिरिकल या गीति काव्यात्मक पक्ष को महाकाव्यात्मक दर्जा दिया है। वे अपने

समय से कितनी गइराई से जुड़े रहे हैं। इस बात का प्रमाण यह है कि उन्होंने सबसे पहले प्रेमचंद के महत्त्व को पहचाना और उन्हें प्रथम कोटि के साहित्यकार के रूप में व्याख्यायित किया। इसके अतिरिक्त आधुनिक मनोवृत्ति की गहरी पहचान वे करते हैं, यद्यपि उनकी लेखन शैली को देखकर कई विद्वान उन्हें पारंपरिक और रूढ़िवादी व्यक्ति मानने की भूल कर बैठते हैं। साहित्य सहचर में वे स्पष्ट लिखते हैं ''अत्यंत आधुनिक कवि इस भावुकता को पसंद नहीं करता। वह वस्तु को आत्मनिरपेक्ष भाव से देखने को ही सच्चा देखना मानते हैं।'' इतना ही नहीं उन्होंने अपने काल के एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन प्रगतिवाद के महत्त्व को रेखांकित करते हुए उसे सलाह भी दी है कि वह सांप्रदायिकता से बचा रहे। वे लिखते हैं ''प्रगतिवादी आंदोलन बहुत महान उद्देश्य से चालित है, इसमें सांप्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी संभावनाएँ अत्यधिक हैं।''

आचार्य द्विवेदी मनुष्य को साहित्य का उद्देश्य मानने के कारण साहित्य के शास्त्रीय चिंतन पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं, किंतु इसके बावजूद कुछ सीमित संदर्भों में उन्होंने काव्यशास्त्रीय चिंतन भी किया है। **'साहित्य का मर्म'** कृति में प्राय: ऐसा चिंतन दिखाई देता है, उदाहरण के लिए, रस सिद्धांत की ऐतिहासिक व्याख्या करते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि भरतमुनि का उदात्त व सात्विक रस सिद्धांत पंडितराज जगन्नाथ तक पहुँचते-पहुँचते केवल शृंगार और उसके भी केवल भोगात्मक पक्ष तक कैसे सीमित हो गया। रस के अतिरिक्त छंद व लय तत्व तो उनके प्रिय विषय रहे ही हैं, एक दो प्रसंगों में उन्होंने शब्द शक्तियों की चर्चा भी की है। शास्त्रीय चिंतन की अधिकता न होने के कारण वे साहित्य के प्रवाह से कटे नहीं है, बल्कि उसका भी चिंतन कर लेने के कारण उनके आलोचक व्यक्तित्व में समग्रता अवश्य आ गई है।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी समीक्षा के इतिहास में आचार्य द्विवेदी अपने युग के उस खालीपन को भरते हैं जो आचार्य शुक्ल जैसे विराट व्यक्तित्व के भाव से पैदा हो गया था। वे हिंदी साहित्य को एक ओर संपूर्ण भारतीय परंपरा से जोड़ते हैं तो दूसरी ओर जीवन के संपूर्ण ज्ञानात्मक और कलात्मक पक्षों से। इस प्रक्रिया में शुक्ल जी की तार्किक और विधेयवादी आलोचना पद्धति के समक्ष वे सृजनात्मक लालित्यपूर्ण तथा देशकाल संश्लिष्ट आलोचना पद्धति को स्थापित करते हैं। यह पद्धति शुक्ल जी के चिंतन का विरोध नहीं हैं बल्कि उससे मिलकर आलोचना की संपूर्णता का प्रयास है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना पद्धति

नंद दुलारे वाजपेयी हिंदी की स्वच्छंदतावादी समीक्षा के महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। इन्होंने समीक्षा क्षेत्र में यद्यपि द्विवेदी युग में ही पदार्पण किया था किंतु इनकी समीक्षा का वास्तविक विकास शुक्लोत्तर युग में ही देखने को मिलता है। इनकी आलोचना की प्रसिद्ध पुस्तकें हैं–हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, आधुनिक साहित्य, कवि निराला, जयशंकर प्रसाद, महाकवि सूरदास, सुमित्रानंदन पंत, नई कविता: नए संदर्भ, नया साहित्य: नए प्रश्न आदि।

इन्होंने केवल सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाओं में अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया बल्कि आलोचकों के भिन्न दृष्टिकोण को समन्वित करके एक समन्वयवादी समीक्षा पद्धति को विकसित किया जिसमें स्वच्छंदतावाद एवं कलावाद, मार्क्सवाद एवं अध्यात्मवाद सभी परस्पर घुल मिल गए हैं।

वाजपेयी जी ने सैद्धांतिक समीक्षा पर या काव्यशास्त्र के सिद्धांतों पर बहुत कम विवेचन किया है, जो सामान्यत: व्यवहारिक आलोचना की पुस्तकों में ही कुछ प्रसंगों में दिखाई पड़ता है। 'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी' की भूमिका में उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए बताया है कि वे आलोचना में सात बातों का ध्यान रखते हैं–

1. कवि की अंतर्वृत्तियों का अध्ययन।
2. कलात्मक सौष्ठव का अध्ययन।
3. तकनीक या शैली का अध्ययन।
4. समय और समाज तथा उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन।
5. कवि की जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का वर्णन।
6. कवि के दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का अध्ययन।
7. काव्य के जीवन संबंधी सामंजस्य एवं संदेश का अध्ययन।

नोट

विशेष बात यह है कि उनके अनुसार इन सातों का क्रम अधिक महत्त्वपूर्ण से कम महत्त्वपूर्ण की ओर है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि की अनुभूति, कलात्मक सौष्ठव एवं शिल्प का महत्त्व उनके लिए ज्यादा है, रचना के सामाजिक प्रभाव जैसे पक्षों का महत्त्व कम है।

वाजपेयी जी अपने समय के सभी भारतीय एवं पश्चिमी सिद्धांतों के गहरे अध्येता हैं किंतु एकपक्षीयता से खुद को बचाना चाहते हैं। आधुनिक साहित्य की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट रूप से चार समीक्षा पद्धतियों से बचने की बात कहीं हैं–

1. वैयक्तिक मनोविज्ञान पर आधारित समीक्षा पद्धति जिस पर फ्रायड, एडलर एवं युंग का प्रभाव है।
2. मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति।
3. कला विज्ञानवादी प्राचीन परंपरा।
4. उपयोगितावादी या नीतिवादी समीक्षा पद्धति जिसका समर्थन पश्चिम में आइ. ए. रिचर्ड्स (I.A. Richards) तथा भारत में आचार्य शुक्ल ने अंशत: किया है।

इन सभी समीक्षा पद्धतियों की एकपक्षीयता से बचते हुए वे समन्वयवादी विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं ताकि किसी भी रचना की समीक्षा सभी पक्षों के स्तर पर हो सके।

आचार्य वाजपेयी ने सैद्धांतिक समीक्षा में भारतीय रस सिद्धांत को स्वीकारा तो है, किंतु उस रूप में नहीं जिस रूप में पारंपरिक काव्यशास्त्र में माना गया है। उन्होंने इसकी व्याख्या आनंद एवं आह्लाद के रूप में की है और स्पष्ट कहा है कि रसानुभूति को ब्रह्मांड **सहोदर** एवं **वेद्यांतरस्पर्शशून्य** कहकर उसे अलौकिक बना देने का प्रयास गलत है। उनके अनुसार रस का अर्थ कला मात्र का आनंद है जिसमें न केवल रस, रसाभास, भावभास, भाव संधि, भाव सबलता आदि आठ स्थितियाँ मानी गई हैं बल्कि पश्चिमी साहित्य शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत हर प्रकार का आनंद तत्व भी शामिल है। अलंकारों के संबंध में उनकी धारणा आचार्य शुक्ल के समान है और वे साफ कहते हैं कि अलंकार रस सिद्धि के साधन मात्र हैं। उनका कथन है कि ''कविता अपने उच्चतम स्तर पर पहुँचकर अलंकार विहीन हो जाती है... उस समय उसके प्रवाह में अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति न जाने कहाँ बह जाते हैं और सारे संप्रदाय न जाने कैसे मटियामेट हो जाते हैं।''

वाजपेयी जी ने रचना एवं आलोचना के संबंधों को भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार रचना में भावनाओं के परिष्कार और जीवन को गहराई से समझने की क्षमता तो होनी चाहिए किंतु आलोचना या नैतिक मापदंड किसी भी अर्थ में रचना के नियंत्रक बन जाएँ, यह उचित नहीं है। रचना उपदेश न बन जाए इसके लिए आवश्यक है कि रचना की स्वायत्तता बनी रहे।

व्यावहारिक आलोचना

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का महत्त्व जितना सैद्धांतिक आलोचना को लेकर है उससे कहीं अधिक व्यावहारिक आलोचना के कारण है। वे पहले समर्थ आलोचक हैं जिन्होंने आचार्य शुक्ल की मान्यताओं से टकराने का साहस किया है और ऐसा विशेष रूप से दो संदर्भों में हुआ है–सूरदास एवं छायावाद के संदर्भ में।

'महाकवि सूरदास' नामक व्यावहारिक आलोचना में आचार्य वाजपेयी ने सूर साहित्य की प्रभावशाली समीक्षा प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि गोचारण जीवन की घटनाएँ मूलत: कथा प्रधान होती हैं, किंतु, सूर ने उन कथात्मक प्रसंगों को अपनी अनूठी क्षमताओं से भावगीतों में रूपांतरित कर दिया है। आ. शुक्ल से असहमति इस बात पर है कि जहाँ आ. शुक्ल ने गोपियों के विरह को गंभीरता से रहित माना था वहीं वाजपेयी जी ने गोपियों के वियोग में निहित मनोवैज्ञानिक गंभीरता को पहचाना एवं प्रस्तुत किया।

वाजपेयी जी का सबसे अधिक महत्त्व उनके छायावाद संबंधी विवेचन के कारण है और यहाँ वे दो-तीन कारणों से शुक्ल जी से असहमत हैं। आचार्य शुक्ल मानते थे कि कविता में मार्मिक तथ्य होने चाहिए जो सामान्य व्यक्ति के ऐंद्रिक बोध में शामिल हैं। वे रहस्यवादी अनुभूति को कविता का शत्रु मानते थे। इसके विपरीत वाजपेयी जी ने माना कि स्थूल अनुभूति से बेहतर कभी-कभी आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक अनुभूति होती है। आचार्य शुक्ल रसवादी तो थे किंतु उनका रसवाद लोकमंगलवाद पर टिका हुआ था। जिस कारण प्रसाद तथा पंत जैसे कवियों

की रचनाओं में विद्यमान रसात्मकता उनके लिए काम्य नहीं थी। इसके विपरीत वाजपेयी जी ने रसवाद की धारणा से लोमंगलवाद एवं नैतिकतावाद को अलग किया जिस कारण छायावादियों का रसात्मक साहित्य उनके लिए अत्यंत सुंदर बन गया।

दृष्टिकोण के अंतर के आधार पर आचार्य वाजपेयी ने छायावाद के संबंध में कुछ मौलिक मान्यताएँ प्रस्तुत कीं जैसे यह कि छायावाद मूलत: रहस्यवाद नहीं है बल्कि रहस्यात्मक आवरण के मध्य उसकी मूल चिंता राष्ट्रीय व सांस्कृतिक है। उन्होंने छायावाद में विद्यमान रहस्यवाद को आधुनिक रहस्यवाद के रूप में परिभाषित किया जिसका मूल कारण व्यक्ति द्वारा सामाजिक स्वाधीनता की चाह एवं सामाजिक दबाव से उत्पन्न होने वाले तनाव हैं। इस प्रकार आचार्य वाजपेयी वास्तविक अर्थों में छायावाद के सफल पुरस्कर्ता बने।

आचार्य वाजपेयी की व्यावहारिक आलोचना कुछ अन्य क्षेत्रों में भी व्यक्त हुई है। उन्होंने साकेत पर विचार किया और साकेत के साथ कामायनी, कुरुक्षेत्र एव रामचरितमानस की तुलना करते हुए तुलनात्मक आलोचना का एक सुंदर रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने आधुनिक कविता में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता तीनों पर लिखा हालाँकि उन्हें प्रगतिवाद अधिक पसंद नहीं आया क्योंकि वह एक विचारधारा (मार्क्सवाद) से पूर्णत: प्रभावित है। वाजपेयी जी मार्क्सवाद के विरोधी नहीं है अपितु मार्क्सवाद एवं आध्यात्मिकता के समन्वय की इच्छा रखते हैं। उनका कथन भी है कि ''मार्क्सवादी दर्शन में ऐसी कोई बात नहीं जो हमारी नैतिक उन्नति में बाधक बने और न ही हमारे आध्यात्मिक दर्शन में कोई ऐसी बात है जो सामाजिक विकास को अवरूद्ध करे। उन्होंने प्रयोगवाद पर भी लिखा किंतु प्रयोगवाद उन्हें **''बैठे ठाले का धंधा''** दिखाई दिया। उन्होनें प्रेमचंद पर भी लिखा। किंतु प्रेमचंद के अति सामाजिक दृष्टिकोण के प्रति नापसंदगी जाहिर करते हुए उन्हें द्वितीय कोटि का रचनाकार माना एवं कहा ''इस 'शिव' शब्द को हम व्यर्थ समझकर निकाल देना चाहते हैं। सत्य एवं सुंदर पर्याप्त है।'' उन्होंने अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' की भी आलोचना की और शेखर एवं शशि के संबंध को अनैतिक एवं अनुपयोगितावादी माना।

उन्होंने गोदान के संबंध में दो बातें कही– 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' संज्ञा का विरोध किया तथा शहरी और ग्रामीण कथा के जोड़ को शिल्पगत दोष माना। उन्हें ये दोनों एक ही मकान में दो किरायेदारों की तरह दिखे।

सीमाएँ

1. सैद्धांतिक आलोचना पर व्यवस्थित रूप से कुछ नहीं लिखा।
2. साहित्य की समीक्षा में सामाजिक सोद्देश्यता को नज़र अंदाज किया।
3. शिल्प को अत्यधिक महत्त्व देने के कारण रूपवाद के बिंदु के आसपास पहुँच गए।
4. उपन्यास साहित्य पर कलम तो चलाई पर परिपक्व दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं कर पाए। इसलिए प्रेमचंद को दूसरी कोटि का रचनाकार माना। महाकाव्यात्मक उपन्यास की संज्ञा को ही भ्रामक माना इत्यादि।
5. प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता पर कलम तो चलाई किंतु एकतरफा दृष्टिकोण से नहीं बच पाए।
6. कई बिंदुओं पर अंतर्विरोधों के शिकार हैं। जैसे प्रेमचंद की आलोचना में नैतिक एवं सामाजिक आग्रहों से बचना चाहते हैं जबकि प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' की प्रशंसा इसी आधार पर करते हैं कि वह सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत करता हैं एक तरफ कवि की अनुभूति को ही महत्त्व देते हैं तो दूसरी ओर प्रयोगवाद को व्यक्ति केंद्रित होने के कारण **'बैठे ठाले का धंधा'** कहते हैं।

डॉ. नगेंद्र की आलोचना पद्धति

हिंदी समीक्षा के इतिहास में आचार्य नगेंद्र उस जटिल समय में पर्दापण करते हैं जब आचार्य शुक्ल आलोचना कर्म से दूर हुए थे तथा उनकी मान्यताएँ तत्कालीन छायावादी साहित्य के जीवन पर संकट के रूप में विद्यमान थीं। शुक्ल जी की मान्यताओं के विरोध में स्वच्छंदतावादी आलोचकों की एक वृहत्त्रयी उभरी थीं, जिसमें नंददुलारे वाजपेयी व शांतिप्रिय द्विवेदी के साथ डॉ. नगेंद्र को भी शामिल किया जाता है। डॉ. नगेंद्र का मूल योगदान छायावाद के महत्त्व की स्थापना से शुरू होकर वैश्विक साहित्यशास्त्र के निर्माण के प्रयास तक विस्तृत है।

नोट

नोट्स महाकवि सूरदास नामक व्यावहारिक आलोचना में आचार्य वाजपेयी ने सूर साहित्य की प्रभावशाली समीक्षा प्रस्तुत की है।

आलोचक की आलोचना पद्धति मूलत: उसके जीवन और साहित्य संबंधी दृष्टिकोण का ही विस्तार होती है। अत: सबसे पहले उस मूल दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है। **डॉ. नगेंद्र अपने मूल दृष्टिकोण में रसवादी और व्यक्तिवादी आलोचक हैं।** रसवादी होने का अर्थ है कि वे साहित्य तथा अन्य कलाओं का उद्देश्य रस की निष्पत्ति और साधारणीकरण मानते हैं। रस की उत्पत्ति पूरे समाज में होती है और उसकी पद्धति मूलत: वैयक्तिक ही होती है। यही कारण है कि डॉ. नगेंन्द्र जब आलोचना करते हुए साहित्य की उसके उद्देश्य की अनुकूलता में पहचान करते हैं तो सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ उन्हें आवश्यक नहीं लगते। इस प्रकार उनकी समीक्षा पद्धति साहित्य की व्याख्या साहित्य के सिद्धांतों से करती है और साहित्य के उद्देश्य के अनुरूप शिल्प या कला के पक्ष को पर्याप्त महत्त्व देती है।

आधुनिक हिंदी आलोचना पर पश्चिम के प्रभाव की चर्चा प्राय: की जाती है। इस दृष्टि से कहीं-कहीं डॉ. नगेंद्र भी सिंगमंड फ्रायड की मनोविश्लेषणवादी मान्यताओं से प्रभावित प्रतीत होते हैं। फ्रॉयड की मान्यता थी कि अचेतन मन में विद्यमान दमित भाव जब जीवन शक्ति से प्रेरित होकर व्यक्त होते हैं तो साहित्य एवं अन्य कलाओं का जन्म होता है। डॉ. नगेंद्र की कुछ व्यावहारिक समीक्षाएँ फ्रायड के सिद्धांतों से जुड़ी हुई दिखती हैं। **'तुलसी और नारी', 'देव और उनकी कविता'** के अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों के विवेचन में भी यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सैद्धांतिक रूप से देखें तो 1943 में लिखित उनके निबंध **'छायावाद की परिभाषा'** में यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है तथा परवर्ती निबंधों की साहित्य प्रेरणा तथा साहित्य में आत्माभिव्यक्ति से और गहरा होता गया है। इतना अवश्य है कि वह फ्रॉयड की मान्यताओं को वैसा का वैसा स्वीकार करके उसमें चेतन जीवन को भी जोड़ देते हैं। **'मिथक और साहित्य'** में स्पष्टत: लिखते हैं कि साहित्य काफी अंशों में वैयक्तिक अवचेतन की ही नहीं व्यक्ति की चेतन की भी सृष्टि है।

डॉ. नगेंद्र ने अपनी व्यावहारिक समीक्षा का आरंभ छायावाद पर कुछ निबंधों के माध्यम से 1937 ई. में किया। इसके अतिरिक्त इसी समय में उन्होंने अपनी पहली पुस्तक **'सुमित्रानंदन पंत'** लिखी। उनकी मान्यता थी कि आचार्य शुक्ल ने जो छायावाद की समीक्षा की थी उसके खंडन के अभी तक के प्रयास कुछ महत्त्वपूर्ण होते हुए भी पर्याप्त नहीं हैं। वे मानते हैं कि 'शांतिप्रिय द्विवेदी' ''छायावाद के रस का आस्वादन तो करा सके लेकिन स्वरूप स्पष्ट नहीं कर सके''। दूसरी ओर नंद दुलारे वाजपेयी के संबंध में वे स्पष्टत: स्वीकार करते हैं कि वे पहले व्यक्ति है जिन्होंने ''निर्भीक और निर्भ्रांत होकर छायावाद के महत्त्व को स्वीकृत और प्रतिष्ठित किया।'' इतना होने के बाद भी वे यह महसूस करते थे कि वाजपेयी जी छायावाद की व्याख्या में दार्शनिकता का अनावश्यक आवरण चढ़ाते रहें और ''कलापक्ष में इन्हें जैसे कुछ कहने को न था।'' इस पृष्ठभूमि पर डॉ. नगेंद्र ने छायावाद की समीक्षा एक ऐसे दृष्टिकोण से करनी आरंभ की जिसमें आध्यात्मिकता का स्थान मनोश्विलेषण ने लिया तथा कथ्य का स्थान बहुलांश में शिल्प को मिलने लगा। पंत पर लिखी उनकी पुस्तक को आचार्य शुक्ल ने भी **'ठीक-ठिकाने की पुस्तक'** कहकर प्रशंसित किया, **'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ'** में उनकी मनावैज्ञानिक और कलात्मक दृष्टि पूरी गहराई से व्यक्त हुई।

व्यावहारिक समीक्षा में छायावाद के अतिरिक्त जिस युग पर डॉ. नगेंद्र की चेतना सक्रिय हुई वह है रीतिकाल। उन्होंने गहरे अध्ययन और शोध के बाद **'रीतिकाल की भूमिका'** तथा **'देव और उनकी कविता'**। ये दो पुस्तकें लिखी। रीतिकाव्य के संदर्भ में इन पुस्तकों को सामाजिक प्रतिमानों की दृष्टि से तो नहीं किंतु शास्त्रीय दृष्टि से आलोचना का प्रतिमान माना जाता है। उन्होनें न केवल भक्तिकाल और रीतिकाल के जटिल संबंधों को स्पष्ट किया बल्कि रीतिकाल के भीतर 'अपराध-बोध' के माध्यम से भोगवादी शृंगार तथा नैतिकता जैसे विरोधी भावों की एक साथ द्वंद्वात्मक उपस्थिति को भी व्याख्यायित किया। रीतिकाव्य के अतिरिक्त व्यावहारिक समीक्षा में उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' जैसी रचनाओं पर तो लिखा ही, समकालीन साहित्य पर ही पर्याप्त लिखा।

नोट

जिसमें 'नई कविता', 'नई समीक्षा' जैसे विषय प्रमुख रहे। कहानी को उन्होंने साहित्यिक विधा मानने में रूचि नहीं दिखाई।

समीक्षा के इतिहास में डॉ. नगेंद्र का महत्त्व जितना व्यवहारिक समीक्षा के कारण है, उससे कहीं अधिक सैद्धांतिक समीक्षा के कारण है। सैद्धांतिक समीक्षा के प्रति उनका रूझान 1939 ई. से ही व्यक्त होने लगा था। जब उन्होंने पश्चिम के मनोवैज्ञानिक और नए समीक्षक आई. ए. रिचर्ड्स की पुस्तक **'प्रिंसीपल ऑफलिटरेरी क्रिटिसिज्म'** से प्रभावित होकर **'साहित्य में कल्पना का उपयोग'** शीर्षक से सैद्धांतिक निबंध लिखा। सैद्धांतिक चिंतन की यह प्रेरणा धीरे-धीरे बढ़ती गई और 1946 ई. में देव और उनकी कविता लिखते समय उनकी मानसिकता में गहरा परिवर्तन हो गया। **'आस्था के चरण'** में वे स्वयं लिखते हें–''रीतिकाव्य के अध्ययन के समय में व्यावहारिक आलोचना से सैद्धांतिक आलोचना की ओर आकृष्ट हो चला था।'' इसके बाद की प्राय: संपूर्ण समीक्षा-कर्म सैद्धांतिक समीक्षा से जुड़ी रही है।

डॉ. नगेंद्र की सैद्धांतिक आलोचना का वास्तविक विकास छठे दशक में दिखाई देने लगता है। जब **'साहित्य के मान', 'कविता क्या है'** और **'साहित्य का धर्म'** जैसे निबंध और **'भारतीय काव्य शास्त्र'** की भूमिका जैसा ग्रंथ प्रकाश में आता है। सैद्धांतिक चिंतन की पराकाष्ठा 1964 ई. में रचित उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक **'रस सिद्धांत'** में हुई, जिसमें उन्होंने अनुभूति तत्व को विशेष महत्त्व देते हुए साधारणीकरण की एक मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्या की। आचार्य शुक्ल की 'रस-मीमांसा' में लोक मंगल का तत्व अनिवार्यत: निहित होने के कारण छायावाद का आत्मपरक साहित्य उसके माध्यम से अपना महत्त्व नहीं प्राप्त कर पा रहा था, लेकिन डॉ. नगेंद्र द्वारा की गई आत्मनिष्ठ आनंदवादी व्याख्या से छायावादी कविताएँ भी रसात्मक प्रतिमानों पर खरी उतरने लगीं।

डॉ. नगेंद्र ने सैद्धांतिक समीक्षा में एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि सिद्धांत-चिंतन की मूल रचनाओं को अनुवाद के माध्यम से हिंदी के पाठक तक पहुँचाया। इस दृष्टि से उन्होंने संस्कृत के **'ध्वन्यालोक', 'वक्रोक्तिजीवित', 'काव्यलंकार सूत्रवृत्ति'** आदि ग्रंथों को हिंदी में प्रस्तुत किया ही, पश्चिम की मूल रचनाओं जैसे–**'अरस्तु का काव्यशास्त्र', 'काव्य में उदात्त तत्व'** को भी हिंदी जगत के सामने रखा। इससे सैद्धांतिक चिंतन उस शास्त्रवादी स्थिति से मुक्त हुआ, जिसमें मूल चिंतक को पढ़े बिना उसके सिद्धांतों की चर्चा की जाती थी।

डॉ. नगेंद्र की समीक्षा पद्धति का अंतिम चरण वह है जहाँ वे पश्चिमी साहित्य चिंतन के विषयों में रत हुए। यह प्रवृत्ति यूँ तो उनके शुरुआती समय में ही दिख चुकी थी, किंतु 1970 के आसपास पुन: विकसित हुई तथा **'काव्य बिंब', 'नई समीक्षा नए संदर्भ'** जैसी पुस्तकों में दिखाई दी। पश्चिमी पद्धति और सिद्धांतों को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने का यह मोह उनमें उत्तरोत्तर बढ़ता गया तथा अपने रचनाकाल के उत्तरार्द्ध में उन्होंने **'शैली विज्ञान', 'मिथक और साहित्य'** और **'साहित्य का समाजशास्त्र'** जैसे नवीन और गंभीर विषयों पर लिखने का साहस किया। इन विषयों का चिंतन पक्ष उनके चिंतन से मेल नहीं खाता, किंतु इतना अवश्य है कि पश्चिम के सिद्धांतों को उनके मर्म के साथ समझाने में वे प्राय: सफल रहे हैं।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ. नगेंद्र हिंदी समीक्षा के वे स्तंभ हैं जिनका समीक्षा-कर्म परिमापण, अनुशासन, निरंतरता तथा गुणवत्ता सभी दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, उन्होंने न केवल छायावाद के लिए आवश्यक सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा के प्रतिमान दिए, न केवल रीतिकाव्य जैसे उपेक्षित प्रसंग को समझने-समझाने का भागीरथ प्रयास किया, बल्कि इससे आगे बढ़कर पश्चिमी साहित्य सिद्धांतों का गहरा अध्ययन करके उन्हें मिलाकर एक वैश्विक साहित्य शास्त्र बनाने का भी प्रयास किया। इस चुनौती को वे अपने ही शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं–

''भारतीय तथा पश्चिमी दर्शनों की तरह यहाँ के काव्यशास्त्र भी एक दूसरे के पूरक हैं और इसके आधार पर हमारे अपने साहित्य की परंपरा के अनुकूल एक संश्लिष्ट आधुनिक काव्यशास्त्र का निर्माण संभव है।''

डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना पद्धति

हिंदी समीक्षा के इतिहास में डॉ. शर्मा का महत्त्व एक प्रमुख आलोचना पद्धति 'प्रगतिवादी समीक्षा' के पितामह के रूप में स्वीकार किया गया है। उनकी आलोचना का क्षेत्र न केवल विषय की दृष्टि से बल्कि कार्य की दृष्टि

नोट

से अत्यधिक विस्तृत है। उन्होंने हिंदी समीक्षा की चर्चा करते हुए जिन क्षेत्रों को छुआ है उनमें संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य, भाषा विज्ञान, इतिहास, मार्क्सवाद, उपनिवेशवाद, समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र जैसे विषय परस्पर संलयित होकर व्यक्त हो गए हैं। उनकी आलोचना का काल भी 1938 से शुरू होकर 2000 ई. तक 62 सालों में विस्तृत हैं इस रूप में समय के साथ-साथ कुछ बाहरी परिवर्तन तो उनकी आलोचना में दिखाई देते हैं पर जैसा कि उन्होंने खुद कहा है कि उनका दृष्टिकोण तो मूलत: एक ही है जो समय के साथ-साथ कुछ बदल गया है। उन्हें आलोचकों में रामचंद्र शुक्ल, उपन्यासकारों में प्रेमचंद तथा कवियों में निराला सर्वाधिक प्रिय है। तथा इन्हीं पर लिखी उसकी तीन पुस्तकें 'आचार्य शुक्ल और उनकी हिंदी आलोचना', 'प्रेमचंद' और 'निराला का साहित्य साधना' उनकी आलोचना की महत्तम उपलब्धियाँ है।

किसी समीक्षक का मूल्यांकन मूलत: उस दृष्टिकोण मूल्यांकन होता है जिसे वह समीक्षक अपनी कृतियों में धारण करता है। इस दृष्टि से देखें तो डॉ. शर्मा मूलत: एक मार्क्सवादी रचनाकार है। किंतु उन्होंने अपने सृजनात्मक विवेक से मार्क्सवाद का एक प्रगतिशील संस्करण तैयार किया है। उन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक **'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद'** में स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार लेनिन आदि दार्शनिक ने मार्क्सवाद को परिस्थितियों के अनुकूल बनाया है वैसे ही भारत की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवाद में आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं।

क्या आप जानते हैं डॉ. रामविलास शर्मा को प्रगतिवादी समीक्षा पद्धति के पितामह के रूप में स्वीकार किया जाता है।

डॉ. शर्मा न केवल मार्क्सवाद में संशोधन की बात कहते हैं बल्कि करके भी दिखाते हैं। वे सिद्ध करते हैं कि मार्क्स द्वारा विश्लेषित औद्योगिक पूँजीवाद चाहे इंग्लैंड में पहले आया हो किंतु पूँजीवाद का एक और प्रकार सौदागरी पूँजीवाद 12वीं-13वीं शताब्दी में ही आ चुका था। मार्क्स ने उत्पादित प्रणाली को आधार रचना तथा शेष सामाजिक पक्षों को 'अधिरचना' माना था तथा आधार रचना में परिवर्तन से अधिरचना की स्थिति को माना था, डॉ. शर्मा कहते हैं कि यह बात सौ फीसदी सत्य नहीं है क्योंकि पुरानी अधिरचना के तत्व लिए बिना नई अधिरचना नहीं बन सकती। वे आर्थिक कारणों के साथ-साथ सामाजिक कारणों को महत्त्व देते हैं। क्रांति में मजदूरों के साथ किसानों को महत्त्व देते हैं तथा इस प्रकार मार्क्सवाद का एक नया संस्करण तैयार करते हैं।

साहित्य के संबंध में भी उनकी प्रमुख मान्यताएँ या तो मौलिक हैं या सामान्य प्रगतिवादियों से अलग है। सबसे पहले वे 'सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास' नामक निबंध में सौंदर्य को केवल व्यक्ति या विषय में नियत करने के स्थान दोनों की अंतर्क्रिया के रूप में देखते हैं। वे साहित्य को अर्थव्यवस्था, भाषा, समाज, भूगोल से बनने वाली जातीय मानसिकता से जोड़कर देखते हैं। उर्वशी की समीक्षा करते हुए प्रगतिशील आंदोलन के लोकवादी स्वरूप के भीतर रस सिद्धांत को स्वीकार कर लेते हैं। निराला की महानता को स्पष्ट करते हुए उनकी जन्मजात प्रतिभा को स्वीकार करते हैं और प्रगतिशील आंदोलन में प्रेम की संभावना को घोषित रूप से स्वीकृति देते हुए कहते हैं–''प्रेम और प्रगतिशील विचारधारा में कोई आंतरिक विरोध नहीं लेकिन स्वामी विवेकानंद से प्रभावित होने वाले क्रांतिकारी यह समझते आए थे कि क्रांति और ब्रह्मचर्य का अटूट संबंध है जैसे आजकल के बहुत से कवि और कहानीकार समझते हैं कि आधुनिकता बोध का अटूट संबंध परकीया प्रेम से है।'' इसी सृजनात्मक शक्ति का परिणाम है कि वे प्रगतिशील होकर भी वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति के साहित्य का सूक्ष्म विश्लेषण कर पाते हैं।

डॉ. शर्मा की व्यावहारिक आलोचना प्रस्थान बिंदु तत्कालीन अन्य समीक्षकों की तरह आचार्य शुक्ल ही हैं। उन्होंने उस समय के आलोचकों की शुक्ल जी का खंडन करने की प्रवृत्ति को देखते हुए उनके महत्त्व को इन शब्दों में रेखांकित किया कि हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्त्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद व कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया, जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से निराला ने। उन्होंने शुक्ल जी के छायावाद संबंधी मत को समझाते हुए तर्क दिया; वे नएपन के नहीं बल्कि अगोचरता, परोक्षता तथा लाक्षणिकता के विरुद्ध थे, नहीं तो प्रसाद की लोकपक्ष समन्वित कविता तथा पंत

की प्राकृतिक रहस्य भावना का समर्थन नहीं करते। रीति काव्य के संबंध में उन्होंने डॉ. नगेंद्र के मत का खंडन करते हुए शुक्ल जी के मत की पुन: प्रतिष्ठा की तथा संत साहित्य की समीक्षा में शुक्ल जी के अधूरे कार्य को पूरा करते हुए उसके महत्त्व का उल्लेख किया।

डॉ. शर्मा की आलोचना का चरम बिंदु निराला साधना है। जो कि वस्तुत: रामविलास शर्मा की ही साहित्य साधना है। इस रचना के पहले खंड में उन्होंने निराला के व्यक्तित्व तथा उनकी निर्माणक परिस्थितियों की समीक्षा की है। यह हिंदी समीक्षा का वह दुर्लभ बिंदु है; जहाँ व्यक्तित्व और कृतित्व अलग-अलग न रहकर एक दूसरे में घुल मिल जाएँ। निराला हिंदी में प्राय: शक्ति, ऊर्जा तथा ओज के रचनाकार माने गए हैं, किंतु डॉ. शर्मा ने उनके साहित्य का गहरा विश्लेषण करते हुए करुणा को उसके मूल भाव के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा उन्हें पश्चिम की महान ट्रेजेडी लेखन की परंपरा से संबद्ध किया इतना ही नहीं उन्होंने निराला-साहित्य के कला पक्ष का भी विस्तृत-अध्ययन किया है। ट्रेजिक सेंस की दृष्टि से वाल्मीकि, भवभूति तथा तुलसी से और समग्रता की दृष्टि से 'टैगोर, तुलसी और सूर से निराला की तुलना और मूल्यांकन किया है। निराला की वास्तविक महानता पहचानने के लिए हिंदी समीक्षा सचमुच उनके प्रति आभारी है।

डॉ. शर्मा ने उन रचनाकारों के महत्त्व की स्थापना की जो किसी न किसी रूप में साहित्य की जनवादी परंपरा से जुड़े हुए थे। ऐसे रचनाकरों में प्रेमचंद का नाम अग्रगण्य है। उनके 'सेवासदन' को डॉ. शर्मा ने भारतीय नारी की पराधीनता का पर्दाफाश करने वाला उपन्यास, तो गोदान की ग्रामीण और शहरी कथाओं को मेहनत की दुनिया और मुनाफे की दुनिया का अंतर बताया। उन्हीं की वैज्ञानिक आलोचना दृष्टि का परिणाम था कि उस समय तक द्वितीय श्रेणी के रचनाकार समझे जा रहे प्रेमचंद प्रथम श्रेणी के साहित्यकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर सकें। इसके अतिरिक्त **'भारतेंदु युग'** नामक पुस्तक में भारतेंदु और उनके युगीन लेखकों के महत्त्व का अंकन किया तथा 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' में महावीर प्रसाद द्विवेदी के आर्थिक तथा अन्य विषयों के विश्लेषण को महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने अपने समसामयिक साहित्यकारों में भी वृंदावन लाल वर्मा, नागर, केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन के महत्त्व का अंकन किया है और प्रयोगशील कविता से प्रेम न होते हुए भी अज्ञेय, शमशेर तथा मुक्तिबोध का मार्मिक विश्लेषण किया है।

डॉ. शर्मा अपने साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ-साथ अपनी विध्वंसात्मक आलोचना शैली के लिए भी प्रसिद्ध हैं। कई विद्वान यहाँ तक कहते हैं कि पहले वे अपना शत्रु तय करते हैं फिर उसके विचारों को पढ़कर तथा संभावित विचारों की कल्पना करके वे आक्रामक शैली में समीक्षा लिखते हैं। इस दृष्टि से **'पंत'** कृत **'स्वर्ण किरण'** और **'स्वर्ण धूलि'** की समीक्षाएँ महत्त्वपूर्ण है। लेकिन विध्वंसात्मक भंगिमा रखते हुए भी वे आलोचकों को चुनौती अवश्य देते हैं कि जो बातें मुझसे छूट गई हों, उन्हें प्रकाश में लाइए और जो बातें मैंने गलत कही हों उनका युक्तिपूर्ण खंडन करिए (मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य)।

समग्र रूप में डॉ. शर्मा के आलोचना कर्म के संबंध में यही कहा जा सकता है कि विस्तार और गहराई की दृष्टि से वे अप्रतिम हैं ही अपने मौलिक चिंतन तथा लोकबद्ध मान्यताओं के कारण प्रगतिशील समीक्षा के पितामह बन जाते हैं। उनकी आक्रामक शैली कहीं-कहीं औदात्य का अतिक्रमण अवश्य करती है, किंतु जटिल से जटिल बात को सरलतम शब्दों में ओजपूर्ण प्रवाह के साथ कहने की उनकी क्षमता अनूठी है। उनसे विद्वानों की सहमति हो या नहीं उनसे जूझे बिना आलोचना का विकास संभव नहीं है।

डॉ. नामवर सिंह की आलोचना पद्धति

शुक्लोत्तर आलोचना के प्रमुख स्तंभ डॉ. नामवर सिंह ने प्राचीन साहित्य के साथ-साथ नए से नए हिंदी कवियों तथा लेखकों को भी अपनी आलोचना का विषय बनया है। हिंदी में पृथ्वीराज रासो से लेकर मुक्तिबोध और धूमिल तक की लंबी और विशाल काव्य परंपरा को आत्मसात् करना नामवर जी के ही वश की बात है। इन्होंने लिखना शुरू किया था अपभ्रंश साहित्य से किंतु आजकल नई कविता और उससे भी आगे की कविता पर सबसे अधिक सशक्त टिप्पणी करने वालों में वे अग्रिम पंक्ति में खड़े हैं।

डॉ. नामवर सिंह ने अपना आलोचक जीवन **'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान'** से शुरू किया था। इसमें अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच-बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण एवं

नोट

सुचिंतित हैं। वे सूक्ष्मदर्शिता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। इसमें अपभ्रंश साहित्य की कतिपय महत्त्वपूर्ण रचनाओं का परिचय देते हुए उनके सौंदर्य पक्षों का उद्‌घाटन किया गया है। उनके अनुसार भावधारा के विषय में अपभ्रंश से हिंदी का जहाँ केवल ऐतिहासिक संबंध है, वहाँ काव्य रूपों और छंदों के क्षेत्र में उस पर अपभ्रंश की गहरी छाप है।''

सिद्धों की रचनाओं के विषय में उनका विचार है कि कुल मिलाकर सिद्धों की रचनाओं में जीवन के प्रति बहुत सकारात्मक दृष्टिकोण है। हेमचंद के प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश के उद्धत दोहों की नामवर जी ने संदर्भ देते हुए ऐसी मार्मिक व्याख्या की है कि तत्कालीन समाज का निहायत आत्मीय रूप हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है।

नोट्स प्रगतिवादी हिंदी आलोचना के एक समर्थ हस्ताक्षर के रूप में डॉ. नामवर सिंह का नाम लिया जाता है।

'छायावाद' नामक कृति में नामवर जी ने छायावाद की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उसमें निहित सामाजिक यथार्थ का उद्‌घाटन किया, जो अपने आप में प्रगतिवादी आलोचना के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। 12 अध्यायों में विभक्त इस कृति में विभिन्न अध्याय के विवेच्य विषयों को सूचित करने के लिए जो शीर्षक दिए गए हैं, उनमें से अधिकांश छायावादी कवियों की पंक्तियों के ही टुकड़े हैं। शीर्षकों से ही स्पष्ट है कि विवेचन में छायावाद काव्य वस्तु से सैद्धांतिक निष्कर्ष तक पहुँचा गया है। यहाँ पर गुण से नाम की ओर बढ़ा गया है, तथा नामकरण की सार्थकता इस विशिष्ट काव्यधारा की काव्य-संपत्ति के आधार पर निश्चित की गई है। किसी वाद पर हिंदी में इस वैज्ञानिक और निगमनात्मक ढंग से पहली बार विचार किया गया है। इसे रहस्यवाद, स्वच्छंदता वाद और छायावाद नाम से अभिहित किया गया है। इसमें छायावाद की विभिन्न विशेषताओं, रचनाओं, रचनाओं का विधिवत विवेचन किया गया है।

छायावाद की अन्यतम कृति **'कामायनी'** की प्रतीकात्मकता एवं रूपकत्व पर नामवर सिंह ने विचार किया है। इन्होंने कामायनी के रूपकत्व के सामाजिक आयाम पर विचार करते हुए कहा है कि **''इसमें आधुनिक समस्याओं पर भी विचार किया गया है।''** कामायनी में व्यंजित प्रतीकों को लेकर डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि ''देव संपन्नता का **ध्वंस** वस्तुत: हिंदू राजाओं और मुसलमान नवाबों तथा मुगल बादशाहों के विध्वंस का प्रतीक है। हिम संस्कृति प्राचीन जड़ता तो उषा नवजागरण की प्रतीक है। मनु देव-सभ्यता का प्रतीक है, कुमार प्रजातांत्रिक सभ्यता का। देवासुर संग्राम आत्मवाद एवं बुद्धिवाद के संघर्ष का प्रतीक है। इस प्रकार प्रसाद ने कामायनी में आधुनिक भारतीय सभ्यता के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण किया है। यह भारत की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य है।''

नामवर सिंह ने निराला की लंबी कविताओं 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्तिपूजा' का विश्लेषण अत्यंत सहृदयता और भाषिक सर्जनात्मकता के स्तर पर किया है। कथा-साहित्य में प्रेमचंद तथा उनके समकालीनों के साथ ही साथ उन्होंने नई कविता के तर्ज पर नई कहानी के तमाम कथाकारों का भी सहानुभूति एवं संवेदना के धरातल पर विश्लेषण-मूल्यांकन किया है।

'कविता के नए प्रतिमान' में नामवर जी ने मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' की समीक्षा कर सबके लिए समीक्षा का द्वार खोल दिया। नामवर सिंह के अनुसार 'अंधेरे में' का मूल कथ्य **अस्मिता की खोज** है। अस्मिता की अभिव्यक्ति, परम अभिव्यक्ति से जोड़ते हुए आलोचक ने कवि मुक्तिबोध के लिए अस्मिता की खोज को अभिव्यक्ति की खोज माना है। एक कवि के लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है। मुक्तिबोध ने आत्मसंघर्ष के साथ-साथ बाह्य सामाजिक संघर्ष को भी माना है। आत्म-संघर्ष की परिणति अंततः सामाजिक संघर्ष में होती है।

नामवर सिंह ने सैद्धांतिक आलोचना के क्षेत्र में भी काफी काम किया है। सिद्धांत-निरूपण संबंधी उनकी विशिष्ट प्रतिमा **'कविता के नए प्रतिमान'** में दृष्टिगत होती है। इस पुस्तक के प्रथम खंड में उन्होंने प्रतिष्ठित काव्य

नोट

प्रतिमानों की विस्तृत आलोचना करते हुए उनकी सीमाएँ बताई हैं, तथा द्वितीय खंड में नई कविता के संदर्भ में काव्य-प्रतिमानों के प्रश्न को नए सिरे से उठाया गया है।

टास्क हिंदी आलोचना का विकास एवं प्रमुख आलोचकों के विषय में संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

नई कविता के संदर्भ में नए काव्य प्रतिमानों का प्रश्न उठाते हुए नामवर सिंह लिखते हैं–''कविता के प्रतिमान को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से आत्मपरक नई कविता की दुनिया से बाहर निकलकर उन कविताओं को भी विचार की सीमा में ले आना आवश्यक है, जिन्हें किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में सामान्यत: **'लंबी कविता'** कहा जाता है।'' कविताओं के इस आत्मपरक वर्ग के विरुद्ध उन्होंने मुक्तिबोध की लंबी कविताओं का उदाहरण देकर सामाजिक वस्तुपरक काव्य-मूल्यों की स्थापना पर ज़ोर दिया, जो अपनी दृष्टि में सामाजिक और वस्तुपरक हैं और आज के ज्वलंत एवं जटिल यथार्थ को अधिक से अधिक समेटने के प्रयास में कविता को व्यापक रूप में नाट्य-'विचार प्रदान कर रहे हैं और इस तरह तथाकथित बिंबवादी काव्यभाषा के दायरे को तोड़कर सपाटबयानी आदि अन्य क्षत्रों में कदम रखने का साहस दिखा रहे हैं।'' स्पष्ट है कि नामवर सिंह ने जिन काव्य-मूल्यों का प्रश्न उठाया है, उनमें भाव-बोध से लेकर काव्य भाषा तक के स्तर तक काव्य-सृजन को एक सापेक्ष ईकाई के रूप में देखने का प्रयास है जिसमें रचना के निर्माण में एक विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक परिवेश के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

नामवर सिंह ने हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन के संबंध में भी अपना क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है और प्रगतिवादी दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य के इतिहास को फिर से लिखे जाने की आवश्यकता बताई है। साथ ही **'इतिहास और आलोचना'** के अंतर्गत उन्होंने व्यापकता और गहराई, जैसे महत्त्वपूर्ण काव्य-मूल्यों का परस्पर सहयोगी बताने का मौलिक साहस दिखाया जबकि इन दोनों को परस्पर विरोधी गुणों के रूप में स्वीकार किया गया था।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. नामवीर सिंह की साहित्यिक दृष्टि से एक ओर नैरन्तर्य का महत्त्व है तो दूसरी ओर अखंडता या संश्लिष्टता का।
8. महाकवि सूरदास नामक व्यावहारिक आलोचना में आचार्य वाजपेयी ने सूर साहित्य की प्रभावशाली समीक्षा प्रस्तुत की है।
9. डा. शर्मा ने उन रचनाकारों के महत्त्व की स्थापना की जो किसी न किसी रूप में साहित्य की जनवादी परंपरा से जुड़े हुए थे।

11.2 सारांश (Summary)

- हिंदी युगीन आलोचना का वास्तविक आरंभ भारतेंदु युग से ही माना जा सकता है। द्विवेदीयुगीन आलोचना भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित हुई तथा शुक्लयुगीन हिंदी आलोचना में केंद्रीय समीक्षक आचार्य शुक्ल हैं।
- आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में वैसा ही क्रांतिकारी परिवर्तन किया जैसा प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में किया था। उन्होंने साहित्य को रीतिवादी मानसिकता से पूर्णत: मुक्त किया तथा पहली बार सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा का समन्वय भी किया। रस जैसे वैयक्तिक तत्व को लोकमंगल से जोड़कर उसके भीतर निहित सामाजिक पक्ष को उभारा। उन्होंने हिंदी समीक्षा को न केवल

नोट

संस्कृत काव्यशास्त्र के मानदंडों से संबद्ध किया बल्कि अंग्रेज़ी समीक्षा के प्रतिमानों का भी पर्याप्त समन्वय किया। यही कारण है कि इतना समय बीत जाने के बाद भी समीक्षा के इतिहास में उनका महत्त्व अक्षुण्ण है।

- हिंदी समीक्षा के इतिहास में आचार्य द्विवेदी अपने युग के उस खालीपन को भरते हैं जो आचार्य शुक्ल जैसे विराट व्यक्तित्व के अभाव से पैदा हो गया था। वे हिंदी साहित्य को एक ओर संपूर्ण भारतीय परंपरा से जोड़ते हैं तो दूसरी ओर जीवन के संपूर्ण ज्ञानात्मक और कलात्मक पक्षों से। इस प्रक्रिया में शुक्ल जी की तार्किक और विधेयवादी आलोचना पद्धति के समक्ष वे सृजनात्मक लालित्यपूर्ण तथा देशकाल संश्लिष्ट आलोचना पद्धति को स्थापित करते हैं। यह पद्धति शुक्ल जी के चिंतन का विरोध नहीं हैं बल्कि उससे मिलकर आलोचना की संपूर्णता का प्रयास है।
- वाजपेयी जी ने रचना एवं आलोचना के संबंधों को भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार रचना में भावनाओं के परिष्कार और जीवन को गहराई से समझने की क्षमता तो होनी चाहिए किंतु आलोचना या नैतिक मापदंड किसी भी अर्थ में रचना के नियंत्रक बन जाएँ, यह उचित नहीं है। रचना उपदेश न बन जाए इसके लिए आवश्यक है कि रचना की स्वायत्तता बनी रहे।

11.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **आलोचक**–आलोचना करने वाला, साहित्य के अंतर्गत पद या गद्य की समीक्षा करना
2. **सामाजिक दायित्व**–सामाजिक जिम्मेदारियाँ
3. **आंदोलन**–क्रांति करना, कोई मांग करना

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी युगीन आलोचना का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
2. स्वच्छंदतावादी समीक्षा, व्यावहारिक समीक्षा तथा नई समीक्षा पर टिप्पणी लिखिए।
3. हिंदी आलोचना के प्रमुख आलोचकों की आलोचना पद्धति का वर्णन कीजिए।
4. प्रगतिवादी समीक्षा के पितामह के रूप में डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना पद्धति की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. भारतेंदु युग	2. भावयोग	3. शुक्ल जी
4. (ख)	5. (क)	6. (घ)
7. असत्य	8. सत्य	9. सत्य

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास–*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*

Vinod Kumar, Lovely Professional University

नोट

इकाई–12 : गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ–रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण का विकास

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
12.1 गद्य साहित्य: विविध विधाएँ एवं स्वरूप
12.1.1 रेखाचित्र
12.1.2 रेखाचित्र के लिए ध्यातव्य बातें
12.1.3 रेखाचित्र और संस्मरण
12.1.4 वर्गीकरण
12.1.5 हिंदी रेखाचित्र का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकास-क्रम
12.1.6 संस्मरण
12.1.7 संस्मरण-लेखक के लिए ध्यातव्य बातें
12.1.8 संस्मरण-लेखन के आधार
12.1.9 संस्मरण के तत्व या उपकरण
12.1.10 संस्मरण और अन्य साहित्यिक विधाएँ
12.1.11 संस्मरण और जीवनी-साहित्य
12.1.12 संस्मरण और यात्रा साहित्य
12.1.13 संस्मरण और आत्मकथा
12.1.14 संस्मरण के प्रकार
12.1.15 हिंदी संस्मरण साहित्य का विकास
12.1.16 जीवनी साहित्य
12.1.17 जीवनी लेखक के लिए ध्यातव्य बातें
12.1.18 जीवनी के तत्व
12.1.19 जीवनी और संस्मरण
12.1.20 जीवनी और रेखाचित्र
12.1.21 जीवनी और आत्मकथा
12.1.22 जीवनी-साहित्य के विविध प्रकार (भेद या वर्गीकरण)
12.1.23 हिंदी जीवनी साहित्य की विकास-यात्रा
12.2 सारांश (Summary)
12.3 शब्दकोश (Keywords)
12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- रेखाचित्र का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकासक्रम जानने में।
- संस्मरण लेखन का आधार जानने में।
- जीवनी साहित्य को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

बीसवीं सदी में भारतीय जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में विविध प्रयोग हुए। आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी और आलोचना के उद्भव एवं विकास के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक अंगरेजी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन ने नयी प्रवृत्तियों और नवीन विधाओं को जन्म दिया, जिनमें गद्यकाव्य, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत रिपोर्ताज, इंटरव्यू, डायरी, फीचर, पत्र-साहित्य, हास्य-व्यंग्य आदि मुख्य हैं। वस्तुत: ये सभी विधाएँ यूरोपीय साहित्य की देन हैं। अत: इनका मूल प्राचीन साहित्य में ढूँढ़ना दुराग्रह मात्र होगा। संक्षेप में, इन नव्यतम विधाओं के स्वरूप-ज्ञान का विवेचन क्रमश: निम्न प्रकार है।

12.1 गद्य साहित्य: विविध विधाएँ एवं स्वरूप

12.1.1 रेखाचित्र

रेखाचित्र हिंदी साहित्य की अन्यतम, महत्त्वपूर्ण और आधुनिक विधा है। यह चित्रकला और साहित्य के सुंदर संयोग से उद्भूत एक अभिनव कला-रूप है। रेखाचित्र-लेखक साहित्यकार के साथ-साथ चित्रकार भी होता है। थोड़े से शब्दों में किसी वस्तु, घटना, तथ्य और दृश्य को अंकित कर देना अथवा किसी व्यक्ति का सजीव चित्र शब्दांकित कर देना बहुत ही कठिन काम है। ''जिस प्रकार चित्रकार को चित्र-निर्माण के समय तूलिका को बहुत ही कुशलता और सफाई से चलाना पड़ता है, अन्यथा रंग के किंचित् गहरे या हल्के हो जाने से चित्र बिगड़ सकता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार को अपने शब्द-चित्र के निर्माण में बहुत ही सावधान रहना पड़ता है। एक-एक शब्द की प्रयुक्ति में उसकी कुशलता अपेक्षित होती है।'' रेखाचित्र में किसी वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य अथवा व्यक्ति के बाह्य रूप के माध्यम से उसकी आंतरिक विशेषता को उद्घाटित करने का यत्न किया जाता है। चित्रकला के समान ही रेखाचित्र की विषयवस्तु की संघटना देशानुरूप होती है।

रेखाचित्र का शाब्दिक अर्थ है–'रेखाओं से बने चित्र'। अंगरेजी में इसे 'थंब-नेल स्केच अर्थात् 'अंगूठे के नाखून से निर्मित रेखांकन कहते हैं, पर साहित्य क्षेत्र में इसका कोई अर्थ नहीं निकलता। रेखाचित्र का साहित्यिक आशय है–'शब्द-चित्र''। वस्तुत: 'रेखाचित्र' अंगरेजी 'स्केच' का हिंदी पर्याय है। 'रेखाचित्र' के लिए हिंदी में 'व्यक्ति-चित्र', 'शब्द-चित्र', 'व्यक्ति-चित्र लेख' आदि अन्य नामों का भी प्रयोग होता है। इन तीनों नामों से अधिक उपयुक्त शब्द 'रेखाचित्र' ही है जो आजकल इस विधा के लिए रूढ़ हो चुका है।

'रेखाचित्र' को एक निश्चित परिभाषा में बाँध पाना निश्चय ही दुष्कर कार्य है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलामय स्पर्श से चित्र पटल पर अंकित विशृंखल रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को सँवार कर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मन:पटल पर विशृंखल रूप में बिखरी हुई शत-शत स्मृति-रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रंजित कर जीते-जागते शब्द-चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द-चित्र रेखाचित्र कहलाता है।'' डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार–''संपर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के

मर्मस्पर्शी स्वरूप को, देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभार कर देखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए, 'रेखाचित्र' या 'शब्द-चित्र' कहलाता है।''

क्या आप जानते हैं रेखाचित्र संवेदना को जगाने वाली किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप-विधान है जिसमें लेखक का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-दृष्टि अपना निजीपन उड़ेल कर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।

संक्षेप में रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है जो अपने सीमित कलेवर में किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, घटना, दृश्य अथवा भाव का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र उद्घाटित करती है। इसमें पात्रों का चरित्रोद्घाटन तथा देशकाल पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अपनी संक्षिप्त परिधि में जो कुछ इसमें चित्रित होता है, उसमें समस्त जीवन की अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति की मूर्तिमत्ता ही रेखाचित्र की आत्मा है।

12.1.2 रेखाचित्र के लिए ध्यातव्य बातें

रेखाचित्र में उकेरे गए चित्र स्थिर और गत्यात्मक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। चित्र चाहे जैसा हो, पर वह लेखक की संवेदनशीलता और भाव-प्रवणता से प्रभावित अवश्य होना चाहिए। लेखक जितना ही अधिक संवेदनशील और उन्मुक्त व्यक्तित्व का होगा, वह उतनी ही सफलता के साथ रेखाचित्र का अंकन कर सकता है। फिर भी रेखाचित्र-लेखक को शब्दांकन में तीन बातों पर विशेष ध्यान देना अपेक्षित होता है–(1) विशद स्थूल चित्रण (2) क्रियाओं या कृत्यों का आकलन और (3) देशकालानुरूप भाषा का प्रयोग।

विशेषताएँ–रेखाचित्र की विशेषता यह है कि यदि वह एक बार हृदय को संस्पर्श कर ले, तो उसका चित्र वर्षों तक ''हृदय-पटल पर धूमिल नहीं होता, उसका प्रभाव अमिट अमर होता है। साकारता, सजीवता, भावनात्मकता तथा बिंबविधान रेखाचित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अपेक्षित तत्व–रेखाचित्र हिंदी गद्य साहित्य की एक नवीन किंतु सशक्त विधा है। इसकी सुस्पष्ट रेखा प्रस्तुत करना आलोचकों के लिए चिंतन का विषय है। कारण कि इसमें कुछ तत्व निबंध के हैं और कुछ कहानी के। किंतु यह न तो निबंध है और न ही कहानी। निबंध इस कारण नहीं है कि यह उसकी तरह शुष्क और तथ्यात्मक नहीं होता। कहानी इसलिए नहीं कि इसमें काल्पनिकता कम और अभिव्यक्ति यथार्थपरक होती है। वस्तुत: रेखाचित्र कहानी और निबंध के बीच एक स्वतंत्र विधा है। रेखाचित्र के अग्रलिखित तत्व माने जाते हैं–

1. **विषय-वस्तु**–रेखाचित्र की वर्ण्य वस्तु कुछ भी हो सकती है। व्यक्ति, घटना, वस्तु, वातावरण, दृश्य, भाव, विचार, समस्या आदि में किसी पर रेखाचित्र लिखा जा सकता है। विषय-वस्तु रेखाचित्र की आत्मा है। अत: विषयवस्तु में सूक्ष्मता और तीव्रता आवश्यक है। तीव्रता के साथ-साथ सजीव रेखाचित्र के लिए विषय-वस्तु में सांकेतिकता भी होनी चाहिए।
2. **चारित्रिक उभार**–रेखाचित्र में पात्रों की बाह्य वेश-भूषा तथा आकृति-चित्रण पर विशेष बल दिया जाता है। रेखाचित्र-लेखक में यह क्षमता होनी चाहिए कि वह मानव-मन की अतुल गहराइयों में पैठ कर भाव-रूपी मोती को उद्घाटित कर सके। उसे मानव स्वभाव का सूक्ष्म पारखी भी होना चाहिए।
3. **भाव-व्यंजना**–भाव-व्यंजना रेखाचित्र की वह भित्ति है जिस पर उसका भव्य महल खड़ा होता है। दृश्य अथवा व्यक्ति के संपर्क में आने से लेखक के मन में जो भाव उठते हैं, उन्हें पाठक के मन:पटल पर अंकित करना वास्तव में रेखाचित्रकार का उद्देश्य होता है। भावात्मकता के साथ-साथ रेखाचित्रकार को तटस्थ दृष्टि अपनाना अनिवार्य है।
4. **तथ्यपरक यथार्थ चित्रण**–रेखाचित्र वही सुंदर और श्रेष्ठ माना जाता है, जो तथ्यपरक यथार्थ से युक्त हो।

नोट

इसके लिए रेखाचित्रकार ऐसे पात्रों को चुनता है जिनमें निजी और वर्गगत विशेषताएँ एक साथ प्रस्तुत की जा सकें।

5. **त्वरामूलक संकेतात्मकता**–रेखाचित्र में गतिशीलता और संकेतात्मकता का होना आवश्यक है। संकेतात्मकता का आशय है–कतिपय वाक्यांशों द्वारा संपूर्ण परिवेश का चित्रांकन। ये संकेत विवरणात्मक, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवेदनामूलक, समस्यामूलक, वातावरण-विषयक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। ऐसा प्रयोग एक कुशल लेखक ही कर सकता है। रेखाचित्रकार अपने उद्देश्य की ओर त्वरा-मूलक या तीव्र गति के साथ बढ़ता है। उसे थोड़े समय में कम शब्दों के माध्यम से संपूर्ण वातावरण का आंतरिक एवं बाह्य चित्र अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अंकित करना होता है।
6. **शैली**–अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम शैली है। रेखाचित्रों में शैली के जिन गुणों का विशेष महत्त्व है, उनमें चित्रात्मक शैली का प्रथम स्थान है। शब्द-शक्तियों का अवसरानुकूल प्रयोग रेखाचित्र शैली की द्वितीय विशेषता है। रेखाचित्र की भाषा में चित्रोपमता का होना अनिवार्य है।
7. **सोद्देश्यता**–रेखाचित्र में उद्देश्य उपदेश की भाँति ऊपर से थोपा नहीं जाता, अपितु वह रचना के भीतर निहित रहता है। रेखाचित्र का उद्देश्य मात्र है–लेखक के संपर्क में आए व्यक्ति विशेष अथवा देखे गए दृश्य का मर्मस्पर्शी एवं भावपूर्ण अंकन करना।

12.1.3 रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र और संस्मरण मिलते-जुलते साहित्यिक रूप हैं, किंतु दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। वे एक दूसरे के अंग मात्र हैं, संपूर्ण नहीं। इसलिए दोनों के स्वरूप में सूक्ष्म अंतर है। रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति के जीवन का चित्र होता है और उसके गुण-दोष का निरूपण विधिवत् होता है जबकि संस्मरण में मुख्यतया पुरानी बातें स्मरण की जाती हैं। रेखाचित्र में चित्रण की प्रधानता रहती है और संस्मरण में भावात्मकता अधिक। रेखाचित्र में व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला जाता है, किंतु संस्मरण में चरित्र के किसी एक पहलू की झाँकी रहती है। रेखाचित्र व्यक्तियों के अतिरिक्त वस्तुओं, घटनाओं, स्थितियों, भावनाओं, दृश्यों आदि पर भी लिखे जाते हैं, जबकि संस्मरण मात्र व्यक्तियों पर ही लिखे जाते हैं। रेखाचित्र में देशकाल का चित्रण कम रहता है और संस्मरण में अधिक रहता है। रेखाचित्र की अपेक्षा संस्मरण का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। रेखाचित्र की सीमाएँ सुनिश्चित होती हैं। इसमें कम से कम शब्दों में सजीव, मर्मस्पर्शी भावव्यंजना करनी पड़ती है, जबकि संस्मरण में संस्मरणकार पर शब्द-योजना और वाक्य-विन्यास-संबंधी कोई प्रतिबंध नहीं होता। रेखाचित्र में घटनाओं का यथार्थपरक चित्रण करना लेखक का लक्ष्य रहता है, जबकि संस्मरण में घटनाओं का निरूपण भावात्मकता के रंग में रंगा रहता है। रेखाचित्र में वर्णित व्यक्ति के बाह्यभ्यांतरिक चरित्र का विश्लेषण रहता है, पर संस्मरण संस्मर्ण्य के चरित्र का दर्पण होता है। संक्षेप में रेखाचित्र की अस्पष्ट आकृति को संस्मरण में रंगीन बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

12.1.4 वर्गीकरण

रेखाचित्र का विषय व शैली की दृष्टि से वर्गीकरण करना बहुत कठिन है, क्योंकि प्रत्येक रेखाचित्र में विविध विशेषताओं का समायोजन दिखाई पड़ सकता है। यदि प्रवृत्ति के आधार पर हिंदी रेखाचित्रों का वर्गीकरण किया जाए तो उन्हें प्रधानतः अग्रलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. विवरणात्मक	2. भावात्मक	3. प्रकृति-सौंदर्यपरक
4. घटना-प्रधान	5. व्यक्ति-प्रधान	6. समस्यामूलक
7. वातावरण-प्रधान	8. प्रतीकात्मक	9. हास्य-व्यंग्य-प्रधान
10. संस्मरण-प्रधान	11. आत्मकथात्मक	12. सांस्कृतिक
13. ऐतिहासिक	14. संवेदनात्मक	15. राष्ट्रीय भावना-समन्वित

16. प्रभाववादी 17. तथ्यात्मक 18. मनोवैज्ञानिक
19. राजनीतिक आदि।

टास्क रेखाचित्र की परिभाषा दीजिए तथा रेखाचित्र और संस्मरण में मुख्य अंतर को स्पष्ट कीजिए।

12.1.5 हिंदी रेखाचित्र का संक्षिप्त ऐतिहासिक विकास-क्रम

वस्तुत: रेखाचित्र चरित्रांकन से संबंधित होता है। चरित्रांकन के संदर्भ में प्रथम कलाकार यूनानी लेखक 'थियोफ्रेस्टस' था जिसने 'कैरेक्टर्स' नामक अपनी कृति में समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के रेखाचित्र प्रस्तुत किए थे। बीसवीं शती के तीसरे दशक के अंतिम वर्षों से ही हिंदी में रेखाचित्रों की धूम मची। पर इस विधा की ओर जन-मानस का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय 'हंस' और 'मधुकर' के विशेषांकों को है। सन 1938 के 'हंस' के रेखाचित्र-विशेषांक में अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे रेखाचित्रों के साथ-साथ हिंदी में लिखे गए 25 रेखाचित्र संकलित हैं। इन रेखाचित्रों की विषय-वस्तु साहित्यकार, पत्रकार, कवि, अध्यापक, कथाकार, लेखिकाएँ आदि हैं। सभी रेखाचित्र अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों पर लिखे गए हैं।

सन् 1946 ई. के 'मधुकर' रेखाचित्र विशेषांक में अनेक सुंदर रेखाचित्रों के अलावा प्रसिद्ध रेखाचित्र-लेखक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की सारगर्भित भूमिका भी है। रेखाचित्र विधा को स्थिरता प्रदान करने का वास्तविक श्रेय 'हंस' और 'मधुकर' के इन्हीं विशेषांकों को है। आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में रेखाचित्र का एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकास अंग्रेजी तथा रूसी रेखाचित्रों का प्रतिफल है। हिंदी के प्रारंभिक रेखाचित्रों पर अंग्रेजी एवं रूसी रेखाचित्रों के प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होते हैं। हिंदी में रेखाचित्र लिखने का अच्छा विकास हो रहा है। इस दिशा में बहुत से लेखक प्रयत्नशील हैं। उनमें से कुछ रेखाचित्रकारों का विवरण इस प्रकार है–

पदमसिंह शर्मा–हिंदी में रेखाचित्र के प्रणयन का वास्तविक श्रेय पं. पद्मसिंह शर्मा को है। वे इस विधा के जनक माने जाते हैं। उनका 'पद्म-पराग' नामक प्रथम रेखाचित्र संग्रह उल्लेखनीय है। उनके रेखाचित्रों में कला का वह रूप नहीं दिखायी पड़ता जो आज के रेखाचित्रों में पाया जाता है। किंतु यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि उन्होंने जो नींव डाली थी आज के लेखकों ने उसी पर रेखाचित्र का भव्य भवन खड़ा करने का यत्न किया है।

श्रीराम शर्मा–सन् 1936 तक हिंदी रेखाचित्रों का प्रकाशन प्राय: पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित रहा। इन्हें संकलन रूप में प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम श्रेय पं. श्रीराम शर्मा को है। शर्मा जी का 'बोलती प्रतिमा' नामक संग्रह सन् 1927 में प्रकाशित हुआ। उनका यह संग्रह रूसी लेखक तुर्गनेव के 'जीवित समाधि' से बहुत प्रभवित है। हिंदी में यह बहुचर्चित उनका रेखाचित्र-संकलन है। इसमें संकलित रेखाचित्रों के माध्यम से श्रीराम शर्मा ने ग्रामीण अंचल की समस्याओं, परिस्थितियों और महानताओं का सजीव चित्र कुछ चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त पं. श्रीराम शर्मा कृत 'जंगल के जीव', 'प्राणों का सौदा', 'वो जीते कैसे' आदि संग्रह भी उल्लेखनीय हैं।

नोट्स संस्मरण और रेखाचित्र मिलते-जुलते साहित्यिक रूप हैं, किंतु दोनों पर्यायवाची नहीं है।

बनारसीदास चतुर्वेदी–हिंदी रेखाचित्र विधा के उन्नयन में पं. बनारसीदास का विशेष महत्त्व है। सन् 1919 ई. में पं. बनारसीदास का प्रथम रेखाचित्र 'औरंगजेब' नामक शीर्षक 'मर्यादा' में प्रकाशित हुआ। उनके प्रारंभिक

नोट

रेखाचित्र 'हमारे साथी' तथा 'प्रकृति के प्रांगण' नामक पुस्तकों में संग्रहीत हैं। दीर्घ जीवन में आपने हिंदी को अनेक अनूठे रेखाचित्र दिए। उनमें से अधिकांश पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'प्रिंस क्रोपाटकिन', 'रेखाचित्र', 'सेतुबंध' और 'रंगों की बोलती रेखाएँ' प्रसिद्ध संग्रह हैं। उनके अनेक रेखाचित्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आज भी बिखरे पड़े हैं जिन्हें संग्रह पर प्रकाशित करने की आवश्यकता है। श्रेष्ठ रेखाचित्र की दृष्टि से उनके संग्रहों में 'रेखाचित्र' संग्रह विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने इस दिशा में अकेले जो कार्य किया है वह दस रेखाचित्रकार भी नहीं कर सकते। चतुर्वेदी जी की कला का पूर्ण परिचय उन्हीं रेखाचित्रों में मिलता है जिनमें उन्होंने सामान्य व्यक्तियों को आधार बनाकर जीवन-व्यापिनी करुणा को मूर्तिमत्ता प्रदान की है।

रामवृक्ष बेनीपुरी–हिंदी रेखाचित्र के शब्द-भंडार को समृद्ध करने में रामवृक्ष बेनीपुरी का योगदान अविस्मरणीय है। प्रतीकात्मक और रूपकात्मक रेखाचित्र लिखने में अपना नाम अग्रगण्य है। भाषा की सरलता-सरसता और अभिव्यक्ति की सहजता की दृष्टि से रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र महत्त्वपूर्ण हैं। उनके रेखाचित्र-संग्रहों में 'लालतारा', 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब तथा 'मील के पत्थर' प्रमुख हैं। 'गेहूँ और गुलाब' की भूमिका में वे कहते हैं–"ये शब्द-चित्र पिछले शब्द-चित्रों से भिन्न हैं–छोटे, चलते, जीवंत। मैंने कहा–हैंड कैमरा के स्नैप-शॉट, आलोचक ने उस दिन डाँटा-हाथी दाँत पर की तस्वीरें।" बेनीपुरी ने कला की अपेक्षा विषय-विविधता पर अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि उनके रेखाचित्र मुखर होकर भी प्रभावहीन हैं। उनकी लेखनी से समाज की कोई कुरूपता अछूती नहीं रह सकी है। "तत्कालीन मानव व समाज की संपूर्ण स्थिति और उसकी विवशताएँ उनके रेखाचित्रों में मूर्त्त हो उठी हैं।" सामाजिक अन्याय, शोषण, वर्ग-संघर्ष, असमानता, जमींदारी-प्रथा के दुष्परिणाम, किसानों की दयनीय स्थिति, भ्रष्टाचार, क्रांतिकारी भावनाएँ, नवीन संस्कृति की आकांक्षा, ईश्वर-धर्म पर व्यंग्य, छुआ-छूत, जाति-भेद से उत्पन्न विषमताएँ आदि उनके रेखाचित्रों के विषय हैं। डॉ. प्रभाकर माचवे ने बेनीपुरी के संबंध में लिखा है–"बेनीपुरी जी की भाषा-शैली में भावोद्रेक के साथ ही शब्दों और व्यंग्य-खंडों का संयत गठा हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यंजना का निर्माण करता है। वे कहीं-कहीं अति भावुकता से शब्दों और विराम-चिन्हों का अतिरंजित प्रयोग करते हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'–महाकवि निराला ने भी कुछ अच्छे रेखाचित्र लिखे हैं। उनके रेखाचित्रों में कला और भावना की मात्रा बहुत अधिक है। उनके 'चतुरी चमार', 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' नामक रेखाचित्र बहुत प्रसिद्ध हैं।

महादेवी वर्मा–हिंदी रेखाचित्र-लेखकों में महादेवी वर्मा का स्थान उत्कृष्टतम है। उनके रेखाचित्रों में फोटोग्राफी का सौंदर्य निहित है। महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार' आदि महत्त्वपूर्ण रेखाचित्र-संग्रह हैं। 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार में मुख्य रूप से उन्होंने अपने जीवन की उन अनेक कटु-मधुर, करुणा-विगलित स्मृतियों को सँजोकर रखा है जिन्होंने उनके जीवन में एक स्थायी स्थान बना लिया है। लेखिका ने स्वयं स्वीकार किया है कि इनमें उनका जीवन चित्रित हुआ है। 'अतीत के चलचित्र' में निम्न-वर्गीय पात्रों की वेदनाओं, अभावों, समस्याओं, संघर्षों, संकटों, शोषण की विविध स्थितियों की विशेषताओं का विवेचन है। 'अतीत के चलचित्र' के संबंध में डॉ. राजमणि शर्मा ने कहा है–"अतीत के चलचित्र, हिंदी की वह थाती है जो सन् 1930 से 1940 के बीच के निम्न और निम्न-मध्यवर्गीय समाज की सच्ची झाँकी सदैव सँजोये रहेगी। इसमें मानव की आशा, आकाँक्षा, निराशा है, कल्पना का ऐसा सजीव जगत् है जो अपने वैविध्य में जगमगा कर हमारे समक्ष अपनी निधि खोल देता है।" डॉ. ब्रजमोहन गुप्त ने उनके विषय में लिखा है–"लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्ज्वल है कि स्मृति में जो रेखाएँ मात्र थीं–कागज पर उतर कर उनसे करुणा और हास्य-व्यंग्य के छाया-प्रकाश में हँसते-खेलते, उच्चतम मानवीय तत्वों से अनुप्राणित स्पंदनशील चित्र बन गए हैं।" संक्षेपत: महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण-प्रधान हैं।

प्रकाशचंद्र गुप्त–आधुनिक रेखाचित्र-लेखकों में प्रकाशचंद्र गुप्त का नाम भी प्रसिद्ध है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं। वे उनके 'पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच' और 'रेखाचित्र नामक संग्रह में संकलित हैं। उनके रेखाचित्रों में मानवता की प्रेरणा को प्रमुख स्थान मिला है। वस्तुत: गुप्त जी का यह प्रयास रेखाचित्र साहित्य में सर्वप्रथम, मौलिक और नवीन प्रयास है।

नोट

देवेंद्र सत्यार्थी–भावात्मक रेखाचित्रकारों में देवेंद्र सत्यार्थी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने बड़े सजीव एवं भावप्रवण रेखाचित्र लिखे हैं। 'रेखाएँ बोल उठीं' तथा दूसरे संग्रहों में सम्मिलित रेखाचित्रों में उनका ध्यान विशेष रूप से भावों और तथ्यों पर केंद्रित होता गया है। उनके 'रेखाएँ बोल उठीं' संग्रह के 'दादा-दादी के चित्र', 'चिर नूतन चित्र', 'अच्छे-भले आदमी की बात' रेखाचित्रों में जहाँ तथ्य-निरूपण का प्राचुर्य है, वहीं 'रेखाएँ बोल उठी', 'सौंदर्य-बोध', 'आज मेरा जन्म-दिन है' में भावात्मकता का आधिक्य है। ये रेखाचित्र प्रधानत: भावात्मक शैली में लिखे जाने के कारण गद्य-काव्य का-सा सौंदर्य उपस्थित करते हैं तथ्य-निरूपण-प्रधान उनके रेखाचित्रों में महादेवी वर्मा और रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्रों की भाँति मार्मिकता नहीं मिलती।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'–वर्तमान हिंदी रेखाचित्र-लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' उत्कृष्ट रेखाचित्रकार हैं। इनके रेखाचित्र-संग्रहों में 'नयी पीढ़ी के विचार', 'भूले हुए चेहरे', 'जिंदगी मुस्कुराई', 'माटी हो गयी सोना', 'दीप जले शंख बजे', 'महके आँगन चहके द्वार', 'क्षण बोले कण मुस्काये' आदि हैं। सभी संग्रहों, विशेषत: 'जिदंगी मुस्कुराई' में 'प्रभाकर जी' जिस प्रकार अपने पात्रों के हृदय का सूक्ष्म चित्रांकन कर उनके जीवन के प्रति पाठक की दृष्टि को अधिक गहराई प्रदान कर देते हैं, वह सराहनीय है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने मंजर अली सोख्ता पर लिखे गए रेखाचित्र की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है।

राहुल सांकृत्यायन–समस्यामूलक रेखाचित्र लिखने वालों में राहुल जी का नाम अग्रगण्य है। वे किसी समस्या को लेकर रेखाचित्र खींच देते हैं। उनके 'रूपी' रेखाचित्र में वेश्यावृत्ति की समस्या को उठाया गया है। समय-समय पर इनके रेखाचित्र विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: छपते रहे हैं।

हर्षदेव मालवीय–हिंदी में व्यंग्यपरक रेखाचित्र लिखने वालों में हर्षदेव मालवीय का नाम भी प्रसिद्ध है। उनके 'पुराने' तथा 'पोंगल गुरु' नामक रेखाचित्र-संग्रह की अच्छी ख्याति है।

विनयमोहन शर्मा–इनके 'रेखा और रंग' नाम रेखाचित्र-संग्रह में 14 रेखाचित्र संकलित हैं। इनमें 'पूसी बिल्ली' से लेकर वृक्ष, चिड़िया, थर्डक्लास तक के विषय हैं। व्यक्तियों में डबली बाबू, घर के नौकर, वकील साहब, जग्गू काका, कन्हैया, बदलू धोबी, बंसी, दूला, मास्टर साहब तक उनका प्रसार है। शर्मा जी पात्रों के बहिरंग पर ऐसी दृष्टि डालते हैं जिससे वे मूर्तिमान् होकर पाठकों के सम्मुख सजीव एवं साकार हो उठे हैं।

विष्णु प्रभाकर–आधुनिक रेखाचित्रकारों में विष्णु प्रभाकर की "रचना-प्रक्रिया द्वन्द्वमयी होने के कारण व्यक्ति और वस्तु के बहिरंग तक ही सीमित नहीं रहती वरन् भीतर और बाहर के द्वन्द्व को उजागर करने का प्रयास करती है।" वस्तुत: वे वातावरण और वस्तुओं के माध्यम से व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्‌घाटित करने की कला में पारंगत हैं।

स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'–'एक बूँद सहसा उछली' अज्ञेय के अनेक उत्कृष्ट रेखाचित्रों का संग्रह है। उनकी दृष्टि दृश्य और अंतर्मन पर एक साथ पड़ती हैं। "वे देश या दृश्य को केवल एक स्थिति मानकर नहीं चल पाते, वरन् वे उसे एक प्रवाहमान धारा के रूप में देखने के आदी हैं। अत: दृश्य या व्यक्ति के माध्यम से वे हमें कुछ दे जाते हैं जो अन्यों के लिए अजूबा बना रहता है।"

कुछ अन्य रेखाचित्रकार–उपर्युक्त रेखाचित्रकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य रेखाचित्र-लेखकों ने इस विधा के विकास में पर्याप्त योग दिया है। इन रेखाचित्रकारों में उपेंद्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, महावीर अधिकारी, सुरेंद्रनाथ दीक्षित, फणीश्वरनाथ रेणु, प्रो. कपिल, वृंदावनलाल वर्मा, हरिशंकर, पदुमलाल, पुन्नालाल बख्शी, डॉ. नगेंद्र, गुलाब राय, ओंकार शरद्, अमृतलाल नागर, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. प्रेमनारायण टण्डन, डॉ. रामशंकर त्रिपाठी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी रेखाचित्रकारों ने अपने अनेक उत्कृष्ट रेखाचित्रों द्वारा हिंदी रेखाचित्र साहित्य को समृद्ध करने में अविस्मरणीय योगदान दिया है।

अत: आधुनिक काल में रेखाचित्र-विधा का बहुमुखी विकास प्रभासमान है। आज राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के रेखाचित्र लिखे जा रहे हैं। इतना ही नहीं, अपितु विविध पत्र-पत्रिकाओं का रेखाचित्र के विकास और उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इधर कुछ वर्षों में राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों, महापुरुषों के अभिनंदन-ग्रन्थों के रूप में रेखाचित्र विधा का व्यापक उत्कर्ष-उन्नयन, प्रचार-प्रसार हो रहा है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... में पात्रों का चरित्रोद्घाटन तथा देशकाल पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. हिंदी के प्रारंभिक रेखाचित्रों पर .... एवं .... रेखाचित्रों के प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होते हैं।
3. हिंदी रेखाचित्र-लेखकों में .... का स्थान उत्कृष्टतम है।

12.1.6 संस्मरण

रेखाचित्र की तरह आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में संस्मरण भी एक आकर्षक एवं आत्मनिष्ठ आधुनिकतम विधा है। जीवनी-परक साहित्य का यह अत्यंत ललित एवं लघु कलात्मक अंग है। जीवन-अभिव्यक्ति का यह रूप संस्मरण पर आधारित है। वस्तुत: संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपनी स्मृति के धरातल पर अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने संपर्क में आए हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट पहलू को कथात्मक शैली में रेखांकित करता है। हर व्यक्ति अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के संपर्क में आता है। सामान्य व्यक्ति उन क्षणों को विस्मृत कर देता है, किंतु संवेदनशील एवं भावुक व्यक्ति इन स्मृतियों को अपने मन: पटल पर अंकित कर लेता है। इन क्षणों की स्मृति जब कभी उसे आकुल कर देती है तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ निहित रहती हैं, जो व्यक्तिगत संपर्क का परिणाम होती हैं। उन्हीं स्मृतियों को संस्मरणकार सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। संस्मरण-लेखक जो कुछ देखता है और अनुभव करता है, उसे अपनी अनुभूतियों में राग-संजित कर प्रस्तुत कर देता है। वह इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण भर नहीं देता, वरन् अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित कर उपस्थित करता है। संस्मरणकार केवल महत्त्वपूर्ण बातों को ही नहीं लेता है, अपितु छोटी-से-छोटी घटना को भी चारुता के साथ अंकित कर देता है।

क्या आप जानते हैं आधुनिक काल में रेखाचित्र-विधा का बहुमुखी विकास प्रभा समान है। आज राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के रेखाचित्र लिखे जा रहे हैं।

अंगरेजी में संस्मरण के लिए दो शब्द प्रचलित हैं–(1) रेमिनिसेंसेज (2) मेम्वॉयर्स। जब लेखक अपने अपने विषय में संस्मरण लिखता है तो उसे 'रेमिनिसेंसेज' कहा जाता है और जब वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए लिखता है तो उसे 'मेम्वॉयर्स' कहते हैं। पर हिंदी में इन दोनों के लिए एक ही शब्द है–'संस्मरण' जो अधिक आत्मपरकता-द्योतक शब्द है।

'संस्मरण' शब्द 'सम+स्मृ+ल्युट्(अण) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है–'सम्यक स्मरण' 'भली प्रकार से स्मृति' सम्यक् शब्द का अर्थ है–'पूर्णरूपेण' और 'पूर्ण रूपेण का आशय है–'सहज आत्मीयता तथा गंभीरता से किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का स्मरण करना'। तात्पर्य यह कि संस्मरण का मूलाधार स्मृति है। अस्तु, स्मृति करने के कार्य के फल को संस्मरण कहते हैं। अथवा स्मृति पर आधारित आत्मकथा का रूप संस्मरण है।

परिभाषा–भारतीय काव्यशास्त्र में संस्मरण अलंकार रूप में प्रयुक्त होता आया है। आज संस्मरण एक विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में प्रचलित है। इसकी अपनी शास्त्रीय विशेषताएँ हैं। इस विधा को विभिन्न विद्वानों ने अनेक ढंग से परिभाषित किया है। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार–''संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है।'' डॉ. तिवारी के आगे के उद्गार भी दृष्टव्य हैं जो उनकी मान्यता को और स्पष्ट करते हैं–''स्मर्यमाण के जीवन के वे संदर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह

शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत् विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत संस्मरण में व्यक्ति को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका कथन है–'भावुक कलाकार जब अतीत के अनंत स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजना-मूलक संकेत-शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है तब उसे संस्मरण कहते हैं।'' स्मृति की महत्ता को स्वीकारते हुए डॉ. नगेंद्र ने संस्मरण के विषय में लिखा है–''वैयक्तिक अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इति-वृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।'' उनके कहने का तात्पर्य यह कि संस्मरण वह रचना है जिसमें लेखक अपने जीवन का वृत्तांत अथवा अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का परीक्षण करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्मरण में 'स्मृति' मूल तत्व है। व्यतीत होते ही सब कुछ स्मृति का अंग बन जाता है और दृष्टि वहीं से उपलब्ध होती है। इस प्रकार, अतीत के अनुभवों और प्रभावों को स्मृति के सहारे शब्दों में रूपायित करने वाली विशिष्ट गद्य विधा 'संस्मरण' है।

संस्मरण यथार्थपरक होता है, पर संस्मरण-लेखक तटस्थ नहीं हो पाता। यह नवोद्भूत विधा आत्मकथा के अधिक निकट होती है, किंतु दोनों में तात्विक अंतर है। आत्मकथा में पूर्णता का आग्रह रहता है, जबकि संस्मरण में पूर्णता का अभाव। 'संस्मरण' संस्मरण-लेखक के सिद्धांतों का प्रतिबिंब होता है। संस्मर्ण्य के जीवन का वह अंश जिसे संस्मरण का विषय बनाया जाता है, वह स्वयं लेखक के भी जीवनादर्श का सूचक होता है। इस प्रकार संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं और अपने पाठकों को जीवन के विविध पक्षों का साक्षात्कार कराते हैं। इसलिए इनमें स्वभावत: रोचकता, मनोरंजकता के साथ स्वयं की अनुभूतियाँ और संवेदना निहित रहती हैं।

नोट्स संस्मरण वह रचना है जिसमें लेखक अपने जीवन का वृत्तांत अथवा अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है।

संस्मरण घटनात्मक घटित होती हैं। घटनाएँ प्राय: सत्य होती हैं और वर्णित व्यक्ति या वस्तु के चरित्र का परिचय देती हैं। संस्मरणकार जो कुछ भी लिखता है वह अपनी संपूर्ण भावना, आदर्श, निष्ठा, पसंद-नापसंद आदि को दृष्टिपथ में रखकर लिखता है। संस्मरण को कुछ असंबद्ध घटनाओं का नोट भी कहा जा सकता है जो लेखक के जीवन से संबंध रखता है। लेखक का संपूर्ण जीवन-दर्शन इसमें रूपायित रहता है।

अस्तु, ''संस्मरण सहृदय के स्मृति-कोष की अमूल्य आनंददायिनी निधि है। अनुभव से इसका प्रत्यक्ष संबंध है। संस्मरण-लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। तात्विक दृष्टि से संस्मरण स्मृति की अभिव्यक्ति है। स्मरणीयता इसकी पहली शर्त है। पुन: स्मृत कर जो लिखा जाता है, वही संस्मरण है।''

27.1.7 संस्मरण-लेखक के लिए ध्यातव्य बातें

संस्मरण लेखक में सहानुभूतिपूर्ण हृदय, सूक्ष्म विश्लेषण, सजीव चित्रण-शक्ति और सहज स्वाभाविकता की अपेक्षा रहती है। इनके बिना वह सफल संस्मरण नहीं लिख सकता। छोटी-से-छोटी घटना, पात्र, स्थान, अवसर को रूपायित करने हेतु यह आवश्यक होता है कि लेखक उन बातों को लिपिबद्ध करता जाए जो उसे अच्छी और महत्त्वपूर्ण लगें। संस्मरण-लेखक के लिए यह भी अपेक्षित है कि वह निंदा व स्तुति के अतिरेक को अपनाकर न चले। जहाँ तक संभव हो, तटस्थ किंतु सहानुभूतिपूर्ण वृत्ति अपनाकर शब्दांकन करे। संस्मरणकार संवेदनशील हो और उसकी स्मृति गतिशील हो। उसमें अतीत पर आधारित रमणीय अनुभूतियों का अच्छा कोष हो। उसकी कल्पनाशक्ति अत्यंत प्रबल हो। उसमें अनुभूति स्मृतियों को व्यंजनामूलक संकेत-शैली में रोचक ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। संस्मरण-लेखन वास्तव में दुष्कर कार्य है। इस प्रकार, संस्मरण-लेखन में संस्मरणकार को बहुत ही सावधान रहना आवश्यक होता है।

नोट

12.1.8 संस्मरण-लेखन के आधार

संस्मरण लिखना भी एक कला है। इसे लिखने के लिए व्यक्तित्व का विशिष्ट होना आवश्यक है। संस्मरण लिखने के अनेक आधार हो सकते हैं–यथा कोई विशेष घटना, व्यक्ति, स्थान, काल, परिस्थिति, सुख-दु:ख के क्षण आदि। धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक और जननेता के अतिरिक्त कोई अधार्मिक, असामाजिक कुरूप या दुष्ट या फिर कोई अमानविक आत्मा आदि का वर्णन संस्मरण का विषय या आधार भी बन सकता है। इसमें स्मृति की विशेष रूप में प्रधानता होती है। यह स्मृति किसी भी रूप में हो सकती है।

12.1.9 संस्मरण के तत्व या उपकरण

संस्मरण की रचना के निम्नलिखित तत्व या उपकरण माने जाते हैं–

1. वर्ण्य विषय 2. पात्र-योजना 3. परिवेश 4. भाषा-शैली 5. उद्देश्य।

1. **वर्ण्य-विषय**–इसमें वर्ण्य विषय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संस्मरण में जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना या जीवन-संपर्क में आए किसी अविस्मरणीय चरित्र की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। संस्मरण अपने वर्ण्य-विषय वास्तविक, विश्वसनीय और बोधगम्य होते हैं। कभी-कभी संस्मरण में यह अंत:सलिला के समान मनोहर छटा-सी बिखेरती रहती है।
2. **पात्र-योजना**–संस्मरण का दूसरा प्रमुख तत्व पात्र-योजना है। संस्मरण-लेखक के लिए यह अनिवार्य होता है कि वह किसी-न-किसी रूप में वर्ण्य चरित्र के निकट संपर्क में रहे। पात्र-योजना के माध्यम से ही संस्मरण-लेखक स्वयं के संबंध में ही नहीं, वरन् दूसरों के विषय में भी अपने अनुभव अंकित कर बहुमूल्य जानकारी पाठक को देता है। संस्मरण की पात्र-योजना के अंतर्गत केवल प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध व्यक्ति का जीवन-चरित्र नहीं होता अपितु मानवेतर प्राणियों का भी चित्रांकन हो सकता है।
3. **परिवेश**–वास्तविकता का संज्ञान कराने में परिवेश का विशिष्ट स्थान होता है। संस्मरणकार देश-काल की सीमाओं में आबद्ध रहता है। महादेवी वर्मा परिवेश के महत्त्व को स्वीकार करती हुई लिखती हैं–"देशकाल की सीमा में आबद्ध जीवन न इतना असंगत होता है कि अपने परिवेश और परिवेशियों से उसका कोई संघर्ष न हो और न यह संघर्ष इतना सरल होता है कि उसके आघातों के चिह्न शेष न रहें।" इस प्रकार, वातावरण की पृष्ठभूमि के बिना संस्मरण स्पष्ट ही नहीं हो सकता। पात्रों का चित्रांकन और घटनाक्रम परिवेश के माध्यम से ही विश्लेषित किए जाते हैं। अत: संस्मरण-लेखक परिवेशगत यथार्थ से बँधा रहता है। परिवेशगत चित्रण कथा और पात्रों की विश्वसनीयता में वृद्धि करते हैं। इस कारण संस्मरण की रोचकता, रमणीयता और विश्वसनीयता बढ़ जाती है।
4. **भाषा-शैली**–भाषा-शैली संस्मरण विधा का एक अनिवार्य तत्व है। पत्रकारिता से संस्मरण की भाषा उपजी है। अन्य गद्य-विधाओं की अपेक्षा संस्मरण की भाषा सीधी, सरल, वर्णनात्मक तथा अभिधामूलक होती है। हर्बर्ट रीड के अनुसार–"संस्मरण में लेखक को अपनी भाषा को सबके योग्य बनाने के लिए सरलता की सतह पर ऐसी रंजक इकाइयाँ चुननी पड़ती हैं जो साहित्य या साहित्यिक सभी प्रकार की रुचियों के अनुकूल हों।" जिस प्रकार संस्मरणकार संस्मरण में अपनी कथा को कम से कम लिखना चाहता है, उसी प्रकार अपनी भाषा का भी कम से कम उपयोग करना चाहता है।

   भाषा की तरह संस्मरण की शैली में भी विशिष्टता होती है। संस्मरण प्राय: सिंहावलोकन-शैली में लिखे जाते हैं। हिंदी के अधिकांश संस्मरण इसी शैली में लिखे गए हैं।

   अरस्तु, संस्मरण की संरचना में भाषा-शैली का विशेष महत्त्व है।
5. **उद्देश्य**–हर रचना में रचनाकार का कोई-न-कोई उद्देश्य निहित होता है। हिंदी की अन्य गद्य विधाओं की भाँति ही संस्मरण भी संप्रेषण और रंजन का आधार लेखक पाठकों तक पहुँचता है। किसी व्यक्ति की महत्ता, विशेषता, उपलब्धि, जीवन-हानि, प्रसंग-विशेष, स्थान-विशेष या काल-विशेष, खास घटना,

विशिष्ट अवसर, परिस्थिति आदि से संस्मरण-लेखक प्रभावित और प्रेरित होता है और स्मृति के सहारे संस्मरण-लेखन में जुट जाता है। संस्मरण के उद्देश्य पर विचार करते हुए डॉ. आशाकुमारी ने लिखा है–''किसी घटित प्रसंग, संपर्क में आए व्यक्ति, बीते हुए समय, उसके आयाम में फिरे संदर्भ, परिस्थिति, परिवेश, प्रभाव आदि को स्मरण कर यथातथ्य प्रस्तुत और प्रकाशित करना संस्मरण का पहला उद्देश्य होता है। अनुभव के रूप में कोई न कोई कथा-प्रसंग, कोई जीवन-संदर्भ या घटना क्रम, किसी का व्यक्तित्व-विवेचन अथवा देश-दर्शन, परिस्थिति अथवा परिवेश-वर्णन, स्मृति-प्रेरित अनुभूति अथवा मनोदशादि का सिंहावलोकन संस्मरण के उपजीव्य होते हैं। इसके अतिरिक्त संस्मरण का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति भी होता है।

इस प्रकार, हिंदी की अन्य गद्य विधाओं की भाँति संस्मरण में भी वर्ण्य विषय, पात्र-परियोजना, परिवेश, भाषा-शैली और उद्देश्य जैसे तत्वों का समावेश रहता है।

12.1.10 संस्मरण और अन्य साहित्यिक विधाएँ

यह सत्य है कि संस्मरण जीवनी, यात्रा-वृत्त और आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधाओं के अति निकट है। इनमें विभाजक रेखा खींच पाना कठिन कार्य है। फिर भी, संस्मरण अन्य साहित्यिक विधाओं से पूर्णतः स्वतंत्र विकसित विधा है। अस्तु, संस्मरण से साम्य रखने वाले इन साहित्यिक रूपों के संबंधों का विवेचन कर लेना अपेक्षित है।

12.1.11 संस्मरण और जीवनी-साहित्य

वस्तुतः संस्मरण और जीवनी दोनों का संबंध मुख्यतः अन्य व्यक्ति के जीवन-वृत्त से है। दोनों ही अतीत को यथार्थ में चित्रित करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार संस्मरण और जीवनी में बड़ा साम्य है। किंतु दोनों की चित्रण-कला में भेद होता है। संस्मरण में व्यक्ति विशेष के संपर्क में आना आवश्यक होता है, जबकि जीवनी-लेखन में उस व्यक्ति के जीवन-संबंधी तथ्यों का ज्ञान ही अपेक्षित होता है। संस्मरण-लेखक साहित्यकार पहले होता है, इतिहासकार बाद में। पर जीवनीकार इतिहासकार पहले और साहित्यकार बाद में होता है। संस्मरण अनुभूतियों पर आधारित होता है और जीवनी तथ्यों पर। एक में लेखक के व्यक्तित्व के भावमय चित्रों की प्रमुखता होती है, दूसरे में तटस्थ वर्णनों की। यही दोनों में मौलिक अंतर है।

12.1.12 संस्मरण और यात्रा साहित्य

वैसे तो संस्मरण और यात्रा साहित्य में गहरा संबंध है। दोनों के भाव, अनुभूति, दृष्टिकोण आदि में पर्याप्त समानता है, फिर भी इन दोनों में तात्विक दृष्टि से कुछ मौलिक अंतर है जिससे इन्हें गद्य की स्वतंत्र विधा माना जाता है। 'संस्मरण' में व्यक्ति-विशेष और उसके जीवन के किसी अंश की प्रभावमयी अभिव्यक्ति को प्रधानता दी जाती है। यात्रा-साहित्य में देश-विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य, उसके ग्राम, नगर, सांस्कृतिक केंद्र, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन, नर-नारियों के रहन-सहन की झलक प्रस्तुत की जाती है।'' संस्मरण में संस्मरणकार के व्यक्तित्व का संस्मर्ण्य के साथ उभरना आवश्यक है, किंतु यात्रा साहित्य में यात्रा-लेखक का व्यक्तित्व प्रायः मुखर नहीं होता। संस्मरण-लेखक की दृष्टि व्यक्ति पर होती है, इसके विपरीत यात्रा-लेखक की दृष्टि प्रदेश पर। संस्मरण-लेखक संस्मर्ण्य व्यक्ति के ही विशिष्ट जीवनांश पर अपनी लेखनी को केंद्रित रखता है, जबकि यात्रा-लेखक की व्यापक परिधि में अन्यान्य स्मरणीय व्यक्ति, दृष्टि एवं घटनाएँ गुम्फित रहती हैं।

12.1.13 संस्मरण और आत्मकथा

संस्मरण और आत्मकथा में पर्याप्त समानता होते हुए भी दोनों में अपेक्षित भिन्नता पायी जाती है। संस्मरण में जहाँ बाह्य घटनाओं पर बल दिया जाता है, वहीं आत्मकथा में चरित्र पर। संस्मरण में अविस्मरणीय व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना को आधार बनाया जाता है, किंतु आत्मकथा में लेखक के स्वयं के जीवन का आद्योपांत वर्णन रहता है।

नोट

संस्मरण में संस्मरणकार का ध्यान दूसरों की ओर रहता है जबकि आत्मकथा में लेखक अपने तक सीमित रहता है। संस्मरण में जीवन के एक खंड का संस्मरणात्मक प्रस्तुतीकरण रहता है। इसके विपरीत आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की प्राय: संपूर्ण कहानी लिखता है। संस्मरण में घटनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिए किसी क्रम की बाध्यता नहीं होती, पर आत्मकथा-लेखक के लिए क्रम की बाध्यता अनिवार्य होती है। तात्पर्य यह कि वर्ण्य के विकास-क्रम के अनुसार आत्मकथा-लेखक जीवन पर प्रकाश डालता है। अत: स्पष्ट है कि संस्मरण की वर्णनाएँ विषयगत अधिक होती हैं, विषयीगत कम, जबकि आत्मकथा में लेखक की वर्णनाएँ विषयीगत अधिक होती हैं, विषयगत कम।

12.1.14 संस्मरण के प्रकार

संस्मरण नितांत वैयक्तिक हुआ करता है। अत: इसके प्रस्तुतीकरण में भी भिन्नताएँ हुआ करती हैं। इन भिन्नताओं के कारण संस्मरण साहित्य को मोटे तौर पर निम्नलिखित छह कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. आत्मकथात्मक संस्मरण
2. यात्रा-विवरणात्मक संस्मरण
3. डायरीनुमा संस्मरण
4. जीवनी-मूलक संस्मरण
5. श्रद्धांजलि-मूलक संस्मरण
6. मूल्यांकनपरक संस्मरण

इन प्रकारों में साहित्य और गणित जैसा अंतर नहीं है, फिर भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उपर्युक्त कोटियों का निर्धारण अपेक्षित जान पड़ता है।

12.1.15 हिंदी संस्मरण साहित्य का विकास

हिंदी में पर्याप्त मात्रा में संस्मरण साहित्य उपलब्ध है। जिस प्रकार नवीन साहित्य-रूपों का जन्म पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ है, उसी प्रकार हिंदी संस्मरण विधा का भी जन्म 'सुधा', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'चाँद', 'विशाल भारत' आदि विविध पत्र-पत्रिकाओं से ही हुआ। वास्तव में इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से संस्मरण साहित्य विधा के विकास को काफी बल मिला। अधिकांश विद्वानों ने पं. प्रतापनारायण मिश्र पर बाबू बालमुकुंद के सन् 1907 में लिखे गए संस्मरण को हिंदी का प्रथम संस्मरण माना है। वैसे कुछ लोग स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को और कुछ पद्मसिंह शर्मा को हिंदी का प्रथम संस्मरण-लेखक मानते हैं।

भारतेंदु जी आधुनिक काल के जनक माने जाते हैं। उन्होंने गद्य की अन्य विधाओं की तरह संस्मरण-लेखन का भी कार्य किया। उनका 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' शीर्षक एक सुंदर संस्मरण है। इस कृति में वर्णन स्मृति पर ही आधारित है। हिंदी में संस्मरण साहित्य विधा का वास्तविक लेखन द्विवेदी-युग से ही माना जाता है।

द्विवेदी जी की प्रेरणा से 'सरस्वती' में बहुत से संस्मरणात्मक जीवन-परिचय प्रकाशित हुए थे। इन जीवन-परिचयों में लेखक की आत्मनुभूति की प्रधानता रहती थी। वे कोरे जीवन-वृत्त मात्र न थे। इसीलिए उन्हें जीवनी न कहकर संस्मरण कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। द्विवेदी-युग के बाद साहित्यकारों के संस्मरण सभी प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होने लगे थे। इस प्रकार, संस्मरण साहित्य-विधा स्वतंत्र रूप में विकसित होकर स्थिरता प्राप्त करने लगी। इस विधा की विकास-यात्रा को गतिमान बनाने में बहुत से लेखकों का योगदान रहा है। उनमें से कुछ प्रमुख संस्मरण-लेखकों का संक्षिप्त विवरण अग्रांकित है–

1. **स्वामी सत्यदेव परिव्राजक–**हिंदी संस्मरण-साहित्य सृजन में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् 1905 ई. के आस-पास उन्होंने अमेरिका की यात्रा की थी। उस यात्रा से संबंधित संस्मरणों का उन्होंने सजीव वर्णन किया है। उनके संस्मरण भाव-प्रभाव की दृष्टि से परिपूर्ण हैं।

नोट

2. **हेमचंद्र जोशी**–स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की तरह हेमचंद्र जोशी ने भी फ्रांस की यात्रा की थी। यात्रा से संबंधित संस्मरणों को उन्होंने भी शब्द-शृंखलाओं में बाँध कर सुंदर वर्णन किया है। किंतु इनके संस्मरणों में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के संस्मरणों की अपेक्षा साहित्यिकता अधिक है। बाद में जोशी जी के संस्मरण 'फ्रांस-यात्रा और संस्मरण' संज्ञक पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए।
3. **पं. पद्म सिंह शर्मा**–'बिहारी-सतसई' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले शुक्ल-युगीन साहित्य-महारथी पं. पद्मसिंह शर्मा का संस्मरण-लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अनेक साहित्यकारों के रस-भीने संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। शर्मा जी के संस्मरणों में उनके व्यक्तित्व की नोंक-झोंक झलकती है। उन्होंने महाकवि अकबर इलाहाबादी का संस्मरण अत्यंत रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें जहाँ एक ओर अकबर का जीवन मुखरित हो उठा, वहीं स्वयं शर्मा जी की विद्वत्ता, जिंदादिली एवं हाजिर-जवाबी की प्रवृत्ति भी साकार हो उठी है। भाषा पर शर्मा जी का जबर्दस्त अधिकार था।
4. **पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी**–पुराने संस्मरण-लेखकों में पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी का भी नाम उल्लेखनीय है। इनके संस्मरण 'लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा' तथा 'मनोरंजक संस्मरण' शीर्षक से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए हैं जो हिंदी गद्य साहित्य के उत्कृष्ट उपादान हैं। लेकिन चतुर्वेदी जी के संस्मरणों में साहित्यिकता की अपेक्षा विनोद का पुट अधिक है।
5. **पं. बनारसीदास चतुर्वेदी**–संस्मरण साहित्य-विधा-लेखन के प्रति अपने को पूर्ण समर्पित करने वाले पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम सिद्धहस्त संस्मरण-लेखकों में अग्रणी है। उन्होंने सैकड़ों संस्मरण लिखकर हिंदी-संस्मरण-लेखक साहित्य को समृद्ध कर आगे बढ़ाया है। उनके 'संस्मरण' संग्रह में अनेक महापुरुषों पर लिखे गए सुंदर और उत्कृष्ट संस्मरण संगृहीत हैं। इस संग्रह के संस्मरणों में संबंधित व्यक्तियों का अनुभूतिपूर्ण चित्रण होने के साथ ही उनके आस-पास का सामाजिक वातावरण भी सजीव हो उठा है। चतुर्वेदी जी के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा से ही हिंदी में प्रमुख संस्मरण-ग्रंथों का प्रकाशन हुआ।
6. **पं. श्रीराम शर्मा**–संस्मरण-लेखकों में पं. श्रीराम शर्मा का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः शर्मा जी के संस्मरण अधिकतर शिकार-संबंधी हैं, पर उनके संस्मरणों में व्यक्तिगत अनुभवों का पुट होने के कारण एक विचित्र यथार्थपरक रोचकता आ गयी है। श्रीराम शर्मा की 'सन् बयालीस के संस्मरण' संज्ञक कृति संस्मरण-विधा की सच्ची प्रतिनिधि है।
7. **महादेवी वर्मा**–महादेवी वर्मा के संस्मरण हिंदी गद्य साहित्य की अक्षयनिधि हैं। उनके संस्मरणों का संग्रह 'अतीत के चलचित्र' शीर्षक से सर्वप्रथम सन् 1941 में प्रकाशित हुआ। इस संकलन के सभी संस्मरण अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं रागात्मक अनुभूति से संपृक्त हैं। वास्तव में महादेवी की अक्षय ममता इन संस्मरणों में सजीव एवं साकार हो उठी है। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' में संकलित संस्मरणों में उनके संस्मरण-लेखन का उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। सर्वोपरि, अतिशय आत्मीयतापूर्ण ढंग से लिखे ये संस्मरण स्वयं लेखिका के जीवन को भी प्रकाशित करते हैं। इस बात को महादेवी ने स्वतः स्वीकार किया है कि 'इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में ही लाकर देख पाते हैं।'' इस प्रकार, महादेवी के संस्मरणांकित प्रसंगों में उनका जीवन-संदर्भ स्वतः उद्भासित हो उठा है। महादेवी मूलतः कवयित्री हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरणों में कवि-हृदय की कोमलता, भावुकता और मधुरता मिलती है और वे भाषा की चित्रोपमता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता आदि गुणों से सजे होते हैं।
8. **राजेंद्रलाल हाण्डा**–आधुनिक संस्मरण-लेखकों में इनका भी नाम प्रचलित है। इनके संस्मरण 'दिल्ली में 20 वर्ष' शीर्षक संकलन में प्रकाशित हो चुके हैं।
9. **श्रीनिधि विद्यालंकार**–संस्मरण-लेखकों में श्रीनिधि विद्यालंकार का नाम भी अग्रगण्य है। इनके संस्मरण 'शिवालिक की घाटियों में' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीनिधि के संस्मरण प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रणों से समन्वित होने के कारण बहुत सुंदर एवं आकर्षक लगते हैं। भाषा की चित्रात्मकता इनके संस्मरणों की प्रमुख विशेषता है।

नोट

10. **राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह**–संस्मरण-लेखन के लिए राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह का नाम भी गौरव के साथ लिया जाता है। इनके संस्मरण कई संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। यथा–'सावनी समा', 'टूटा तारा', 'सूरदास', 'नारी क्या एक पहेली', 'पूरब और पश्चिम', 'हवेली और झोपड़ी', 'देव और दानव', 'वे और हम', 'जानी-सुनी-देखी माला' आदि। इन सभी संस्मरणों में वर्णनों और चित्रणों की सापेक्षिक शैलियों का प्रयोग किया गया है।
11. **अयोध्याप्रसाद गोयलीय**–इनके संस्मरणों के कई संकलन समय-समय पर प्रकाशित हो चुके हैं। 'जन जागरण के अग्रदूत संग्रह' इनका बहुत प्रसिद्ध है। श्री गोयलीय के संस्मरण अधिकतर जीवनीपरक हैं।

इसके अतिरिक्त पं. रामवृक्ष बेनीपुरी, शांतिप्रिय द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', 'देवेंद्र सत्यार्थी, 'राहुल सांकृत्यायन, गुलाबराय, सेठ गोविंददास, इलाचंद्र जोशी, राजेंद्र यादव, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ 'अश्क', रामधारी सिंह दिनकर', 'डॉ. नगेंद्र, भदंत आनंद कौसल्यायन, ओंकार शरद, विष्णु प्रभाकर आदि ने भी अपने उत्कृष्ट संस्मरण हिंदी गद्य साहित्य को दिए और संस्मरण साहित्य विधा के भण्डार को समृद्ध बनाया है।

सारतः हिंदी का संस्मरण साहित्य 20वीं शताब्दी में जन्मा है, परंतु अल्पकाल में ही उसमें उल्लेखनीय प्रगति हुई है। आज हर साहित्यकार अपने संपर्क में आए महान व्यक्ति विशेष के संबंध में अपने संस्मरणात्मक विचारों को रूपायित कर अपने अनुभवों को स्थायी बनाना चाहता है। हिंदी में संस्मरण साहित्य की प्रगति देखकर लगता है कि भविष्य में संस्मरण-साहित्य निबंध कहानी और उपन्यास से अधिक रोचक एवं उत्कृष्ट हो जाएगा और अपने अपूर्व भण्डारण से हिंदी गद्य को महार्घ अवदान प्रदान करेगा। अस्तु हिंदी का संस्मरण साहित्य आज बहुत समृद्ध और पर्याप्त लोकप्रिय हो चुका है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. संस्मरण, संस्मरण-लेखक के सिद्धांतों का .... होता है।
   (क) विकल्प (ख) प्रतिबिंब (ग) प्रवर्त्तक (घ) मत
5. .... की तरह संस्मरण शैली में भी विशिष्टता होती है।
   (क) प्रसंग (ख) संदर्भ
   (ग) भाषा (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
7. संस्मरण में जीवन के .... का संस्मरणात्मक प्रस्तुतीकरण रहता है।
   (क) एक खंड (ख) एक पक्ष (ग) एक रूप (घ) एक भाव

12.1.16 जीवनी साहित्य

साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत जीवनी साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस विधा में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश से प्रभावित महामानवों, मनीषियों और कलाकारों का जीवन-वृत्त वर्णित होता है। यह लेखन-कला का सबसे सुकोमल और सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप है। साहित्य की यह विधा यद्यपि प्राचीन है तथापि इसका वास्तविक विकास आधुनिक युग में ही हुआ। जैसा कि डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है–"आधुनिक युग में वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवन-दृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी-साहित्य लिखने की परंपरा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी-साहित्य हिंदी-गद्य की एक पृथक विधा के रूप में मान्य है।" जीवनी साहित्य का एक छोर स्फुट संस्मरण तक माना जाता है और दूसरा छोर उस जीवनी को जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक का इतिहास हो।

अर्थ-परिभाषा एवं स्वरूप–'जीवन' शब्द जहाँ व्यक्ति-जीवन की बाह्य, घटनाओं को उद्घाटित करता है, वहाँ चरित्र उसकी आंतरिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इस प्रकार 'जीवनी' का आशय है–'जीवन-चरित'। जीवन

नोट

चरित का अभिप्राय–जीवनवृत्त, जीवनवृत्तांत और जीवन चरित्र है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष के बाह्य एवं आंतरिक जीवन का प्रकाशन होता है। अंग्रेजी में इसे 'लाइफ' अथवा 'बायोग्राफी' कहते हैं। हिंदी में जीवनी को जीवन चरित्र या जीवन चरित भी कहा जाता है।

जीवनी साहित्य-विधा के शास्त्रीय पक्ष का विवेचन अभी तक हिंदी में न के बराबर है। पाश्चात्य विद्वानों ने अवश्य इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का यत्न किया है। यहाँ कुछ प्रसिद्ध पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई पारिभाषिक व्याख्याएँ इस प्रकार हैं।

1. **पाश्चात्य विद्वान जॉन्सन के अनुसार–**''जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रिया-कलापों का रंजक वर्णन करना होता है, जो व्यक्ति विशेष की बड़ी से बड़ी महानता से लेकर छोटी से छोटी घरेलू बातों तक से संबंधित होती हैं।'' यह परिभाषा बहुत पुरानी है। आज की साहित्यिक जीवनी विधा के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने में असमर्थ सी है।
2. **पाश्चात्य विद्वान प्रो. शिप्ले के मतानुसार–**''जीवनी किसी व्यक्ति विशेष की जीवन-घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्न पूर्वक लिखा गया इतिहास है, जिसमें व्यक्ति-विशेष के संपूर्ण जीवन या उसके किसी अंश से संबंधित बातों का विवरण मिलता है। यह आवश्यकताएँ उसे एक साहित्यिक विधा का रूप प्रदान करती है।'' प्रो. शिप्ले की यह परिभाषा भी अस्पष्ट है।
3. **वाइवियन डी. सोला का कथन है–**''इतिहास की दृष्टि से जीवनी-आलोचनात्मक प्रज्ञा तटस्थ उत्सुकता, विवरणों के औचित्यपूर्ण-विश्लेषण और चयन पर बल देती है। साहित्य की दृष्टि से इसमें अवयव संबंधी एक सूत्रता रहती है। इसमें सहृदयों की सौंदर्यात्मक वृत्ति की परितुष्टि कारिणी विशेषता भी पाई जाती है। इतिहास और साहित्य के अतिरिक्त जीवनी व्यक्ति विशेष का अध्ययन भी है। .... उसकी अभिव्यक्ति इस ढंग से की जानी चाहिए कि उससे यह प्रतीत हो कि लेखक का उस व्यक्ति विशेष से, जिसकी जीवनी वह लिख रहा है, घनिष्ठ संबंध रहा है, उससे वह बहुत बेतकल्लुफ है। उसकी इस बेतकल्लुफी की अभिव्यक्ति जीवनी में अवश्य होनी चाहिए। .... जीवनी की अभिव्यक्ति बहुत स्वाभाविक और सहज-गति से अथवा बेतकल्लुफी से जानी चाहिए।''

   उपर्युक्त परिभाषाओं में जीवनी को तीन तत्वों की त्रिवेणी से स्पष्ट किया गया है। एक ओर तो जीवनी इतिहास है, दूसरी ओर साहित्यिकता से अनुप्राणित होती है और तीसरी ओर वह व्यक्ति-विशेष का तटस्थ किंतु बेतकल्लुफी पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करती है। वस्तुतः जीवनी का वास्तविक स्वरूप यही है। इस प्रकार जीवनी साहित्यिक विधा होते हुए भी व्यक्ति विशेष के जीवनवृत्त का ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण है।
4. जीवनी के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने लिखा है–''जीवन-कथा वह साहित्यिक विधा है–जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवन-गाथा के साथ-साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है।

क्या आप जानते हैं किसी भी उल्लेखनीय, महत्त्वपूर्ण महामानव के जीवन-चरित को जब लेखक तटस्थ भाव से द्रष्टा बनकर जिस विधा में व्यक्त करता है, उसे जीवनी कहते हैं।

किसी व्यक्ति द्वारा लिखित महान पुरुषों के क्रमबद्ध जीवन परिचय को जीवनी कहते हैं। इसमें व्यक्ति विशेष के जीवन की जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं की रुचिर और सुंदर रसात्मक अभिव्यक्ति होती है। व्यक्ति की छोटी से छोटी बात भी उपेक्षणीय नहीं होती, क्योंकि वह उसके व्यक्तित्व की प्रकाशिका होती है। जीवनी में घटनाएँ यथार्थ और वास्तविक होती हैं। लेखक उनके सजाने, सँवारने और संयोजन में अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति का उपयोग करता है। संयोजन और व्यवस्थापन में जो एक सूत्रता रहती है, वही कलात्मक होती है और वही जीवनी साहित्य को इतिहास से भिन्न कर देती है।''

नोट

लेखक जीवनी लिखने में जो वृत्ति अपनाता है, वह तटस्थता की नहीं होती, अपितु घनिष्टता की होती है। ऐसा लगता है कि वह जिसके जीवन का वृत्तांत लिख रहा है, उसका वह अंतरंग रहा है और उसकी बाह्य-आंतरिक बातों की उसे पूर्ण जानकारी है। उसकी अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता और सहजता अपेक्षित है।

जीवनी-लेखन के लिए लेखक में ऐसी दृष्टि होनी चाहिए जो चरितनायक के जीवन की बिखरी हुई घटनाओं को एक सूत्रता में पिरो सके। यह एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें न कोरा तथ्य निरूपित हो और न कोरी कल्पना। ऐसा ही डॉ. हरदयाल का भी कहना है–''साहित्यिक विधा के रूप में जीवनी-लेखक का अपना एक दृष्टिकोण होना चाहिए, जिससे कि चरित नायक के जीवन की बिखरी हुई घटनाओं को एक सूत्रता प्रदान की जा सके। यदि घटनाओं की अंत:वर्तिनी एकता को खोज सकने वाली दृष्टि का जीवनी-लेखक में अभाव है तो जीवनी-चाहे उसका चरितनायक कितना भी रोचक एवं महान व्यक्तित्व-संपन्न, व्यक्ति क्यों न हो स्थायी महत्त्व की कलात्मक रचना नहीं बन सकती।''

जीवनी इतिहास नहीं है। इतिहास में व्यक्ति का स्वरूप देश-सापेक्ष होता है जबकि जीवनी में सारी विवृत्ति व्यक्ति-सापेक्ष होती है। ऐतिहासिक तथ्यों में नीरसता की संभावना अधिक रहती है। किंतु जीवनी में कलाकार के भावुक हृदय के उच्छवास की झलक उठने के कारण उपन्यास जैसी रोचकता आ जाती है। इतना अवश्य है कि जीवनी से देश, काल की घटनाओं पर किंचित प्रकाश पड़ जाता है, फिर भी, उसमें व्यक्तित्व की ही प्रधानता निहित रहती है। जीवनी-लेखक को अपनी संपूर्ण विवृति में आत्मीयता और सहानुभूतिपूर्ण वातावरण बनाए रखने की आवश्यकता पड़ती है। उसके लिए यह जरूरी नहीं होता कि वह जिसकी जीवनी लिख रहा है, उससे प्रत्यक्ष परिचित ही हो। वह ऐसे व्यक्ति की भी जीवनी लिख सकता है, जिससे उसका कोई परिचय न हो। जीवनी में घटनाओं का अंकन ही नहीं होता, अधिक चित्रण भी होता है क्योंकि उसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्णतया उभर कर आता है। वास्तव में जीवनी व्यक्तित्व का यथार्थ और सच्चा संप्रेषण है।

12.1.17 जीवनी लेखक के लिए ध्यातव्य बातें

जीवनीकार के लिए यह अपेक्षित होता है कि वह प्रामाणिक तथ्यों को एकत्र कर उन्हें सहानुभूतिपूर्ण शैली में संयोजित कर दे। वह जिस व्यक्ति चरित्र को अंकित कर रहा है, उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि अपनाकर यथावसर उसके गुण-दोषों को उजागर करता जाए। उसे यह भी ध्यान में रखना पड़ता है कि जीवनी लेखन में अनावश्यक बातों का समावेश न होने पाए और आवश्यक बातें छूट न जाएँ। इतना ही नहीं बल्कि जीवनी लिखते समय जीवनी लेखक व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को विश्रृंखलित नहीं कर सकता। उसे घटना का तटस्थ भाव से वर्णन करना पड़ता है। इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए पं. श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि ''जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन का शब्द-चित्र है और इसलिए जीवनी-लेखक की लेखनी-तालिका से अंकित चित्र यथार्थ होना चाहिए। उसे निष्पक्ष रूप से न्यायाधीश की भांति जीवनी नायक के जीवन पर सम्मति देनी चाहिए। हाँ, लेखन कला-कौशल इसमें है कि जीवनी-चित्र में रंग आवश्यकता से अधिक गहरा या फीका न हो और चरित्र-विश्लेषण का आधा जीवनी नायक की घटनाओं अथवा दुर्घटनाओं संबंधी सामग्री होनी चाहिए न कि अपनी मनोभावना मात्र।''

डॉ. कमलेश ने भी जीवनी-लेखन को एक दुरूह कर्म बताते हुए कहा है–''जीवनी लिखना श्रम-साध्य कार्य है और उसमें बहुत कुछ सतर्कता बरतनी पड़ती है। चरितनायक के देवत्व अथवा राक्षसत्व का संतुलित रूप समक्ष रखकर ही कठिन कार्य संपन्न हो सकता है और उसी से पाठक तक जीवनोपयोगी तथ्यों का संकलन कर सकता है। अत्यधिक प्रशंसा अथवा अत्यधिक निंदा से बचना जीवनी लेखक के लिए नितांत आवश्यक है।''

12.1.18 जीवनी के तत्व

मनीषियों, आलोचकों एवं विद्वानों ने जीवनी को कहानी और उपन्यास के अत्यंत निकट की वस्तु स्वीकार किया है। अत: जो तत्व कहानी और उपन्यास में आवश्यक होते हैं उन्हीं तत्वों को जीवनी में भी होनी चाहिए–

नोट

1. **घटना**–जीवनी का अपना स्वयं एक इतिहास होता है। इसका वास्तविकता से संबंध होता है। इसलिए लेखक पूरे इतिहास को न लिखकर केवल महत्त्वपूर्ण घटनाओं को ही लिखता है। अस्तु, जीवनी में सही-वास्तविक घटनाओं एवं तथ्यों का ही समावेश पाया जाता है।
2. **चरित्र**–जीवनी-लेखक द्वारा लिखे जाने वाले विषय का चरित्र-नायक केवल वही व्यक्ति होता है जिसने देश, जाति या इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया हो।
3. **देशकाल**–देश काल का जीवनी में बड़ा महत्त्व होता है। जीवनी में देशकाल का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं होता। जब लेखक नायक से संबंधित घटनाओं का उल्लेख करता है तब देश-काल अथवा वातावरण स्वत: ही उभर कर सामने आ जाता है।
4. **भाषा-शैली**–जीवनी की भाषा-शैली घटनाओं के चयन, विश्लेषण और उसके प्रस्तुतीकरण के आधार पर होनी चाहिए। इसके साथ ही जीवनी में निरपेक्षता का भाव भी होना आवश्यक है, क्योंकि सापेक्षित में तो अंध भक्ति की प्रधानता होती है। जीवनी की भाषा संतुलित, सहृदयतापूर्ण तथा शैली सहज, सरल, भावपूर्ण तथा चित्ताकर्षक होनी चाहिए।

जीवनी की विशेषताएँ–डॉ. भगवान शरण भारद्वाज ने जीवनी की अधोलिखित सात विशेषताओं का निर्देश किया है–

1. **ऐतिहासिक सत्यता**–जीवनी को इतिहास की दृष्टि से सत्य होना चाहिए, नहीं तो उसे प्रामाणिक नहीं माना जाएगा।
2. **तटस्थता**–जीवनी-लेखक को तटस्थ रहना आवश्यक होता है, क्योंकि लेखक यदि तटस्थ नहीं रहेगा तो सही तथ्य सामने नहीं आ सकेंगे। फिर जीवनी 'जीवनी' न रहकर स्तुति-ग्रंथ बन जाएगी।
3. **वैज्ञानिकता**–जीवनी-लेखक को चाहिए कि सामग्री का चयन और उसका विश्लेषण वैज्ञानिक आधार पर करे।
4. **मनोदशा का विश्लेषण**–जीवनी में नायक की मनोदशा का भी वर्णन होना चाहिए और यह तभी संभव है जब लेखक इतना सामर्थ्यवान हो कि वह नायक की मन:स्थिति का समग्रदृष्टि से विश्लेषण कर सके।
5. **साहित्यिकता**–जीवनी में साहित्यिकता भी होनी चाहिए, क्योंकि जीवनी एक साहित्यिक विधा है।
6. **मानवीयता**–जीवनी में आवश्यक मानवीयता का पुट होना अति आवश्यक है।
7. **देश-काल**–देश-काल का निरूपण भी जीवनी में होना अपेक्षित है।

आधारित सामग्री–जीवनी के लिए यह अपेक्षित है कि वह प्रामाणिक तथ्यों पर आधृत हो। जीवनी की सामग्री के कुछ तत्व-पाश्चात्य विचारक कैथल ने निम्नलिखित बताए हैं–1. "उसी विषय अथवा संबंधित विषयों पर लिखी गईं पुस्तकें, 2. मूल सामग्री यथा-पत्र, डायरी या अधिकृत गवेषणा सामग्री 3. समकालीनों के संस्मरण, 4. यदि वर्ण्य-विषय बहुत पहले का नहीं है, तो जीवित व्यक्तियों की यादगारें, 5. जीवनी लेखक यदि अपने चरितनायक के संपर्क में रहा है, तो उसके अपने संस्मरण, 6. उन स्थलों का भ्रमण तथा पर्यवेक्षण जहाँ चरितनायक रहा था।"

12.1.19 जीवनी और संस्मरण

प्रत्यक्षत: देखने में ऐसा लगता है कि जीवनी और संस्मरण में कोई भेद नहीं है पर दोनों में तात्विक अंतर है। यह दोनों ही स्वतंत्र साहित्यिक विधाएँ हैं। जीवनी लेखक का लक्ष्य व्यक्ति-विशेष के जीवन की प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों का ठीक-ठीक और क्रमबद्ध चित्र अंकित करना होता है, जबकि संस्मरण में संस्मरणकार मात्र उन बातों, तथ्यों, घटनाओं अथवा दृश्यों का ही निरूपण करता है जिनसे वह स्वयं प्रभावित होता है।

जीवनीकार के लिए यह भी जरूरी नहीं है कि वह जिस व्यक्ति की जीवनी लिख रहा है, उससे व्यक्तिगत रूप से घनिष्ठ संबंध हो अथवा बहुत अधिक परिचित ही हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह महामानवों का जीवनवृत्त-श्रद्धाभाव से अभिप्रेरित होकर प्राचीन उपलब्ध विवरणों, पुस्तकों और तथ्यों के आधार पर भी लिख

डालता है। पर संस्मरण लेखक के लिए यह अनिवार्य है कि वह संस्मर्ण्य व्यक्ति के निकट संपर्क में रहा हो, वह उसे निकट से जाँच सका हो अथवा उसका साक्षात्कार किया हो, तभी संस्मरण लिख सकता है। अस्तु, जीवनी और संस्मरण में प्रमुख अंतर व्यक्ति के नैकट्य का होता है।

12.1.20 जीवनी और रेखाचित्र

जीवनी और रेखाचित्र में भी अंतर है। जीवनी में लेखक को केवल व्यक्ति-विशेष के जीवनवृत्त पर ही अपना ध्यान केंद्रित करना पड़ता है और विवरणों के प्रसंग में कल्पना की अपेक्षा उसे श्रद्धा और सहानुभूतिपूर्ण शैली अपनानी पड़ती है, पर रेखाचित्र में लेखक व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि किसी का भी कल्पना रंजित रेखांकन करता है। इसी अंतर के कारण जीवनी और रेखाचित्र दो स्वतंत्र विधाएँ मानी जाती हैं।

12.1.21 जीवनी और आत्मकथा

हिंदी गद्य की अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा जीवनी आत्मकथा के अति निकट है। इन दोनों में मौलिक अंतर मात्र इतना है कि जीवनी किसी भी व्यक्ति-विशेष की हो सकती है, लेकिन आत्मकथा स्वयं की होती है। अस्तु, इसी भेद के कारण दोनों भिन्न साहित्यिक विधाएँ हैं।

12.1.22 जीवनी-साहित्य के विविध प्रकार (भेद या वर्गीकरण)

हिंदी में पर्याप्त जीवनी-साहित्य उपलब्ध है। किंतु किसी भी चिंतक, मनीषी और विद्वान ने इसका व्यवस्थित, अनुसंधानपरक तथा वैज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास नहीं किया। प्रकृति-भेद के आधार पर हिंदी की समस्त जीवनियाँ निम्नलिखित कोटियों में वर्गीकृत की जा सकती हैं–1. संतों की जीवनी 2. राष्ट्र-नेताओं की जीवनी 3.ऐतिहासिक-चरित्रों की जीवनी 4. वैज्ञानिकों की जीवनी 5. दार्शनिकों की जीवनी 6. साहित्यकारों की जीवनी 7. वीर पुरुषों की जीवनी 8. साधारण व्यक्तियों की जीवनी, 9. मनोवैज्ञानिक जीवनी 10. कलात्मक जीवनी 11. बालोपयोगी जीवनी।

12.1.23 हिंदी जीवनी साहित्य की विकास-यात्रा

हिंदी साहित्य में चौरासी वैष्णव की वार्ता, दो सौ वैष्णवन की वार्ता, ''मूल, गोसाईं चरित, 'भक्तमाल' आदि ग्रंथ को जीवनी साहित्य के क्षेत्र में प्रयास मात्र कहा जा सकता है। इन ग्रंथों में संतों एवं भक्तों के जीवनवृत्त को अलौकिक महिमा मंडित रूप में अतिरंजनापूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। जीवनी-साहित्य में जिस प्रमाणिकता और कलात्मकता की आवश्यकता पड़ती है, उसका इनमें अभाव है। इसलिए उक्त ग्रंथों में वर्णित संतों व भक्तों के जीवन-वृत्त की विश्वसनीयता संदिग्ध है। अस्तु इन्हें आधुनिक जीवनी-साहित्य का पूर्व रूप ही माना जा सकता है। पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप अन्य गद्य-विधाओं की भांति हिंदी में जीवनी लिखने की परंपरा का आरंभ भी भारतेंदु-युग से होता है। सन् 1881 ई. में गोपाल शर्मा शास्त्री ने महान विभूति स्वामी दयानंद सरस्वती पर हिंदी की पहली जीवनी 'दयानंद दिग्विजय' लिखी। इसके पश्चात् हिंदी साहित्य में जीवनी साहित्य लिखने की परंपरा चल पड़ी।

जीवनी-साहित्य की विकास यात्रा को निम्नांकित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है–

1. **भारतेंदु युग**–इस युग में पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषों, संतों, भक्तों, कवियों आदि की जीवनियाँ लिखी गयीं। भारतेंदु ने 'चरितावली', 'बादशाह-दर्पण', 'पंच पवित्रात्मा' और 'उत्तरार्ध भक्तमाल' संज्ञक जीवनियाँ लिखीं। 'चरितावली' में उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों के छोटे-छोटे जीवन चरित्र लिखे। इस युग के अन्य प्रमुख जीवनी-लेखक और उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं–बालमुकुंद गुप्त कृत 'प्रतापनारायण मिश्र की जीवनी', कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'मीराबाई का जीवन चरित्र', 'छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र', राधाकृष्णदास कृत 'भारतेंदु का जीवनचरित्र', 'नागरीदास का जीवन-चरित्र', 'सूरदास', 'मुंशी देवी प्रसाद कृत-महाराज मानसिंह कछवाहा', 'बाबर', 'अकबर', 'बीरबल', 'शेरशाह', 'राणा साँगा, 'प्रतापसिंह,

नोट

रमाशंकर शर्मा कृत 'नेपोलियन बोना पार्ट का जीवन-चरित्र' आदि। इसके अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों द्वारा लिखी गई कुछ जीवनियाँ तथा जीवनियों के कुछ अनुवाद भारतेंदु-युग के जीवनी साहित्य के अंतर्गत हैं। आरम्भिक प्रयास होने के कारण इस युग की जीवनियों में शुष्कता की मात्रा अधिक है और जीवन में चरित्रोचित-औदात्य एवं कलात्मकता का अभाव है। डॉ. हरदयाल के शब्दों में "भारतेंदु-युग में जिन लोगों की जीवनियाँ लिखी गईं, उनमें प्राचीन भक्त, कवि, संत, धार्मिक नेता, देशी-विदेशी राजा-रानियों, देश-विदेश के महापुरुषों और समकालीन साहित्यकार आदि आते हैं। इन जीवनियों में धार्मिक भाव से लिखी गयी जीवनियों को छोड़कर शेष जीवनियों में कलात्मकता का अभाव है। इनमें चरित-नायकों के जीवन की तिथियों, घटनाओं आदि को तथ्यात्मक ढंग से प्रस्तुत भर कर दिया गया है।"

2. **द्विवेदी-युग**–इस युग में जीवनी-साहित्य लेखन की दिशा में संतोषजनक विकास हुआ और यह परंपरा उत्तरोत्तर विकास के पथ पर बढ़ती रही। द्विवेदी-युग वास्तव में समाज-सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन का युग था। इस युग में राष्ट्रवादी नेताओं, देश-भक्तों, समाज-सुधारकों, महापुरुषों की जीवनियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी गयीं। द्विवेदी-युग में स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद पर जीवनी लिखने वालों के कुछ प्रमुख नाम हैं–राम विलास, 'शारदा', 'दयाराम, अखिलानंद शर्मा, सत्यानंद स्वामी आदि मन्मथनाथ कृत 'गुरुनानक', रामनारायण मिश्र कृत 'महात्मा ईसा', सुंदर लाल कृत 'हजरत मुहम्मद', प्रेमचंद कृत 'दुर्गादास', बलदेव उपाध्याय कृत 'शंकराचार्य आदि द्विवेदी-युग की महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ हैं। अस्तु, इस युग में लिखित जीवनियों की भाषा परिष्कृत है, तथ्यों में प्रमाणिकता है और भारतेंदु-युग की अपेक्षा इनमें साहित्यिकता की मात्रा अधिक है।

नोट्स पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप अन्य गद्य-विधाओं की भाँति हिंदी में जीवनी लिखने की परंपरा का आरंभ भी भारतेंदु-युग से होता है।

3. **प्राक्-स्वातंत्र्य-युग**–द्विवेदी-युग की समाप्ति के बाद और स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की अवधि को प्राक्-स्वातंत्र्य-युग की संज्ञा दी गयी है। भारतीय इतिहास का यह युग अति महत्त्वपूर्ण है। इस युग में लेखकों ने राष्ट्र-भक्ति एवं स्वतंत्रता-प्रेम से युक्त और राजनीति परक जीवनियाँ लिखीं। मन्मथनाथ गुप्त कृत 'चंद्रशेखर आजाद', छविनाथ पाण्डेय कृत 'नेताजी सुभाषचंद्र बोस', रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'जय प्रकाश नारायण', देवराज मिश्र कृत 'राजर्षि टण्डन', सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना मालवीय', देवीदत्त शास्त्री कृत 'गणेश शंकर विद्यार्थी', हरिभाऊ उपाध्याय कृत 'जमनालाल बजाज', बलराज मधोक कृत 'श्यामा प्रसाद मुखर्जी', मुकुंदीलाल वर्मा कृत 'कर्मवीर गाँधी', डॉ. संपूर्णानंद कृत 'कर्मवीर गाँधी', जगदीश झा 'विमल' कृत 'मौलाना अबुल कलाम आजाद' आदि इस युग की महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ हैं। इसके अतिरिक्त इस युग में अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में लिखी हुई जीवनियों का हिंदी अनुवाद भी हुआ। "इस युग में एक ओर गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस अहिंसात्मक लड़ाई लड़ रही थी, दूसरी ओर क्रांतिकारी युवा वर्ग प्राणों को हथेली पर लेकर भारत-माता को स्वतंत्र कराने के लिए संघर्षरत थे। ऐसे समय में समाज को क्रांतिकारियों, देश-भक्तों से प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता थी। इसलिए लेखकों ने देश-प्रेमियों, बलिदानियों की जीवनी लिखकर उक्त आवश्यकता की पूर्ति की।"

4. **स्वातंत्र्योत्तर-युग**–प्राक्-स्वातंत्र्य-युग के बाद स्वाधीन भारत देश में लिखित जीवनी-साहित्य को आधुनिक युग का जीवनी साहित्य भी कहते हैं। आज भी जीवनी-साहित्य के भंडारण में निरंतर श्रीवृद्धि हो रही है। डॉ. रामवलिास शर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय, शांति जोशी, डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, शिवसागर मिश्र, श्री शोभाकांत, लक्ष्मीनारायण लाल आदि इस युग के महत्त्वपूर्ण जीवनी-लेखक है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखित 'निराला की साहित्य-साधना', शांति जोशी लिखित 'सुमित्रानंदन पंत-जीवन और

साहित्य', अमृतराय लिखित 'कलम का सिपाही', विष्णु प्रभाकर लिखित 'आवारा मसीहा', डॉ. भगवती प्रसाद सिंह लिखित 'मनीषी की लोकयात्रा' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन कृतियों के अलावा जयप्रकाश नारायण, भीमराव अम्बेदकर, डॉ. राममनोहर लोहिया, महात्मा गाँधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, लाल बहादुर शास्त्री, डॉ. राधाकृष्णन, आचार्य नरेंद्रदेव आदि राजनेताओं, कवियों, महापुरुषों और महामानवों के जीवन चरित्र पर जीवनियाँ लिखी गईं। डॉ. रांगेय राघव ने महापुरुषों और साहित्य साधकों से संबंधित छोटी-छोटी औपन्यासिक शैली में जीवनियाँ लिखी हैं। इधर डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल लिखित 'अंधकार में एक प्रकाश: जयप्रकाश' ख्याति-प्राप्त जीवनी है।

इस प्रकार हिंदी जीवनी-साहित्य सौ वर्ष से अधिक की विकास-यात्रा पूरा कर चुका है। इस अवधि में हजारों जीवनियों ने इस साहित्यिक विधा को समृद्ध किया है। आज 'विश्व के महान वैज्ञानिक', 'विश्व के महान साहित्यकार', 'विश्व की प्रख्यात महिलाएँ' नाम से छोटे-छोटे बालकों और किशोरों के लिए जीवनियाँ लिखी जा रही हैं। इधर राजकमल एण्ड संस, आत्माराम एण्ड संस तथा हिंदी प्रचारक संस्थान ने विश्व के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, आविष्कारकों और खोजियों की कुछ किशोरोपयोगी जीविनयाँ प्रकाशित की हैं। हिंदी में लिखित कुछ जीवनियों का अनुवाद अनेक विदेशी तथा भारतीय भाषाओं में हो चुका है। बंगला भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरतचंद्र की विष्णु प्रभाकर-लिखित जीवनी 'आवारा मसीहा' इतनी प्रामाणिक और लोकप्रिय हुई कि बंगला भाषा में लिखित कोई भी जीवनी इसकी बराबरी नहीं कर पाती। उन्होंने शरतचंद्र के जीवन से संबंद्ध संपूर्ण उपलब्ध सामग्री का अनुशीलन करके उनकी प्रतिभा को इसमें उद्‌घाटित किया है। वस्तुत: इस कृति से शरतचंद्र की प्रतिभा का पुनर्सृजन हुआ है।

टास्क हिंदी जीवनी साहित्य की विकास-यात्रा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

विशेष बात यह है कि आज विभिन्न साहित्यकारों पर होने वाले अनुसंधानों तथा शोध-ग्रंथों में जीवनी साहित्य-विधा का कलात्मक ढंग से प्रमाणिक और विश्वसनीय स्वरूप रूपायित हो रहा है—यथा—'विद्यापति: व्यक्ति और रचनाकार', 'केदारनाथ अग्रवाल: व्यक्ति और रचनाकार' और 'अज्ञेय की सौंदर्य चेतना' आदि। इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में र.वि. धुलेकर संपादित 'मातृभूमि शब्द कोश', डॉ. प्रेमनारायण टण्डन के 'हिंदी साहित्यकार कोश' 'डी.आर. टोलीवाल के भारतवर्ष की विभूतियाँ' तथा एस.पी. भट्टाचार्य के 'स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक' नामक कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त जीवनियों के प्रकाशित होने के बावजूद अभी हम यह नहीं कह सकते कि हिंदी का जीवनी-साहित्य विश्वस्तर की जीवनियों के समक्ष पहुँच चुका है। इसके लिए साहित्यकारों और विद्वानों को अभी बहुत कुछ करना शेष है। जीवनी-लेखन के लिए जिस मनोभूमि की आवश्यकता होती है, हिंदी जीवनी-साहित्य में अभी तक उसकी कमी है। फिर भी, हिंदी जीवनी-साहित्य निरंतर वृद्धि प्राप्त कर रहा है। इस तरह विषय वैविध्य की दृष्टि से हिंदी जीवनी-साहित्य का भविष्य पर्याप्त आशाजनक और समुज्ज्वल है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. जीवनी साहित्य-विधा के शास्त्रीय पक्ष का विवेचन अभी तक हिंदी में न के बराबर है।
8. जीवनी-साहित्य में जिस प्रमाणिकता और कलात्मकता की आवश्यकता पड़ती है, उसका इनमें अभाव है।
9. बांग्ला में लिखित कुछ जीवनियों का अनुवाद अनेक विदेशी तथा भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

12.2 सारांश (Summary)

नोट

- रेखाचित्र संवेदना को जगाने वाली किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना को शब्दों द्वारा विनिर्मित वह मर्मस्पर्शी और भावमय रूप-विधान है जिसमें लेखक का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-दृष्टि अपना निजीपन उड़ेल कर प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है।
- रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है जो अपने सीमित कलेवर में किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, घटना, दृश्य अथवा भाव का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र उद्घाटित करती है। इसमें पात्रों का चरित्रोद्घाटन तथा देशकाल पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अपनी संक्षिप्त परिधि में जो कुछ इसमें चित्रित होता है, उसमें समस्त जीवन की अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति की मूर्तिमत्ता ही रेखाचित्र की आत्मा है।
- आधुनिक काल में रेखाचित्र-विधा का बहुमुखी विकास प्रभासमान है। आज राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी प्रकार के रेखाचित्र लिखे जा रहे हैं।
- संस्मरण सहृदय के स्मृति-कोष की अमूल्य आनंददायिनी निधि है। अनुभव से इसका प्रत्यक्ष संबंध है। संस्मरण-लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। तात्विक दृष्टि से संस्मरण स्मृति की अभिव्यक्ति है। स्मरणीयता इसकी पहली शर्त है। पुनः स्मृत कर जो लिखा जाता है, वही संस्मरण है।
- जीवनी इतिहास नहीं है। इतिहास में व्यक्ति का स्वरूप देश-सापेक्ष होता है जबकि जीवनी में सारी विवृत्ति व्यक्ति-सापेक्ष होती है। ऐतिहासिक तथ्यों में नीरसता की संभावना अधिक रहती है। किंतु जीवनी में कलाकार के भावुक हृदय के उच्छवास की झलक उठने के कारण उपन्यास जैसी रोचकता आ जाती है। इतना अवश्य है कि जीवनी से देश, काल की घटनाओं पर किंचित प्रकाश पड़ जाता है, फिर भी, उसमें व्यक्तित्व की ही प्रधानता निहित रहती है।
- जीवनी-लेखन के लिए जिस मनोभूमि की आवश्यकता होती है, हिंदी जीवनी-साहित्य में अभी तक उसकी कमी है। फिर भी, हिंदी जीवनी-साहित्य निरंतर वृद्धि प्राप्त कर रहा है। इस तरह विषय वैविध्य की दृष्टि से हिंदी जीवनी-साहित्य का भविष्य पर्याप्त आशाजनक और समुज्ज्वल है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **आत्मकथा**–जीवनी
2. **जीवनी लेखक**–जीवनी लिखने वाला, आत्मकथा लिखने वाला

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. गद्य साहित्य की विविध विधाओं एवं स्वरूपों का वर्णन करें।
2. रेखाचित्र से आप क्या समझते हैं? रेखाचित्र के अपेक्षित तत्वों का वर्णन करें।
3. हिंदी रेखाचिा के संक्षिप्त ऐतिहासिक विकासक्रम की विवेचना करें।
4. संस्मरण से क्या तात्पर्य है? इसे परिभाषित करते हुए संस्मरण-लेखन के आधार का वर्णन करें।
5. संस्मरण रचना के तत्व या उपकरण कौन-कौन से हैं? वर्णन करें।
6. हिंदी संस्मरण साहित्य के विकास की व्याख्या करें।
7. जीवनी साहित्य क्या है? जीवनी साहित्य के स्वरूप का वर्णन करें।
8. जीवनी साहित्य के तत्व एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
9. जीवनी साहित्य की विकास यात्रा की व्याख्या करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. रेखाचित्र	2. अंग्रेज़ी/रूसी	3. महादेवी वर्मा	4. (ख)	5. (ग)
6. (क)	7. सत्य	8. सत्य	9. असत्य	

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास–*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*

नोट

इकाई–13 : आत्मकथा एवं रिपोर्ताज का विकास

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 आत्मकथा एवं रिपोर्ताज
13.1.1 आत्मकथा-लेखक के लिए अपेक्षित गुण
13.1.2 आत्मकथा-लेखन का उद्देश्य
13.1.3 आत्मकथा के रूप
13.1.4 हिंदी आत्मकथा का विकास
13.1.5 रिपोर्ताज
13.1.6 रिपोर्ताज-लेखक के लिए आवश्यक बातें
13.1.7 रिपोर्ताज एवं अन्य साहित्यिक विधाओं में अंतर
13.1.8 हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज-लेखन का उद्‌भव और विकास
13.1.9 स्वातंत्र्योत्तर-युग में रिपोर्ताज-लेखन का विकास
13.2 सारांश (Summary)
13.3 शब्दकोश (Keywords)
13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आत्मकथा लेखन का उद्देश्य जानने में।
- हिंदी आत्मकथा का विकास जानने में।
- रिपोर्ताज एवं अन्य साहित्यिक विधाओं में अंतर समझने में।
- स्वातंत्र्योत्तर-युग में रिपोर्ताज-लेखन का विकास जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करे, उसे आत्मकथा कहते हैं। जीवनी साहित्य की भाँति ही आत्मकथा भी हिंदी गद्य साहित्य की एक सरस संस्मरणात्मक विधा है। आत्मकथा ऐसी जीवन-कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है, जिसके जीवन-वृत्त का वर्णन अभीष्ट है। वास्तव में आत्मकथा एक प्रकार का इतिहास भी है जिसमें तटस्थ भाव की अपेक्षा रहती है। इसमें लेखक पूरे युग परिवेश का एक प्रमाणिक इतिहास प्रस्तुतः करने का प्रयास करता है।

रिपोर्ट का साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज है। हिंदी में रिपोर्ताज को 'सूचनिका' 'रूपनिका' और वृत्त-निवेशन भी कहते हैं। परंतु सामान्यत: प्रचलित शब्द रिपोर्ताज ही है। रिपोर्ताज मूलत: फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। इसके पर्याय रूप में अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट के माध्यम से आया है। 'रिपोर्ताज', रिपोर्ट से भिन्न है। रिपोर्ट का आशय किसी घटना, खबर, आँखों-देखा हाल आदि का यथातथ्य वर्णन है।

13.1 आत्मकथा एवं रिपोर्ताज

जीवनी साहित्य की भाँति ही आत्मकथा भी हिंदी गद्य साहित्य की एक सरस संस्मरणात्मक विधा है। संस्मरणात्मक होते हुए भी यह विधा संस्मरण साहित्य से भिन्न है। यह भी हिंदी की आधुनिक नवीन विधाओं में एक मुख्य विधा है। हिंदी साहित्य में आत्मकथा का प्रचलन अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम है। तथ्य-विवेचना के संदर्भ में हिंदी की अन्य विधाओं, की तुलना में आत्मकथा को अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक माना जाता है। जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने बीते जीवन का व्यवस्थित वर्णन लिखता है, तब आत्मकथा की सृष्टि होती है।

आत्मकथा का आशय–आत्मकथा का शब्दिक अर्थ है–'अपनी कथा'। जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करे, उसे 'आत्मकथा' कहते हैं। अर्थात् आत्मकथा ऐसी जीवन-कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है, जिसके जीवन-वृत्त का वर्णन अभीष्ट है। दूसरे शब्दों में अपने विषय में लिखे गए संस्मरणों का अधिक व्यवस्थित और विस्तृत रूप ही आत्मकथा है। इसे कुछ विद्वान 'आत्मचरित' भी कहते हैं।

आत्मकथा में लेखक निष्पक्ष भाव से अपने गुण-दोषों की सम्यक् अभिव्यक्ति करता है और अपने चिंतन, संकल्प-विकल्प, उद्देश्य एवं अभिप्राय को व्यक्त करने हेतु जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि इस साहित्यिक विधा में लेखक अपने वैयक्तिक जीवन के ही खट्टे-मीठे अनुभवों को क्रमानुसार बाह्य सामग्रियों तथा स्मृति के आधार पर लिपिबद्ध करता है।

नोट्स हिंदी साहित्य में आत्मकथा प्रचलन अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत कम है।

वास्तव में आत्मकथा एक प्रकार का इतिहास भी है जिसमें तटस्थ भाव की अपेक्षा रहती है। इसमें लेखक पूरे युग और परिवेश का एक प्रमाणिक इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। स्मृति की धारा पर लिखी जाने के कारण यह विधा एक ओर जहाँ जीवनी के निकट जान पड़ती है तो वहीं दूसरी ओर वैयक्तिक घटनाओं के प्रस्तुतीकरण के कारण डायरी के समीप प्रतीत होती है। किंतु जीवनी की अपेक्षा 'आत्मकथा' व्यक्तिनिष्ठ अधिक होती है। अनुकूलताओं के साथ इसमें लेखक को अनेक प्रतिकूलताओं को भी चित्रित करना पड़ता है। अत: आत्मकथा में अविश्वसनीय यथार्थ एवं कल्पित बातों का समावेश वर्जित रहता है। बिना कुरूपता या अवगुण को छिपाए अतीत जीवन की सम्यक् अभिव्यक्ति ही शुद्ध आत्मकथा बन जाती है। आत्मकथा में चित्रण की अपेक्षा वर्णन का प्राधान्य रहता है। संस्मरण की तरह इसमें भी आत्मीयता, स्पष्टवादिता, सुसंगठितता, स्वाभाविकता आदि गुण विद्यमान रहते हैं। फिर भी, आत्मकथा संस्मरण का ही एक रूप है।

13.1.1 आत्मकथा-लेखक के लिए अपेक्षित गुण

'आत्मकथा' लेखन एक कठिन कार्य है। दिनकर जी भी आत्मकथा-लेखन को बड़े साहस का कार्य मानते थे। शरतचंद्र के प्रशंसकों ने उनसे आत्मकथा लिखने का आग्रह किया, तो उनका कथन था–'यदि मुझे यह मालूम होता कि 'आत्मकथा' लिखनी होगी, तो कुछ और ही जीवन जिया होता।' आत्मकथा लिखने में लेखक को तटस्थ और अपने प्रति निर्मम होना पड़ता है। यदि आत्म-निरीक्षण से प्राप्त तथ्यों को तटस्थ होकर अभिव्यक्त न किया गया तो आत्मकथा-लेखन का कोई अर्थ नहीं है। आत्मकथा-लेखन में एकांतिक वातावरण की अपेक्षा

नोट

होती है, साथ ही लेखक को ईमानदार होना आवश्यक है। इसमें साधक, साध्य और सिद्धि का केंद्र-बिंदु एक ही है और वह है स्वयं लेखक की आत्मा। अत: आत्मवादी हुए बिना उत्कृष्ट आत्मकथा नहीं लिखी जा सकती है।

13.1.2 आत्मकथा-लेखन का उद्देश्य

आत्मकथा-लेखन का अर्थ है–'समाज के सामने अपने को नंगा कर देना।' पद्मसिंह शर्मा ने आत्मकथा-लेखन के उद्देश्य के संबंध में लिखा है–"उसमें एक ओर तो आत्मनिरीक्षण या पर्यवेक्षण होता है और दूसरी ओर अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करके अपनी स्थिति का स्पष्ट दर्शन कराना या अपने अनुभवों से दूसरों को लाभान्वित कराना होता है।" डॉ. आशाकुमारी के विचारनुसार–"आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने बीते हुए जीवन से संबद्ध समस्त मार्मिक एवं रमणीय घटनाओं का सिंहावलोकन तथा अपनी हार-जीत, दुर्बलताओं, सबलताओं, प्रेम, ईर्ष्या, घृणा आदि की अभिव्यक्तियों के द्वारा अपना आत्मनिरीक्षण करता है।" आत्मकथा वस्तुत: दो दृष्टिकोण से लिखी जाती है–1. आत्मनिरीक्षण करने की दृष्टि से 2. दूसरों को अपने अनुभव का लाभ उठाने देने के लिए।

क्या आप जानते हैं आत्मकथा में लेखक का प्रतिपाद्य स्वयं लेखक होता है। अपने जीवन का सांगोपांग विश्लेषण करने के लिए ही आत्मकथा लिखी जाती है। आत्मकथा वास्तव में एक महापुरुष की जीवन-गाथा का महाकाव्य है। इस आत्मकथा-रूपी महाकाव्य का नायक, दर्शक, पाठक और लेखक वह स्वयं होता है। महात्मा गाँधी, डॉ. राजेंद्रप्रसाद, राहुल सांकृत्यायन आदि की आत्मकथाएँ इसके उदाहरण हैं।

13.1.3 आत्मकथा के रूप

आत्मकथा में मानव-जीवन का वृतांत उसके शब्द-शब्द में व्यक्त होता है। समाज के जिस क्षेत्र का व्यक्ति होगा, तद्नुरूप उसकी आत्मकथा होगी। हिंदी साहित्य में आत्मकथा साहित्य बहुत कम रचा गया है। जो कुछ साहित्य उपलब्ध है, उसको प्रवृत्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने तीन वर्गों में बाँटा है–

1. **धार्मिक प्रवृत्ति-प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएँ**–धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों की आत्मकथाएँ धर्म-प्रधान होती हैं। इस कोटि की आत्मकथाओं में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं। यथा–
    1. वियोगी हरि कृत 'मेरा जीवन-प्रवाह'।
    2. हरिभाऊ उपाध्याय कृत 'साधना के पथ पर'।
    3. भवानीदयाल संन्यासी कृत 'प्रवासी की कहानी'।
2. **राजनीतिक प्रवृत्ति-प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएँ**–राजनीतिक नेताओं का जीवन एक संघर्ष का जीवन होता है। उत्थान-पतन उनके जीवन के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं। भाग्य-चक्र उन्हें किस समय किस पक्ष की ओर ले जाकर पटकता है, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। इन लोगों की आत्मकथाओं का सौंदर्य भाग्य के इसी उत्थान-पतन की कहानी को सच्चाई से अभिव्यक्त करने में निहित रहता है। महात्मा गाँधी, डॉ. राजेंदप्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरू कृत 'मेरी कहानी' आदि महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इसी कोटि के अंतर्गत आती हैं।
3. **साहित्यकारों के जीवन की आत्मकथाएँ**–साहित्यकार के आत्मकथात्मक वर्णनों में एक प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति रहती है और सुरभि भी। हिंदी के अनेक साहित्यकारों ने भी अपनी आत्मकथाएँ लिखी हैं। यथा–डॉ. श्यामसुंदरदास कृत 'मेरी आत्म-कहानी', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'अपनी खबर', देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'चाँद-सूरज के बीरन', कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी कृत 'स्वप्न-सिद्धि की खोज में', सेठ गोविंददास कृत 'आत्म-निरीक्षण' भाग-3, यशपाल कृत 'सिंहावलोकन' भाग-3, वृंदावनलाल वर्मा कृत 'अपनी कहानी', राजकमल चौधरी कृत 'भैरवी-तंत्र', राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी जीवन-यात्रा',

नोट

डॉ. रामविलास शर्मा कृत 'घर की बात', अमृतलाल नागर कृत 'टुकड़े'-टुकड़े दास्तान', बच्चन कृत चार-खंडीय आत्मकथा आदि प्रमुख हैं।

13.1.4 हिंदी आत्मकथा का विकास

प्राचीन आत्मकथा बनारसीदास जैन रचित 'अर्द्धकथा' (1941 ई.) है। इसके संबंध में संपादक का कहना है कि "कदाचित् समस्त आधुनिक आर्य भाषा-साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्मकथा नहीं है।" डॉ. रामचंद्र तिवारी ने भी आत्मकथा-लेखन का प्रारंभ यही से माना हैं उनका कथन है कि "आत्मकथा लिखने वालों में जिस निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह निश्चय ही बनारसीदास में थी उसने अपने सारे गुण-दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता।" इस आत्मकथा में अकबर के समय की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। हिंदी आत्मकथा का जन्म और विकास भी गद्य की अन्य विधाओं की भाँति वस्तुतः भारतेंदु युग से ही होता है।

आत्मकथा के विकासक्रम को हम इस प्रकार से देख सकते हैं–

भारतेंदु युग–भारतेंदु हरिश्चंद्र बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रथम आत्मकथा-लेखन का श्रेय भारतेंदु को ही दिया जाता है। उन्होंने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नामक आत्मकथा लिखी जिसमें उनकी यौवनकालीन रोचक काव्यात्मक घटनाएँ निरूपित हैं, किंतु यह कृति अपूर्ण है। भारतेंदु जी के समकालीन पं. अंबिकादत्त व्यास ने 'निजवृत्तांत' नामक आत्मकथा लिखी। इसके पश्चात् सत्यानंद अग्रिहोत्री कृत 'मुझ में देव-जीवन का विकास', स्वामी श्रद्धानंद कृत 'कल्याण-पथ का पथिक' आदि प्रकाश में आई। इस युग की भाषा शिथिल है, पर तथ्यपरक स्पष्टता उत्कृष्ट है।

द्विवेदी युग–भारतेंदु जी के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में अपनी 'अधूरी कहानी' प्रकाशित कराई। उनके परवर्ती संपादकों में पं. देवीदत्त शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने आत्मकथाएँ लिखीं थीं। बाबू श्यामसुंदर द्वारा लिखित 'मेरी आत्मकहानी' एक श्रेष्ठ आत्मकथा है। इस संबंध में डॉ. हरदयाल का कथन है–"श्यामसुदंरदास की 'मेरी आत्म-कहानी' सन् 1941 में प्रकाशित हुई यह बड़ी सुगठित और समृद्ध आत्मकथा है। इसमें साहित्यिक शैली में डॉ. श्यामसुंदरदास ने अपने जीवन के साथ-साथ उस समय के साहित्य-इतिहास को प्रस्तुत किया है।" इसी युग में जयशंकर प्रसाद ने पद्य में और मुशी प्रेमचंद ने गद्य में 'मेरा जीवन-प्रवाह' नामक आत्मकथा लिखी। इसी युग में डॉ. राजेंद्रप्रसाद ने राजनीतिक आत्मकथा लिखी। भाई परमानंद ने 'आपबीती' और श्री रामविलास शुक्ल ने भी 'मैं क्रांतिकारी कैसे बना' आत्मकथाएँ लिखीं। वस्तुतः ये सभी आत्मकथाएँ केवल लेखकों के जीवनवृत्त को ही नहीं बतातीं, वरन् तत्कालीन, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी अभिज्ञान कराती हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग–द्विवेदी-युग के बाद स्वातंत्र्योत्तर-युग में आत्मकथा का बहुमुखी विकास हुआ। स्वाधीन भारत में प्रकाशित प्रथम उल्लेखनीय आत्मकथा यशपाल रचित 'सिंहावलोकन' है। क्रांतिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता दर्शनीय है। इसके बाद पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने अपने 20 वर्षों की कथा को निष्पक्ष, पर कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। सेठ गोविंददास रचित 'आत्म-निरीक्षण' तीन भाग, आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्म-कहानी', वृंदावनलाल वर्मा कृत 'अपनी कहानी' आदि इस विषय की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इधर एक दशक के अंतराल में सबसे महत्त्वपूर्ण आत्मकथा डॉ. हरिवंशराय बच्चन की है जो चार खंडों में प्रकाशित है। 1. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' 2. 'नीड़ का निर्माण फिर' 3. 'बसेरे से दूर' और 4. 'दश-द्वार से सोपान तक'। चार खंडों में प्रकाशित हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा स्वयं उन्हीं के शब्दों में एक 'स्मृति-यात्रा-यज्ञ' है। "इसमें उनका प्रारंभिक जीवन-संघर्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर के अनेक संदर्भ, कैंब्रिज विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, कैंब्रिज से डॉक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिंदी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में ऑफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिंदी) के रूप में राजनयिक कार्यों

नोट

में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए किए गए उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहाँ से अवकाश लेने के बाद का उनका जीवन-अनुभव एक वृहद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवंत और साकार हो उठा है। इस 'स्मृति-यात्रा-यज्ञ' में प्रकारांतर से स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद का हिंदी-भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्रावृत्त, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएँ और शैलियाँ गुँफित हैं। सबसे बड़ी बात है–लेखक के आत्म-स्वीकार का साहस।'' डॉ. बच्चन की आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. रामचंद्र तिवारी की ही तरह धर्मवीर भारती ने भी कहा है–''हिंदी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्‌भावना से कह देना यह पहली बार हुआ है।''

डॉ. बच्चन की आत्मकथा के अतिरिक्त डॉ. देवराज उपाध्याय कृत 'यौवन के द्वार पर', राजकमल चौधरी कृत 'भैरवी-तंत्र', डॉ. रामविलास शर्मा कृत 'घर की बात', शिवपूजन सहाय कृत 'मेरा जीवन', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' कृत 'तपती पगडंडियों पर पद-यात्रा', फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'आत्मपरिचय', डॉ. नगेंद्र कृत 'अर्धकथा', अमृतलाल नागर कृत 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' आदि आत्मकथाएँ विशेष रूप से चर्चित हैं।

'घर की बात' डॉ. रामविलास शर्मा की विस्तृत आत्मकथा है। स्वयं शर्मा जी के शब्दों में ''घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय संबंधों का चित्रण अधिक है। ··· इसमें कई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।'' 'मेरा जीवन' आत्मकथा में लेखक शिवपूजन सहाय का व्यक्तिगत जीवन तो उद्‌घाटित हुआ ही है, साथ ही अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं और संदर्भों का प्रामाणिक दस्तावेज भी सामने आया है। 'तपती पगडंडियों पर पद-यात्रा' में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के तेजस्वी, सिद्धांतवादी और कर्मठ व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उद्‌घाटित हुए हैं। अपनी आत्मकथा 'आत्मपरिचय' में रेणु ने अपने जीवन और रचना-संघर्ष को बड़ी सहजता के साथ उजागर किया है। डॉ. नगेंद्र की 'अर्धकथा' में उनके जीवन का 'अर्धसत्य' व्यक्त हुआ है।

उन्हीं के शब्दों में, 'यह मेरे जीवन का केवल अर्ध सत्य है–अर्थात् उपर्युक्त तीन खंडों में मैंने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है। ··· जहाँ तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितांत मेरा अपना है–आपको उसका सहभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है।'' 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' अपनी आत्मकथा की भूमिका में नागर जी ने कहा है–'मैं पत्थर पर उकेरी गई ऐसी मूर्ति हूँ जो कहीं-कहीं छूट गई हो।' वस्तुत: इसमें कथा-रस भरा हुआ है। यह आत्मकथा आधुनिक सांस्कृतिक जागरण का जीवंत इतिहास कही जा सकती है।

इधर 'जहाँ मैं खड़ा हूँ', 'रोशनी की पगडंडियों', 'टूटते-बनते दिन', और 'उत्तर पथ' इन चार भागों में लिखी गई रामदरथ मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' के नाम से प्रकाशित हुई है। इस कृति में स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण परिवेश से निकलकर संघर्ष के रास्ते अपने जीव का लक्ष्य ढूँढ़ने वाला एक साहित्यकार का पूरा अनुभव-संसार अपने विस्तार में लगभग आधे भारत को समेटे हुए, सजीव रूप में उजागर हो उठा है। 'सहचर है समग्र' के संबंध में डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है–''इसमें रामदरथ मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है, बनते-बिगड़ते गाँव हैं, जिनका जीवन-रस सूख रहा है, उभरते हुए नगर हैं जिनमें मनुष्यता मर रही है। और सैकड़ों सामान्य लोग हैं जिनके रोजी-रोटी के लिए किए जाने वाले ऊपर खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्मकथा आज के भारत के सामान्य आदमी के जीवन का दस्तावेज है।''

इसके अतिरिक्त 'सारिका' पत्रिका ने 'गर्दिश के दिन' नामक स्तंभ में साहित्यकारों को अपनी संघर्ष-पूर्ण कथा को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया था जिसमें भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव, कामतानाथ और दूधनाथ सिंह की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं। ये आत्मकथ्यपूर्ण आत्मकथा नहीं है। कारण यह कि इनमें रचनाकारों का अलग-अलग व्यक्तित्व और अलग-अलग मिजाज व्यक्त हुआ है।

उपर्युक्त आत्मकथाओं के प्रकाशन के बावजूद हिंदी के आत्मकथा को अभी समृद्ध नहीं कहा जा सकता। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि हिंदी को माध्यम बनाकर लिखने-पढ़ने वाले पंडित और मनीषी महान और गौरवशाली नहीं हो सकते। इसलिए भारत की महान विभूतियों ने अपने को व्यक्त करने के लिए हिंदी को माध्यम नहीं बनाया। फिर भी, आज आत्मकथा विधा में अपूर्व श्रीवृद्धि हो रही है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ है .... ।
2. अपने जीवन का .... विश्लेषण करने के लिए ही आत्मकथा लिखी जाती है।
3. हिंदी साहित्य में .... बहुत कम रचा गया है।

13.1.5 रिपोर्ताज

उद्भव–'रिपोर्ताज' सामयिक आवश्यकता का परिणाम है, क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इसका आविर्भाव प्रथम विश्व-युद्ध के समय हो चुका था, जब विंस्टन चर्चिल सदृश व्यक्ति युद्ध-संवाददाता बनकर भीषण मार-काट और भयानक युद्ध-विभीषिका की ताजा रिपोर्ट सीधे युद्ध-भूमि से भेज रहे थे। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। लेकिन डॉ. हरदयाल का मानना है कि 'रिपोर्ताज' का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के समय ही हुआ। उन्हीं के शब्दों में, ''रिपोर्ताज का जन्म द्वितीय विश्व-युद्ध के समय हुआ। जब साहित्यकारों ने युद्ध-भूमि के दृश्यों और घटनाओं की रिपोर्ट समाचारपत्रों में दी। इन रिपोर्टों में पेशेवर पत्रकारों की रिपोर्ट से स्वाभाविक भिन्नता आ गई थी। यह भिन्नता इनकी साहित्यिकता-कलात्मकता और उस उत्साह में थी जो युद्ध-भूमि पर उपस्थित साहित्यकार-सैनिकों के हृदय में विद्यमान था। इस प्रकार अनायास ही रिपोर्ताज का जन्म हो गया।'' सुश्री महादेवी वर्मा का भी यही कहना है कि–''रिपोर्ट या विवरण से संबद्ध रिपोर्ताज समाचार-युग की देन है और उसका जन्म सैनिक की खाइयों में हुआ है।'' द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इलिया एहरेनबर्ग को रिपोर्ताज लेखक के रूप में विशेष ख्याति मिली।

अर्थ एवं परिभाषा–'रिपोर्ताज' मूलत: फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषा का शब्द है। इसके पर्याय रूप में अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' के माध्यम से आया है। पर 'रिपोर्ताज' 'रिपोर्ट' से भिन्न है। 'रिपोर्ट' का आशय किसी घटना, खबर, आँखों-देखा हाल का यथातथ्य वर्णन है। जिसमें सारा विवरण दृश्यमान हो जाए। अर्थात् वास्तविक घटना का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत कर देना 'रिपोर्ट' है। ठेठ हिंदी में इसे 'रपट लिखना' कहते है। इसका सीधा संबंध समाचार-पत्र से होता है और तथ्य-चयन पर विशेष बल रहता है। जब किसी विषय का आँखों-देखा या कानों-सुना वर्णन इतने कलात्मक, साहित्यिक और प्रभावशाली ढंग से किया जाता है कि उसकी अमिट छाप हृदय-पटल पर अंकित हो जाती है, तब उसे 'रिपोर्ताज' की संज्ञा दी जाती है। लेखक के व्यक्तित्व के साथ इसमें संवेदना और भावना का आवेश भी निहित रहता है। कहने का अभिप्राय यह कि किसी घटना विशेष को अपनी 'मानसिक इमेज' में दीप्तमान करके पुन: मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देना 'रिपोर्ताज' का सहज धर्म है। इस प्रकार, रिपोर्ट का साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज है। हिंदी में रिपोर्ताज को 'सूचनिका', 'रूपनिका' और 'वृत्त-निवेशन' भी कहते हैं। परंतु सामान्यत: प्रचलित शब्द रिपोर्ताज ही है।

परिभाषा-रिपोर्ताज की कतिपय परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

1. **डॉ. भागीरथ मिश्र** रिपोर्ताज के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखते हैं–''किसी घटना या दृश्य का अत्यंत विवरणपूर्ण, सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस प्रकार किया जाता है कि वह हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाए और हम उससे प्रभावित हो उठें।'' **–काव्यशास्त्र**
2. **गुलाबराय के अनुसार–**''रिपोर्ट की भाँति रिपोर्ताज में घटना या घटनाओं का वर्णन तो अवश्य होता है, किंतु इसमें लेखक के हृदय का निजी उत्साह रहता है जो वस्तुगत सत्य पर बिना किसी प्रकार का आवरण डाले उसको प्रभावमय बना देता है।'' **–काव्य के रूप**
3. **डॉ. रामचंद्र तिवारी के मतानुसार–**''जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपनी भावना में रँग कर बिंबधर्मी भाषा के माध्यम से सजीव बनाकर प्रस्तुत करता है, तब वह रिपोर्ताज की कला-सृष्टि करता है।'' **–हिंदी का गद्य साहित्य**

नोट

4. हिंदी-साहित्य-कोश में इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है ··· रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।
5. **डॉ. सत्यपाल चुघ का मत है**–''पत्र की जिस घटना को, सत्य की रक्षा करते हुए, कलात्मक रूप में संवेदना की अनुभूति की शक्ति के साथ प्रस्तुत किया जाता है, वह रिपोर्ताज नामक साहित्यिक विधा की कोटि में आता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं का अवलोकन करते हुए रिपोर्ताज के संबंध में सारत: कहा जा सकता है कि ''संघर्ष के क्षणों को तत्काल शब्दों में प्रस्तुत करना रिपोर्ताज है। युगचेतना, युग-संघर्ष और जीवन की साधारणता को कला में स्थापित करने की प्रवृत्ति से ही इसे साहित्यिकता प्राप्त होती है। वास्तविक घटना से भिन्न, कल्पना पर आधारित किसी घटना का आवेगपूर्ण वर्णन इस विधा में परिगणित नहीं हो सकता। घटनाओं की तत्कालीन मार्मिक प्रतिक्रिया ही आकर्षक शैली का परिधान ग्रहण कर 'रिपोर्ताज' बनती है। इसमें लेखक छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर पाठक के मानस-पटल पर पूरा प्रभाव डालने का प्रयास करता है। रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से होता है। घटनाएँ कल्पना-प्रसूत नहीं होती हैं। घटनाओं के विवरण द्वारा लेखक चरित्र को भी प्रकाश में लाता है। रिपोर्ताज-लेखक घटना-स्थल पर उपस्थित रहता है और वह आँखों-देखी घटनाएँ, बातें ही लिखता है। कथात्मकता इसके लिए आवश्यक है। इसके वर्ण्य विषय के रूप में लेखक मानवीय सुख-दु:ख, पराक्रम और पलायन, संघर्ष-विघर्ष, अकाल, बाढ़, सूखा, महामारी और युद्ध की विभीषिका जैसे मार्मिक पहलुओं एवं तथ्यों को ग्रहण करता है और भीतर निहित मूल्यों के अनुसार विशिष्ट दृष्टि से उजागर करके प्रभावशाली बना देता है। अस्तु, रेखाचित्र की भाँति रिपोर्ताज के मूल में भी यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति का प्रधान्य होता है।

विशेषताएँ–साहित्य की इस नवीन विधा की अधोलिखित विशेषताएँ मानी जाती हैं–

1. इसके तथ्य-कथन में कलात्मकता और साहित्यिकता का पुट रहता है।
2. वर्तमान से संबद्ध होने के कारण यह सामयिक होता है।
3. इसमें कथात्मकता होती है।
4. तथ्यपरकता होने के कारण इसमें लेखक तटस्थ रहता है।
5. रिपोर्ताज में घटना या दृश्य की प्रधानता होती है। अत: इसमें परिस्थिति और वातावरण-चित्रण का महत्त्व अधिक है।
6. इसमें घटनाओं का सहज मनोवैज्ञानिक रूप रहता है।
7. इसमें वर्णित घटना या घटनाएँ बड़ी तीव्रता से आँखों के सामने कौंध जाती हैं।
8. यह प्रत्यक्षदर्शित घटनाओं का वर्णन होता है।
9. इसमें सजीवता, रोमांचकता, बिंबधर्मिता और विश्वसनीयता रहती है।

13.1.6 रिपोर्ताज-लेखक के लिए आवश्यक बातें

रिपोर्ताज सामान्यत: साहित्यकार की कलात्मक रिपोर्ट है। ''रिपोर्ताज-लेखक के लिए घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है। ड्राइंग-रूप में बैठकर सुदूर घटित होने वाली घटना को कल्पना के सहारे प्रस्तुत करके रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता। प्रत्येक घटना प्रत्यक्षदर्शियों के मन पर जो प्रभाव छोड़ती है, वही छाप रिपोर्ताज-लेखक अपने रेखांकन माध्यम से पाठकों पर छोड़ता है।'' इसलिए रिपोर्ताज-लेखन में लेखक का संवेदनशील होना अनिवार्य है, साथ ही उसे साहित्यिक अभिरुचि-संपन्न और मानवतावादी भी होना चाहिए। इसके अलावा रिपोर्ताज-लेखक का पत्रकार और साहित्यकार दोनों के कर्त्तव्य का निर्वाह एक साथ करना आवश्यक होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. रिपोर्ताज का जन्म ………… के समय ही हुआ।
   (क) भारत-चीन युद्ध (ख) भारत-पाक युद्ध
   (ग) द्वितीय विश्व युद्ध (घ) प्रथम विश्व युद्ध
5. रिपोर्ताज-लेखक के लिए घटना का ………… होना आवश्यक है।
   (क) संवेदनशील (ख) मर्मस्पर्शी
   (ग) विश्वसनीय (घ) प्रत्यक्षदर्शी
6. रिपोर्ताज का संबंध ………… से होता है।
   (क) भूतकाल (ख) वर्तमान
   (ग) भविष्य (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

13.1.7 रिपोर्ताज एवं अन्य साहित्यिक विधाओं में अंतर

(क) रिपोर्ताज और रेखाचित्र–रेखाचित्रकार की अपेक्षा रिपोर्ताज-लेखक को अधिक तटस्थ तथा मानसिक रूप से अधिक जागरूक रहकर कार्य करना होता है। दोनों के अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र ने लिखा है–"रिपोर्ताज (सूचनिका) किसी स्थान या घटना का यथार्थ, सजीव, मर्मस्पर्शी और संवेदना को उभारने वाला वर्णन होता है। इसमें घटना या दृश्य प्रधान रहता है, चरित्र या व्यक्ति नहीं, परंतु 'शब्दचित्र' में प्रधान चरित्र और व्यक्ति रहता है, घटना आदि पृष्ठभूमि के लिए ग्रहण की जाती है। यर्थाथता की विश्वसनीयता, वैयक्तिक संपर्क-ग्रहण की सजीवता और ऊष्मा तथा शैली की मर्मस्पर्शिता शब्द-चित्र को लोक-हृदय के संस्कार करने का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम सिद्ध करती है। इसका कारण यह होता है कि हम अपने अनुभवों से टकराते हुए व्यक्तियों को इसके बहाने अपने समक्ष प्रस्तुत पाते हैं।" कुछ ऐसा ही अंतर करते हुए डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ने कहा है–"रेखाचित्र में ध्यान, धारणा, भावना और कल्पना में समन्वय होता है, जबकि संगति 'स्थिर गति' में भी होती है। रिपोर्ताज में घटना की क्रिया और लेखक के मन पर पड़ने वाली उसकी प्रतिक्रिया का सौंदर्य स्थापित किया जाता है।"

(ख) रिपोर्ताज और संस्मरण–रिपोर्ताज और संस्मरण में मुख्य अंतर किया जाता है। रिपोर्ताज का संबंध वर्तमान से होता है और संस्मरण अतीत अर्थात् भूतकाल के स्मरण के आधार पर लिखा जाता है। साहित्यिकता और कलात्मकता रिपोर्ताज में भी होता है किंतु उसमें वह पुट नहीं होता जो संस्मरण में देखने को मिलता है। रिपोर्ताज-लेखक की अपेक्षा संस्मरण-लेखक में तटस्थता अधिक नहीं होती है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ताज में घटना एवं दृश्य की प्रधानता होती है, साथ ही इसमें परिस्थिति तथा वातावरण के प्रस्तुतीकरण का महत्त्व अधिक रहता है, जबकि संस्मरण में लेखक संपूर्ण परिस्थिति का बिंब-प्रतिबिंब भाव से निरूपण करता है।

(ग) रिपोर्ताज और डायरी–दोनों में मुख्य रूप से दो अंतर हैं–एक-डायरी की घटनाएँ अधिकतर कथित होती हैं, किंतु रिपोर्ताज की घटना वास्तविक होती हैं। द्वितीय-डायरी में एक विशेष प्रकार की निजता और गोपनीयता होती है, जबकि रिपोर्ताज प्रकाशनार्थ लिखा जाता है, ताकि उसे दूसरे लोग भी पढ़ सकें।

(घ) रिपोर्ताज और यात्रावृत्त–दोनों में अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ. शंकरदेव अवतरे ने लिखा है कि "रिपोर्ताज का भेद यात्रा-साहित्य से इस प्रकार है कि रिपोर्ताज में मुख्य विषयवस्तु घटनाएँ होती हैं जबकि यात्रा में मुख्य प्रकरण भौगोलिक विविधताओं का होता है। रिपोर्ताज का प्रधान भाव विस्मय और कभी-कभी उत्साह होता है।"

नोट

टास्क रिपोर्ताज के उदय पर प्रकाश डालें।

13.1.8 हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज-लेखन का उद्‌भव और विकास

जब निबंध, कहानी, रेखाचित्र या संस्मरण-विधा का संयोग पत्रकारिता से कर दिया जाता है, तब रिपोर्ताज बनता है। अथवा रिपोर्ट और रेखाचित्र को मिला दें तो रिपोर्ताज का रूप सामने आ जाता है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है कि–''आधुनिक जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नए साहित्यिक रूप-विधान को जन्म देना पड़ा, रिपोर्ताज उन सबसे प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण विधा है। यूरोपीय साहित्य में द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकाओं को रिपोर्ताज शैली के माध्यम से अत्यंत सशक्त और जीवंत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया। सोवियत संघ और अमेरिका के साहित्यकारों ने दैनंदिनी जीवन-संदर्भों तथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण और द्रावक घटनाओं की रिपोर्ताज के माध्यम से अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार, रिपोर्ताज लिखने की परंपरा पाश्चात्य देशों के प्रभाव से ही आई है।''

क्या आप जानते हैं हिंदी में रिपोर्ताज-लेखन-शैली की परंपरा अति नवीन है। हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज लिखने की परंपरा पाश्चात्य देशों के प्रभाव से आई है।

साहित्य-भंडार अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा विशाल नहीं है। किंतु जो उपलब्ध है, उसे हम अग्रलिखित रूप में देख सकते हैं–

(क) पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रिपोर्ताज

(ख) उपन्यासों में प्रसंगवश आए रिपोर्ताज

(ग) ललित निबंधादि के संग्रहों में उपलब्ध रिपोर्ताज

(घ) गोष्ठी-प्रसंग और सभा-अधिवेशनों पर आधारित रिपोर्ताज

'रिपोर्ताज' विधा के रूप में पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध तथा उपन्यासों में प्रसंगवश आए रिपोर्ताजों को महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। यद्यपि रिपोर्ताज-लेखन का कार्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बहुत हो रहा है, पर सही मायने में रिपोर्ताज उन्हें कहा जा सकता है जो ललित निबंधादि के संग्रहों में ख्यातिप्राप्त-लब्धप्रतिष्ठत साहित्यकारों की संगोष्ठियों में तथा सभा-सम्मेलनों में प्राप्त होते हैं। हिंदी में इस विधा का प्रारंभ सन् 1940 ई. के आस-पास से माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान कृत 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' शीर्षक पहला रिपोर्ताज 'हंस' नामक पत्रिका में 'समाचार और विचार' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने राष्ट्र का स्वतंत्रता से पूर्व का जीवंत परिवेश-चित्र उकेरा। इसी के आस-पास डॉ. रांगेय राघव ने 'अदम्य जीवन' शीर्षक से दूसरा रिपोर्ताज लिखा, जो 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ। सन् 1943-44 में डॉ. रांगेयराघव द्वारा बंगाल के दुर्भिक्ष व महामारी के बारे में लिखे गए अनेक रिपोर्ताज काफी मार्मिक बन पड़े हैं। इनका संकलन 'तूफानों के बीच' नामक रचना में हुआ है। इसके अतिरिक्त, उनके रिपोर्ताज 'यह है ग्वालियर' में सांप्रदायिक दंगों, दमन, शोषण, अत्याचार एवं हृदय-हीनता का द्रावक चित्रण मिलता है। अमृतलाल नागर ने भी बंगाल में अकाल से प्रभावित होकर 'महाकाल' नाम उपन्यास इसी शैली में लिखा। इनके पश्चात् श्री प्रकाशचंद्र गुप्त ने घटना-प्रधान रिपोर्ताज लिखे; 'हंस में प्रकाशित', 'स्वराज्य-भवन', 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल' आदि जिनमें'स्वराज-भवन' उनका उल्लेखनीय रिपोर्ताज है।

13.1.9 स्वातंत्र्योत्तर-युग में रिपोर्ताज-लेखन का विकास

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश में ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं जिन्होंने साहित्यकारों को रिपोर्ताज लिखने के लिए मजबूर किया। यथा–सन् 1948, 1965 और सन् 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध; सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध, बाढ़, सूखा, अकाल, अग्निकांड, भूकंप, आतंकवाद, विमान-दुर्घटना आदि के बारे में रिपोर्ताज लिखे गए। सन् 1971 में बांग्लादेश-स्वाधीनता-संग्राम के दौरान में डॉ. धर्मवीर भारती ने बंग्लादेश से रिपोर्ताज भेजे थे जो धर्मयुग में प्रकाशित हुए। रिपोर्ताज के संदर्भ में 'धर्मयुग' पत्रिका के योगदान के संबंध में डॉ. रामचंद्र तिवारी का कथन है–'धर्मयुग' पत्रिका से 'रिपोर्ताज' विधा को अधिक प्रेरणा और बल मिला है।'' 'रिपोर्ताज' प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'दिनमान' सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त नयापथ, माध्यम, ज्ञानोदय, अवकाश; कल्पना, सूर्या, सारिका, रविवार, हिंदी एक्सप्रेस, साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि में समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज विभिन्न स्तंभों के अंतर्गत प्रकाशित हुए हैं, जिनका महत्त्वपूर्ण लेखन डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, फणीश्वर नाथ रेणु, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर तथा लक्ष्मीकांत वर्मा प्रभृति लेखकों द्वारा संपन्न हुआ। 'कल्पना' में स्थायी स्तंभ 'कमलाकांत जी ने कहा' शीर्षक से डॉ. बालकृष्ण राव ने वर्षों तक रिपोर्ताज लिखे थे 'सारिका' 1968 के कई अंकों में ख्वाजा अहमद अब्बास ने 'बिहार की डायरी' नाम से बिहार के सूखे पर रिपोर्ताज प्रकाशित कराया था। प्रात: एक स्वप्रेम शीर्षक से निर्मल वर्मा का एक 'रिपोर्ताज' धर्मयुग में छपा था जिसमें चेकोस्लोवाकिया में प्रवष्टि रूसी सेनाओं पर संवेदनात्मक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।

साहित्य-गोष्ठियों, सभा-सम्मेलनों आदि पर आधारित 'रिपोर्ताज' भी अब प्राय: सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। 'माध्यम' नामक पत्रिका में वर्षों तक 'विवेचक' द्वारा 'गोष्ठी-प्रसंग' से संबंधित 'रिपोर्ताज' प्रकाशित होते रहे। आज भी समसामयिक घटनाओं, महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों आदि पर गोष्ठियाँ तथा सम्मेलन होते हैं, उन पर 'रिपोर्ताज' प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं।

नोट्स आधुनिक जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नए साहित्यिक रूप-विधान को जन्म देना पड़ा। रिपोर्ताज उन सब में प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण विधा है।

रिपोर्ताज शैली का प्रयोग अब उपन्यासों की रचना में भी खूब हो रहा है। आधुनिक रचनाकारों की इस शैली के माध्यम से अनेक उत्कृष्ट औपन्यासिक कृतियाँ देखने को मिलती हैं। जब साहित्यकार संवेदनशील बन जाता है तब वह सशक्त और प्रभावपूर्ण रिपोर्ताज लिखने लगता है। युद्ध की विभाषिका, दुर्भिक्ष की छाया या मानव-समाज को प्रभावित करने वाली किसी रोमांचक या द्रावक घटना के घटित होने पर लेखक उस घटना के विविध रूपों को रिपोर्ताज शैली में उकेर कर पाठक के मन को झंकृत कर देता है।

आधुनिक प्रौढ़-सशक्त एवं उत्कृष्ट 'रिपोर्ताज' लेखकों में उपेंद्रनाथ अश्क कृत 'पहाड़ों में प्रेममय गीत', रामनारायण उपाध्याय कृत 'गरीब और अमीर पुस्तकें' में संगृहीत कतिपय रिपोर्ताज, शिवसागर मिश्र कृत 'वे लड़ेंगे हजार साल', भदंत आनंद कौसल्यायन कृत 'देश की मिट्टी बुलाती है', डॉ. धर्मवीर भारती कृत 'युद्ध-यात्रा', कामताप्रसाद 'काम' कृत 'मैं छोटा नागपुर से बोल रहा हू', जगदीशचंद्र जैन कृत 'पीकिंग की डायरी', यशपाल कृत 'चक्कर-क्लब', विवेकीराय कृत 'जुलूस रुका है', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' कृत 'क्षण बोल कण मुस्काए', फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'ऋण-जल धन-जल', 'नेपाली क्रांति-कथा', 'लाल धरती', 'एकलव्य के नोट्स' और 'श्रुत-अश्रुत पूर्व', प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नजरों में', शमशेरबहादुर सिंह कृत 'प्लाट का मोर्चा', वाचस्पति उपाध्याय कृत 'हरा-भरा जनतंत्र है सूख गया स्वातंत्र्य', चंद्रभाल मधुव्रत कृत 'मान यही है विज्ञान', कुबेरनाथ राय कृत 'गंध-मादन', रामआसरे कृत 'माओ के देश में' आदि महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। विवेकी राय का स्वाधीनता के बाद बदलते हुए गाँव, जिंदगी और मौत के बीच छटपटाते हुए गाँव के द्रष्टा और भोक्ता है। 'जुलूस रुका है' में गाँवों की जीती-जागती तस्वीर देखी जा सकती है। रेणु की भाँति विवेकी राय ने अपनी औपन्यासिक

रचनाओं में भी इस शैली का प्रयोग बखूबी किया है। 'रेणु' में स्थितियों का शब्दांकन करने की अद्भुत क्षमता है। इसी कारण उनके रिपोर्ताजों में स्थितियों का सारा अनुभव उभर आता है।

अस्तु, हिंदी साहित्य में अब रिपोर्ताज एक स्वतंत्र गद्य-विधा के रूप में स्थापित हो चुका है यद्यपि इसने अपनी विकास-यात्रा के कुल 40 वर्ष ही व्यतीत किए हैं, फिर भी, उसकी साहित्यिक प्रगति यह सिद्ध करती है कि भविष्य में वह अपने साहित्यिक भंडार में अन्यतम उपलब्धि प्राप्त करेगा। संप्रति, हिंदी गद्य साहित्य की यह विधा विकास की संभावनाओं से परिपूर्ण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. हिंदी में रिपोर्ताज-लेखन शैली की परंपरा अति-नवीन नहीं है।
8. हिंदी में रिपोर्ताज विधा का प्रारंभ 1975 के आस-पास माना जाता है।
9. जब साहित्यकार संवेदनशील बन जाता है तब वह सशक्त और प्रभावपूर्ण रिपोर्ताज लिखने लगता है।

13.2 सारांश (Summary)

- आत्मकथा में अविश्वसनीय यथार्थ एवं कल्पित बातों का समावेश वर्जित रहता है। बिना कुरूपता या अवगुण को छिपाए अतीत जीवन की सम्यक् अभिव्यक्ति ही शुद्ध आत्मकथा बन जाती है। आत्मकथा में चित्रण की अपेक्षा वर्णन का प्राधान्य रहता है। संस्मरण की तरह इसमें भी आत्मीयता, स्पष्टवादिता, सुसंगठितता, स्वाभाविकता आदि गुण विद्यमान रहते हैं। फिर भी, आत्मकथा संस्मरण का ही एक रूप है।
- संघर्ष के क्षणों को तत्काल शब्दों में प्रस्तुत करना रिपोर्ताज है। युगचेतना, युग-संघर्ष और जीवन की साधारणता को कला में स्थापित करने की प्रवृत्ति से ही इसे साहित्यिकता प्राप्त होती है। वास्तविक घटना से भिन्न, कल्पना पर आधारित किसी घटना का आवेगपूर्ण वर्णन इस विधा में परिगणित नहीं हो सकता। घटनाओं की तत्कालीन मार्मिक प्रतिक्रिया ही आकर्षक शैली का परिधान ग्रहण कर 'रिपोर्ताज' बनती है।
- हिंदी साहित्य में अब रिपोर्ताज एक स्वतंत्र गद्य-विधा के रूप में स्थापित हो चुका हैं यद्यपि इसने अपनी विकास-यात्रा के कुल 40 वर्ष ही व्यतीत किए है, फिर भी, उसकी साहित्यिक प्रगति यह सिद्ध करती है कि भविष्य में वह अपने साहित्यिक भंडार में अन्यतम उपलब्धि प्राप्त करेगा। संप्रति, हिंदी गद्य साहित्य की यह विधा विकास की संभावनाओं से परिपूर्ण है।

13.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **खंड**–अलग-अलग भाग में बँटा होना
2. **आविष्कार**–आविष्कार करना या खोजना, किसी नए उपकरण औजार आदि की उत्पत्ति
3. **सम्मेलन**–सम्मेलन करना, सभा करना

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आत्मकथा लेखन का अर्थ एवं उद्देश्य का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. हिंदी आत्मकथा के विकासक्रम की समीक्षा करें।
3. रिपोर्ताज का अर्थ, परिभाषा तथा उद्देश्य का उल्लेख कीजिए।
4. स्वातंत्र्योत्तर युग में रिपोर्ताज लेखन के विकास का वर्णन करें।
5. रिपोर्ताज एवं अन्य साहित्यिक विधाओं में अंतर स्पष्ट करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. अपनी कथा	2. सांगोपांग	3. आत्मकथा साहित्य
4. (ग)	5. (घ)	6. (ख)
7. असत्य	8. असत्य	9. सत्य

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास–*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*

नोट

इकाई–14 : साक्षात्कार एवं फ़ीचर लेखन का विकास

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 इंटरव्यू/ साक्षात्कार और फीचर लेखन के प्रयोग
14.1.1 इंटरव्यू और संस्मरण
14.1.2 हिंदी इंटरव्यू साहित्य का उद्‌भव एवं विकास
14.1.3 फीचर (रूपक)
14.1.4 फीचर और समाचार
14.1.5 फीचर (रूपक) और लेख
14.1.6 फीचर-लेखन के लिए अपेक्षित तत्व
14.1.7 फीचर लेखन-विधि
14.1.8 फीचर की लेखन शैली
14.1.9 फीचर लेखन शैली में कुछ ध्यातव्य बातें।
14.1.10 फीचर के प्रकार
14.2 सारांश (Summary)
14.3 शब्दकोश (Keywords)
14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- साक्षात्कार विधा को समझने में।
- इंटरव्यू और संस्मरण को जानने में।
- हिंदी इंटरव्यू साहित्य का उद्‌भव एवं विकास को समझने में।
- फीचर (रूपक) और लेख को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

साक्षात्कार विधा में कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोण जानने और उन्हें उसी की शैली, भाषा और भंगिमा में व्यक्त करने की चेष्टा की जाती है। हिंदी में इस विधा के लिए साक्षात्कार, भेंटवार्ता, विशेषपरिचर्चा, भेंट-चर्चा आदि समानार्थक (पर्यायवाची) शब्द प्रयुक्त होते हैं, इन पर्यायवाची शब्दों की तुलना में 'इंटरव्यू' शब्द ही हिंदी में अधिक प्रचलित है।

नोट

किसी घटना, प्रकरण, तथ्य या रोचक विषय का मनोरम एवं विशद् प्रस्तुतीकरण ही फीचर है। दूसरे शब्दों में आधुनिक स्मारक साहित्य में अनेक स्थलों के विषय में रोचक कथा-सूत्रों के साथ प्रस्तुत किए जाने वाले साहित्य-रूप को, जिसमें दो कथाएँ साथ-साथ चलती हैं, उसे फीचर कहा जाता है। फीचर एक अत्याधुनिक लेखन विधा है जो पत्रकारिता के क्षेत्र में विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी-पत्रकारिता में रूपक-लेखन की नई विधा का विकास हुआ। मानवीय अभिरुचि की मनोरंजक सामग्री को अब सचित्र रूप में प्रकाशित करके आम जनता तक प्रस्तुत किया जाता है। आशय यह है कि 'फीचर' पाठक के हृदय में आनंद और संतुष्टि की भावना पैदा करता है।

14.1 इंटरव्यू/साक्षात्कार और फीचर लेखन के प्रयोग

हिंदी-गद्य की नव्यतम विधाओं में 'इंटरव्यू' भी पश्चिम की देन है। यह अभिनव गद्य-विधा मूलत: पत्रकारिता से संबंधित है। इसमें ''कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोण जानने और उन्हें उसी की शैली, भाषा और भंगिमा में व्यक्त करने की चेष्टा की जाती है। मिलने वाला सुविधा की दृष्टि से कुछ प्रश्न तैयार कर लेता है और क्रमश: उन प्रश्नों के उत्तर के रूप में वह उस विख्यात, विशिष्ट, अनुभवी और महान व्यक्ति के विचार जान लेने की चेष्टा करता है।'' इस प्रकार जब विशिष्ट एवं महान व्यक्तियों से साक्षात्कार करके साहित्यकार अपने प्रश्नों व उनके उत्तरों को लिपिबद्ध करता है तो वह इंटरव्यू साहित्य की श्रेणी में आता है। हिंदी में इस विधा के लिए साक्षात्कार, भेंटवार्ता, विशेषपरिचर्चा, भेंट-चर्चा आदि समानार्थक (पर्यायवाची) शब्द प्रयुक्त होते हैं, पर इन पर्यायवाची शब्दों की तुलना में 'इंटरव्यू' शब्द ही हिंदी में अधिक प्रचलित है।

परिभाषा–विद्वानों द्वारा दी गई 'इंटरव्यू'-विषयक कुछ परिभाषाएँ अग्रांकित है।–

डॉ. रामप्रकाश के मतानुसार–''विभिन्न धार्मिक महापुरुषों, राजनीतिक नेताओं, उच्चकोटि के सामाजिक या साहित्यिक व्यक्तियों के विचार जानने और उन्हें सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्राय: पत्र-प्रतिनिधि उनसे भेंट करके अभीष्ट विषय या समस्या पर वार्ता करते हैं और उस वार्त्ता के निष्कर्षों को साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करके पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। ऐसी रचनाएँ भेंट वार्ता (इंटरव्यू) कहलाती हैं।''

–साहित्य की विधाएँ, पृ. 126

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार–''इंटरव्यू उस रचना को कहते हैं जिसमें लेखक किसी व्यक्ति विशेष से प्रथम भेंट में अनुभव होने वाली उसके संबंध में अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को अपनी पूर्व-धारणाओं और आस्थाओं एवं रुचियों से रंजित कर सरस, भावपूर्ण ढंग से व्यंजना-प्रधान शैली में बँधे हुए शब्दों में व्यक्त करता है।''

–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत, द्वितीय भाग-पृ. 502

डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के शब्दों में–''इंटरव्यू से अभिप्राय उस रचना से है। जिसमें लेखक व्यक्ति विशेष के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्राय: किसी निश्चित प्रश्नमाला के आधार पर उसके व्यक्तित्व के संबंध में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त करता है और फिर अपने मन पर पड़े प्रभाव को लिपिबद्ध कर डालता है।''

–सं. डॉ. नगेंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 719

उक्त सभी परिभाषाओं का अवलोकन करने के पश्चात् सारत: यही कहा जा सकता है कि इंटरव्यू साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, कला आदि किसी भी क्षेत्र की उन विशिष्ट विख्यात, अनुभवी, मान्य विभूतियों और महान व्यक्तियों का लिया जाता है। जिनके विचारों को जानने की जनसाधारण के हृदय में सहज जिज्ञासा होती है। 'इंटरव्यू' शब्द से आज एक ऐसी विशिष्ट कोटि की साहित्यिक विधा का बोध होता है, जिसमें एक जिज्ञासु व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में विद्यमान अन्य किसी व्यक्ति विशेषकर प्रख्यात और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से प्रत्यक्ष मिलकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करता है। इस विधा के लिए किसी मान्य विभूति एवं महान व्यक्ति से भेंटवार्ता को ही क्यों महत्त्व दिया जाता है इसका उत्तर डॉ. रामचंद्र तिवारी के निम्न कथन में मिल जाता है।

''इंटरव्यू में उत्तर देने वाले का विख्यात और महिमामय होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में ही उसके उत्तर मूल्यवान होते हैं और अधिक से अधिक लोगों का ध्यान आकृष्ट करते है।'' कभी-कभी सामयिक परिस्थितियों के संदर्भ में वयोवृद्ध और पुरानी पीढ़ी के विद्वान मनीषी के विचार जानने की जिज्ञासा से भी इंटरव्यू लिए जाते हैं। वस्तुत: इंटरव्यू कुछ निश्चित प्रश्नों के आधार पर लिया जाता है। इंटरव्यूवर निश्चित प्रश्नों के माध्यम से व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सरस भावपूर्ण परिचयात्मक साक्षात्कार पाठकों से करा देता है। इंटरव्यू लघु और बड़े के मध्य ही अधिक शोभा देता है। 'लघु' के हृदय की श्रद्धाभावना को देखकर 'बड़े' में सब कुछ कह देने की भावना जाग उठती है। कभी-कभी दो भिन्न क्षेत्रों की विभूतियों के इंटरव्यू भी अत्यंत रोचक और महत्त्वपूर्ण होते हैं। यथा एक कलाकार और एक साहित्यकार के बीच का इंटरव्यू अनेक नवीन और रोचक तथ्यों का उद्घाटन करता है। इंटरव्यूह में व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं। उत्तर देने वाला अवांछित प्रश्नों को हँसकर, मुस्कराकर, कभी प्रसंगांतर उपस्थित करके, कभी चुप रहकर या भौंहों में बल लाकर टाल भी सकता है और कभी विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पूछे गए प्रश्नों का उत्तर भी देता है। हिंदी में काल्पनिक और यथार्थ दोनों ही प्रकार के इंटरव्यू मिलते हैं। काल्पनिक इंटरव्यू में अपनी कल्पना में किसी मान्य विभूति, महान साहित्यकार, विख्यात कलाकार अथवा राजनीतिज्ञ को अवतीर्ण करके उससे प्रश्न पूछना और स्वयं ही उसकी ओर से उत्तर देना बड़ा सुंदर एवं रोचक होता है। डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' लिखित 'मैं इनसे मिला' यथार्थ एवं वास्तविक इंटरव्यू है और राजेंद्र यादव लिखित 'चेखब : एक इंटरव्यू' काल्पनिक इंटरव्यू का सुंदर उदाहरण है। इस प्रकार, यह विधा निरंतर लोकप्रियता प्राप्त कर रही है।

टास्क साक्षात्कार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

14.1.1 इंटरव्यू और संस्मरण

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने इंटरव्यू और संस्मरण का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''संस्मरण व्यक्ति, वस्तु और घटना सबका होता है। उससे लेखक का व्यक्तिगत-संबंध चाहे स्थापित हुआ हो या नहीं हुआ हो, किंतु इंटरव्यू केवल किसी व्यक्ति का ही चित्रण करता है। इंटरव्यू के लिए यह भी आवश्यक है कि लेखक का अभीष्ट व्यक्ति से संपर्क भी स्थापित हुआ हो और उससे उसकी बातचीत भी हुई हो।''

14.1.2 हिंदी इंटरव्यू साहित्य का उद्भव एवं विकास

हिंदी साहित्य में इस विधा का सूत्रपात प्रारंभ में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। आगे चलकर स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में कृतियाँ प्रकाशित हुई। हिंदी-गद्य में इस विधा के प्रवर्तन का श्रेय बनारसीदास चतुर्वेदी को है। 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'रत्नाकर जी से बातचीत' (सितंबर, 1931) और 'प्रेमचंद जी के साथ दो दिन' (जनवरी, 1932) इस दिशा में उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ है। इसके बाद नवंबर 1933 में पं. श्रीराम शर्मा का 'कबूतर' नामक इंटरव्यू प्रकाशित हुआ। 7 वर्ष बाद डॉ. सत्येंद्र के संपादकत्व में प्रकाशित 'साधना' पत्रिका के मार्च-अप्रैल, 1941 के अंक का इस विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अंक में जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा भदंत आनंद कौसल्यायन से और चिरंजीलाल 'एकाकी' द्वारा महादेवी वर्मा से लिए गए इंटरव्यू प्रकाशित हुए थे।

पुस्तक रूप में इस विधा का प्रारंभ बेनीमाधव शर्मा कृत 'कविदर्शन' नामक कृति से माना जाता है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने 'कविदर्शन' को इस विधा की प्रथम स्वतंत्र कृति माना है। इसमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामसुंदरदास, रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त प्रभृति कृतिकारों से लिए गए इंटरव्यू संगृहीत हैं।

'इंटरव्यू' के संदर्भ में सर्वाधिक लोकप्रिय कृति डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' द्वारा दो भागों में लिखित 'मैं इनसे मिला' (सन् 1955 ई.) है। इसके दोनों भागें में कुल व्यक्तियों के इंटरव्यू हैं। इस कृति में 'कमलेश' जी ने जहाँ प्रबुद्ध-गणमान्य साहित्यकारों से कुछ बँधे-बँधाए प्रश्न पूछकर उनके उत्तर सँजोने की शैली अपनाई है, वहाँ स्पष्ट साहित्यकार से भेंट और बातचीत करने के बाद अपने मन पर पड़े प्रभाव को लिपिबद्ध कर देने की शैली का

नोट

प्रयोग किया है। प्रस्तुत कृति के स्वरूप एवं विशेषताओं के संबंध में शर्मा जी ने लिखा है–''इन भेंट-वार्ताओं का कैनवास बड़ा व्यापक है। कृतिकार की रचनाओं तक ही सीमित न रह कर ये उनके जीवन के विविध पक्षों अर्थात् रुचि, स्वभाव, रहन-सहन, आकृति-प्रकृति, साहित्य-सृजन आदि पर भी प्रकाश डालती हैं जिससे उनकी कृतियों को समझने में सहायता मिलती है। साहित्यकारों के जीवन की अनेक रोचक घटनाओं के वर्णन से इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी बढ़ गया है।''

प्रस्तुत विधा की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति देवेंद्र सत्यार्थी कृत 'कला के हस्ताक्षर' है। यों तो इसमें अनेक स्थलों पर संस्मरण, रेखाचित्रण और निबंध की विशेषताएँ भी अनायास समाविष्ट हो गई हैं, फिर भी इसकी पृष्ठभूमि में इंटरव्यू की विधा ही मुख्य है। लेखक ने संगीत, अभिनय, साहित्य चित्रकारिता आदि से संबद्ध महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से अपनी भेंट-वार्ता के बाद उपलब्ध जानकारी को लिपिबद्ध किया हैं। कैलाश कल्पित की 'साहित्य-साधिकाएँ', लक्ष्मीचंद्र जैन लिखित 'भगवान महावीर–एक इंटरव्यू', और शरद देवड़ा लिखित 'हिंदी की चार नवोदित लेखिकाओं से एक रंगमंचीय काल्पनिक इंटरव्यू' आदि उल्लेखनीय है। शरद देवड़ा ने सुंदर-सजीव मानसिक साक्षात्कार प्रस्तुत किया है। इस विधा की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति है–डॉ. रणवीर रांग्रा लिखित 'सृजन की मनोभूमि'। इससे डॉ. रणवीर रांग्रा ने हिंदी के शीर्षस्थ साहित्यकारों से बातचीत करके उनकी रचना की मनोवैज्ञानिक भूमि को स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयास किया है। डॉ. रांग्रा की भेंट-वार्त्ताओं के महत्त्व के संबंध में डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने लिखा है–''इन भेंट-वार्ताओं में रांग्रा ने अपनी जिज्ञासाएँ साहित्यकार के सृजन तक ही केंद्रित की हैं और अपने तलस्पर्शी प्रश्नों द्वारा उनके सृजन की मनोभूमि तक पहुँचने की चेष्टा की है। चर्चा को कोरी तार्किकता से बचाकर रचनाकार के अंतरंग को कुरेदने के प्रयत्न से जोड़कर उन्होंने साक्षात्कार को सृजनात्मक वैशिष्ट्य दिया है।''

इनके अतिरिक्त, केशवचंद्र वर्मा कृत 'शार्टकट की संस्कृति', अज्ञेय कृत 'अपरोक्ष', मनोहर श्याम जोशी कृत 'बातों-बातों में', कमलकिशोर गोयनका कृत 'जिज्ञासाएँ मेरी–समाधान बच्चन के', कर्णसिंह चौहान द्वारा संपादित 'साक्षात्कार–डॉ. रामविलास शर्मा से बातचीत', रत्ना लाहिड़ी कृत 'संस्कृति, साहित्य और समय', भारत यायावर द्वारा संपादित 'रेणु से भेंट', गोविंद मिश्र कृत 'लेखक की जमीन', दिनकर कृत 'वट-पीपल' विष्णु प्रभाकर कृत 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ', आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह कृत 'हजारीप्रसाद द्विवेदी का इंटरव्यू' ने इस विधा के क्षेत्र में एक नया आयाम जोड़ दिया है। प्रभाकर माचवे, शिवदान सिंह चौहान, रामचरण महेंद्र आदि ने भी इस विधा की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इधर कुछ पुस्तकें और प्रकाशित हुई हैं जिनमें किसी विशिष्ट साहित्यकार से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर संकलित हैं। इस दृष्टि से समय, समस्या और सिद्धांत तथा 'समय और हम' में वीरेंद्र कुमार ने जैनेंद्र जी से भेंट-वार्ताओं के आधार पर सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों से संबद्ध प्रश्नों के उत्तर सँजोए हैं। इसी प्रकार 'हिंदी-कहानी और फैशन' में डॉ. सुरेश सिन्हा ने उपेंद्रनाथ अश्क से कहानी-कला के विषय में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर रोचक शैली में निबद्ध किया है। इस विधा के विकास में नई धारा, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, अभिरुचि, दस्तावेज आदि अनेक पत्रिकाएँ भाषा, साहित्य और कला विषयक अपने विशेषांकों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त विभिन्न दैनिक समाचार-पत्रों की साप्ताहिकी में भी इंटरव्यू प्राय: प्रकाशित होते रहते हैं। इसी प्रकार मासिक पत्रिका 'संगीत' में 'संगीत-साधकों से भेंट' शीर्षक के अंतर्गत प्रसिद्ध संगीतज्ञों से इंटरव्यू प्रकाशित होते रहे हैं।

अत: स्पष्ट है कि ''एक स्वतंत्र विधा के रूप में भेंट-वार्त्ताओं का महत्त्व निर्विवाद है। इनसे साहित्यकारों के अंतरंग जीवन, उनकी रचना-दृष्टि, उनकी रचनाओं की मूल प्रेरणा, उन पर पड़ने वाले प्रभाव, उनकी विचारधारा तथा उनके प्रयोजन और उद्देश्य की प्रत्यक्ष सूचना मिलती है। इन सबका समग्र रूप से अवलोकन किया जाए तो पूरे सहित्य का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है। राष्ट्र की सभी भाषाओं के साहित्य-निर्माताओं के साक्षात्कार एकत्र किए जाएँ तो पूरे राष्ट्र की आत्मा साकार हो सकती है। यह प्रसन्नता की बात है कि भेंट-वार्त्ताओं (इंटरव्यू) का प्रचलन बढ़ रहा है। हिंदी गद्य साहित्य में यह विधा अभी अपनी शैशववस्था में है, पर भविष्य में इसके और अधिक विकसित एवं कलात्मक बनने की पूरी संभावनाएँ हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. साक्षात्कार निश्चित प्रश्नों के माध्यम से व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सरस भावपूर्ण .... साक्षात्कार पाठकों से करा देता है।
2. साहित्यकारों के जीवन की अनेक रोचक घटनाओं के वर्णन से साक्षात्कार का .... महत्त्व बढ़ गया है।
3. राष्ट्र की सभी भाषाओं के साहित्य-निर्माताओं के साक्षात्कार एकत्र किए जाएँ तो पूरे राष्ट्र की .... साकार हो सकती है।

14.1.3 फ़ीचर (रूपक)

फ़ीचर (रूपक) एक अत्याधुनिक लेखन विधा है जो पत्रकारिता के क्षेत्र में विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुई है। स्वाधीनता के पश्चात् हिंदी-पत्रकारिता में रूपक-लेखन की नई विधा का विकास हुआ। मानवीय अभिरुचि की मनोरंजक सामग्री को अब सचित्र रूप में प्रकाशित करके आम जनता तक प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के बाद मुद्रण और संपादन कला में तीव्र गति से प्रगति हुई है। फलस्वरूप पत्रकारों का ध्यान कलात्मक लेखन एवं जीवन के विविध पक्षों को गहराई से समझ कर उसे अभिरुचि देने की ओर गया। आधुनिक हिंदी गद्य के स्मारक साहित्य में फ़ीचर (रूपक) का विशेष महत्त्व है।

अंग्रेजी 'फ़ीचर' को हिंदी में 'रूपक' कहते है। डान डंकन का कहना है कि 'फ़ीचर' जीवन के प्रति नवीन 'दृष्टिकोण दैनिक जीवन की करुणा, उसके नाटक और हास्य को उसके मूल में ग्रहण कर उसका चित्रण करने की एक विधि है। 'फ़ीचर' एक 'सैंडविच' के समान है जिसके दोनों ओर शक्कर की पर्त से ढके हुए केक के टुकड़े तथा बीच में मसालेदार मांस और आलू रहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि रूपक पाठक के हृदय में आनंद और संतुष्टि की भावना पैदा करता है।'

परिभाषा–आधुनिक स्मारक साहित्य में अनेक स्थानों एवं स्थलों के विषय में रोचक कथा-सूत्रों के साथ प्रस्तुत किए जाने वाले साहित्य-रूप को, जिसमें दो कथाएँ साथ-साथ चलती हैं, उसे 'फ़ीचर' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में 'रंगीन वृत्तात्मक रचना रूपक है।' एक विद्वान के विचारानुसार 'मानवीय अभिरुचि के साथ मिश्रित समाचार जब चटपटा लेख बन जाता है। तब फ़ीचर (रूपक) के रूप में जाना जाता है।' डॉ. अर्जुन तिवारी का मत है कि "समसामयिक घटनाओं एवं विविध क्षेत्र के अद्यतन परिवर्तन के सचित्र और मनोरम विवरण को फ़ीचर या रूपक कहा जा सकता है।" डॉ. ए.आर. डंगवाल के अनुसार–"किसी घटना का मनोरम और विशुद्ध प्रस्तुतीकरण ही फ़ीचर है।" श्री एन.सी. पंत एवं मनोज कुमार का विचार है कि "कोई भी विशेष व प्रधान लेख जो किसी समाचार-पत्र व पत्रिका में किसी भी प्रकरण-संबंधी विषय पर प्रकाशित होता है उसे रूपक या प्रधान लेख कहते हैं।"

उपुर्यक्त परिभाषाओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी घटना, प्रकरण, तथ्य या रोचक विषय का मनोरम एवं विशद् प्रस्तुतीकरण ही फ़ीचर है। इसमें दैनिक समाचार, सामयिक विषय अथवा बहुसंख्यक पाठकों की अभिरुचि वाले विषय की चर्चा होती है। इसके माध्यम से लेखक व्यक्ति तथा परिवेश के व्यक्तित्व और समग्र रूप को उद्घाटित करता है। इतना ही नहीं, अपितु फीचर-लेखक स्थान के विवरण के द्वारा एक दूसरी कहानी भी प्रस्तुत करता है।

अस्तु, फ़ीचर ऐसा रचनात्मक तथा कुछ सीमा तक स्वानुभूतिमूलक लेख है जिसका निर्माण किसी घटना, प्रकरण, स्थिति, विषय अथवा जीवन के किसी पक्ष के संबंध में पाठकों को मनोरंजन करने, सूचना देने तथा जनता को कार्य करने का व्यावहारिक निर्देशन प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया हो। इस प्रकार रूपक अकस्मात् आने वाले समाचार के बाहर किसी भी खंड, चित्रावली या समाचार-वृत्त का श्रेणीगत नाम है।

विशेषताएँ–रूपक सदैव अपनी इच्छानुसार लिखा जाता है। इसकी रचना करने में एक विशेष ढंग की आवश्यकता होती है। रूपक तथ्यों की गवेषणा है जिसका लक्ष्य प्रशिक्षण, निर्देशन और सूचना देना है। इसलिए रूपक मनोरंजक, अनौपचारिक एवं घुल-मिलकर की जाने वाली वार्तालाप शैली में ही लिखा जाता है, जिसमें वह पाठकों को आकर्षित कर सके और अपने महत्त्व को बनाए रखे। रूपक की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. संबंधित तथ्यों का संकलन।
2. मनोरंजक, सरस, भावपूर्ण और सुबोध ढंग से प्रस्तुतीकरण।
3. आमुख और शीर्षक का निर्धारण।
4. चित्रों एवं शब्दों की सहायता से तथ्यों को रंगीन और आकर्षक स्वरूप देना।
5. शोधक दृष्टि के द्वारा गहराई में पैठकर घटना, प्रकरण अथवा तथ्यों की सच्चाई को ढूँढ़ना।
6. पाठकों में औत्सुक्य, सहानुभूति, हास्य-व्यंग्य और आश्चर्य का संचार करना।
7. तथ्य, घटना या विषय को विस्तार के साथ प्रस्तुत करना।
8. साक्षात्कार या भेंटवार्ता द्वारा सामयिक विषयों की गवेषणापूर्वक व्याख्या करना।
9. रूपक में पाठक की कल्पना-शक्ति प्रभावित होती है।
10. इससे विविध प्रतिक्रिया और दूरगामी परिणाम की झलक मिलती है।
11. उपन्यास की तरह यह बहुरंगी शैली में लिखा जाता हैं।
12. फ़ीचर एक प्रकार का गद्यगीत है अर्थात् क्षणिक मुद्रा अलंकरण है।

नोट्स रूपक सदैव अपनी इच्छानुसार लिखा जाता है।

14.1.4 फ़ीचर और समाचार

ब्रेन निकोलस ने फ़ीचर (रूपक) को समाचार-पत्र की आत्मा कहा है। किसी समाचार-पत्र के व्यक्तित्व को उभारने के लिए उसमें प्रकाशित फ़ीचर का विशेष योगदान होता है। जो समाचार-पत्र जितने अच्छे, आकर्षक, समसामयिक, समस्यामूलक, ज्ञानवर्धक तथा मनोरंजक फ़ीचर प्रकाशित करता है, पाठक उसके प्रति उतने ही आकर्षित होते हैं और समाचारपत्र की लोकप्रियता बढ़ती है। इस प्रकार समाचार को नए आयाम देकर पत्र-पाठकों को प्रशिक्षित, सूचित करने तथा उनके मनोरंजन की सामग्री उपस्थिति करने की दिशा में फ़ीचर का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अंतर–फ़ीचर-निर्माण करने की प्रवृत्ति भारतीय समचार-पत्रों में बहुत कम पाई जाती है। फ़ीचर को सही ढंग से जानने के लिए उसका समाचार से अंतर समझना आवश्यक है। दोनों में आदि, मध्य और अंत अर्थात् विषय-प्रवेश, विकास और निष्कर्ष रहता है। इस परंपरागत ढाँचे के बावजूद भी दोनों की लेखन-शैली में भिन्नता रहती है, जो इस प्रकार हैं–

1. समाचार किसी घटना के विषय में सीधा तथ्यात्मक एवं तटस्थ लेखन है, जबकि फ़ीचर किसी समाचार या घटना पर आधारित कलात्मक एवं मनोरंजक ढंग से विस्तृत प्रस्तुतीकरण है। इसमें घटना की पृष्ठभूमि तथा भावी संभावनाओं का सम्मिश्रण भी रहता है।
2. फ़ीचर कुछ दिन या महीने भर बाद भी लिखा जा सकता है, पर समाचार में ऐसा नहीं होता क्योंकि समाचार में सामयिकता का तत्व प्रमुख रहता है।
3. संक्षिप्तता समाचार की आत्मा है, किंतु विस्तार फ़ीचर का गुण है।

नोट

4. घटना या प्रकरण विषयक तथ्यों को तटस्थ भाव से सुस्पष्ट करना समाचार का लक्ष्य रहता है जबकि फ़ीचर संवादों की गहराई में जाता है।
5. सीधे-सादे ढंग से घटना के प्रमुख तथ्यों को समाचार में दे दिया जाता हैं। इसके विपरीत फ़ीचर लिखने की अपनी अलग और विशिष्ट शैली होती है। अर्थात् फ़ीचर उपन्यास की भाँति रंजक शैली में लिखा जाता है।
6. संवाददाता अपने समाचारों पर शीर्षक नहीं देता, जबकि फ़ीचर-लेखक शीर्षक देता है।
7. समाचार एककालिक और एकस्थानिक होता है, पर फ़ीचर इससे भिन्न होता है।

14.1.5 फ़ीचर (रूपक) और लेख

फ़ीचर और लेख में कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो दोनों में विद्यमान रहती हैं। दोनों ही समाचार-लेखन से भिन्न शैलियों में लिखे जाते हैं। फ़ीचर और लेख दोनों ही ऐसे गुणों से परिपूर्ण होते हैं जो एक अच्छे व उत्कृष्ट गद्य-साहित्य के लिए अति आवश्यक है। प्राय: लेख फ़ीचर रूप ग्रहण कर लेता है और फ़ीचर में लेख के लक्षण विद्यमान रहते हैं। फ़ीचर और लेख में अंतर का स्पष्ट कर सकना कठिन कार्य है, क्योंकि दोनों विशेषताएँ-कलाएँ एक-दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण करती हैं। फिर भी, दोनों का अपना पृथक्-पृथक् स्वरूप और अस्तित्व होता है।

क्या आप जानते हैं फ़ीचर को ठीक प्रकार से जानने के लिए उसका समाचार से अंतर समझना आवश्यक है।

अंतर—पाठकों की अभिरुचि के अनुरूप नाटकीयता से परिपूर्ण सामान्य पाठ्य-वस्तु फ़ीचर है जबकि गूढ़ अध्ययन पर आधारित गंभीर विद्वतापूर्ण प्रामाणिक रचना ही लेख है। पृष्ठभूमि के संदर्भ और अध्ययन से एक सुंदर लेख का निर्माण किया जा सकता है, लेकिन फ़ीचर का नहीं। फ़ीचर लिखने के लिए लेखक को अपनी आँखों, कानों पर भरोसा करना पड़ता है तथा विशेष तौर पर अनुभूतियों, प्रतिक्रियाओं तथा कल्पनायुक्त भावों—मनोवेगों का सहारा भी लेना पड़ता है। इसके विपरीत लेख-निर्माण के लिए लेखक के तथ्यों, आँकड़ों और पुस्तकों का अध्ययन एवं पूर्व पीठिका में दी जाने वाली सामग्री की आवश्यकता होती है। श्री पी. डी. टंडन के अनुसार किताब पढ़कर, आँकड़े जमा करके, लेख लिखे जा सकते हैं; लेकिन 'फ़ीचर' लिखने के लिए अपनी आँख, कान, भावों, अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषण का सहारा लेना पड़ता है। लेख लंबा, अरुचिकर, भारी भी हो सकता है लेकिन ये बातें 'फ़ीचर' की मौत है। फ़ीचर को मज़ेदार, दिलचस्प और दिलपकड़ होना चाहिए। ··· फ़ीचर एक प्रकार का गद्य-गीत है जो नीरस, लंबा, गंभीर नहीं हो सकता। वह मनोरंजक एवं तड़पदार होना चाहिए जिससे लोगों के दिल हिलें, चित्त प्रसन्न हों तथा पढ़कर दिल में गम का दरिया बहे। दोनों की इन भिन्नताओं के अतिरिक्त साररूप में फ़ीचर और लेख के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. फ़ीचर का संबंध हृदय से होता है जबकि लेख का संबंध मस्तिष्क से।
2. फ़ीचर एक प्रकार का गद्य-गीत है अर्थात् क्षणिक मुद्रा का अलंकरण है। पर लेख बहुआयामी, गंभीर, उच्च तथा व्यंग्य कृति है।
3. फ़ीचर साफ़-सुथरा और मनोरम एक कक्षवाली कृति है, किंतु लेख अनेक कमरों वाला बहुमंजिला विशाल भवन है।
4. फ़ीचर-लेखन का कार्य कलात्मक और कठिन है, जबकि तथ्यों, आँकड़ों के आधार पर लेख लिखना आसान है।
5. फ़ीचर से मनोरंजन होता है, लेकिन लेख से शिक्षा मिलती है।
6. फ़ीचर में ज्ञात अथवा अल्पज्ञात घटना को आधार बनाया जाता है, पर लेख किसी विषय को आधार बनाकर लिखे जाते हैं।

7. फ़ीचर-लेखन सामान्यत: अगंभीर होता है, उसमें यत्र-तत्र परिहास का पुट निहित रहता है, जबकि लेख में लेखक को उपलब्ध तथा प्राप्त आधार-सामग्री पर गंभीरता-पूर्वक ध्यान देना पड़ता है।

14.1.6 फ़ीचर-लेखन के लिए अपेक्षित तत्व

रोचकता तथा आकर्षण फ़ीचर का सर्वप्रमुख गुण होता है। फ़ीचर को आकर्षक तथा रोचक बनाने के लिए जिन अपेक्षित सहायक तत्वों एवं बातों की आवश्यकता पड़ती है, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. फ़ीचर-लेखक को निश्चितता और उपयुक्तता का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है। किसी भी तथ्य को घुमा-फिराकर अथवा किसी बात को बार-बार लिखने से फ़ीचर का महत्त्व और उपयोगिता खत्म हो जाती है।
2. फ़ीचर लिखते समय लेखक को आरंभ से अंत तक विषय की सीमा के अंदर रहना ज़रूरी होता है ऐसा न होने पर फ़ीचर का धारा-प्रवाह रूप और क्रमबद्धता नष्ट हो जाती है।
3. फ़ीचर-लेखक को सदैव पाठकों को सतर्क रखने की कोशिश करनी चाहिए, ताकि पाठक आगे आने वाली बातों को पढ़ने हेतु उत्सुकता दिखाए।
4. फ़ीचर-रचना को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए उसमें प्रतिक्रियाओं एवं घटनाओं का उचित प्रयोग अति आवश्यक होता है।
5. हास-परिहास जीवन की अनमोल निधि है जो जीवन को रसमय बनाती है। अत: फ़ीचर-लेखक को अपने द्वारा लिखित फ़ीचर में सम्यक् हास-परिहास का पुट देकर रचना को सुंदर बनाने का प्रयास करना चाहिए।
6. फ़ीचर का निर्माण करते समय लेखक को भूमिका इस तरह लिखनी चाहिए कि पाठक के मन में उसके संबंध में औत्सुक्य और अभिरुचि पैदा हो जाए।
7. फ़ीचर-लेखक की सफलता का महत्त्वपूर्ण तत्व सुंदर प्रारंभ और आनंदमय अंत होता है।
8. फ़ीचर रोचक और धमाकेदार होना चाहिए, न कि लंबा, नीरस और गंभीर।
9. फ़ीचर लिखते समय हास-परिहास तथा कल्पना का विशिष्ट योग रहता है।
10. लेखक का अनुभव और अनुमान भी एक महत्त्वपूर्ण तत्व है जिससे फ़ीचर का जन्म होता है।
11. पुराने पत्र एवं पत्रिकाओं के अध्ययन से एक अच्छे फ़ीचर की रचना की जा सकती है।

वस्तुत: फ़ीचर का स्वरूप विवरणात्मक होता है। इसलिए कुछ हद तक फ़ीचर समाचार और लेख के समान ही होता है। अन्य विवरणात्मक लेखन की भाँति फ़ीचर के भी तीन प्रमुख अंग होते हैं–1. प्रस्तावना, 2. विवरण और 3. उपसंहार।

1. **प्रस्तावना**–अंग्रेजी में प्रस्तावना को 'इंट्रोडक्शन' कहते है। इंट्रोडक्शन का संक्षिप्त रूप 'इंट्रो' है। अमेरिकी पत्रकारिता की भाषा में 'इंट्रों' को 'लीड' कहते है। हिंदी-उर्दू में पत्रकार इसे 'आमुख' या मुखड़ा भी कहते हैं। किंतु प्रस्तावना शब्द ही अधिक प्रचलित है।

   मुख्य तथ्य का उद्घाटन होने से प्रस्तावना का फ़ीचर में विशिष्ट स्थान है। यह फ़ीचर का एक तरह से परिचय-पत्र होता है। प्रस्तावना के माध्यम से फ़ीचर के विवरण का सार-तत्व प्रस्तुत कर शेष विवरण को जानने की जिज्ञासा पैदा की जाती है। श्रेष्ठ, अच्छी और उत्तम प्रस्तावना प्रथम वाक्य से संदर्भित विषय-वस्तु के प्रति पाठक का ध्यान आकर्षित करती है। इस प्रकार मूल विषय की नव्यतम और महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तावना में दी जाती है।

टास्क फीचर (रूपक) विधा का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

विषयवस्तु की विभिन्नता के अनुसार प्रस्तावना-लेखन में विविधता वस्तुत: लेखक की शैली पर निर्भर होती है। प्रस्तुतीकरण के तरीके में छूट होने पर भी यह अपेक्षित है कि उसमें सारगर्भित तथ्य और विचार समाहित हो। इसके अतिरिक्त प्रस्तावना में तथ्य का निष्कर्षणात्मक और महत्त्वपूर्ण अंश पाठक की संतुष्टि हेतु प्रभावशाली रूप में आना चाहिए। फ़ीचर का प्रारंभ और अंत रोचक एवं अलंकारिक शैली में अच्छा एवं उपयुक्त माना जाता है। यही कारण है कि कुछ फ़ीचर-लेखक प्रस्तावना का प्रारंभ लघु कथा-प्रविधि के अनुरूप करते हैं। कुछ नाटकीय पुट देकर अथवा किसी मनोरंजक तरीके से प्रारंभ करते हैं और उसे सजाते-सँवारते हैं। सारत: प्रस्तावना किसी भी तरीके से क्यों न लिखी जाए, किंतु उसे पाठक में औत्सुक्य एवं अभिरुचि उत्पन्न करने में समर्थ अवश्य होना चाहिए। वस्तुत: प्रस्तावना के विविध रूप प्रचलित हैं। कुछ बहु-प्रचलित रूप इस प्रकार हैं–

1. सारयुक्त अग्रांश
2. विशिष्ट घटनात्मक अग्रांश
3. दृष्टान्वित अग्रांश
4. लघु-वाक्य अग्रांश
5. प्रश्नात्मक अग्रांश
6. विरोधात्मक अग्रांश
7. सादृश्य-अग्रांश
8. चित्रात्मक अग्रांश
9. प्रत्यक्ष भवांवित अग्रांश
10. नाट्यात्मक अग्रांश।

2. **विवरण**–प्रस्तावना के बाद फ़ीचर का दूसरा अंग विवरण होता है। प्रस्तावना में फ़ीचर के विषय का जो संकेत अथवा महत्त्वपूर्ण सार-तथ्य दिया जाता है, उसे विवरण से संपुष्ट किया जाता है। अन्य विवरणात्मक लेखन की तरह इस अंग में विषय का विस्तार से वर्णन होता है। इसमें विषय-वस्तु से संबंधित तथ्य एवं भाव क्रमश: विभिन्न अनुच्छेदों में दिए जाते हैं। विषय का प्रस्तुतीकरण करते समय इससे फ़ीचरकार को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पृथक्-पृथक् अनुच्छेदों के भावों की शृंखलाबद्धता में ऐक्य बना रहे।

3. **उपसंहार**–यह फ़ीचर का तीसरा और अंतिम अंग है। इसमें फ़ीचर के मुख्य तथ्यों का समीक्षात्मक सारांश दिया रहता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. फीचर पाठक के हृदय में किसकी भावना पैदा करता है?

   (क) दुख (ख) संवेदना
   (ग) कठोरता (घ) आनंद और संतुष्टि की

5. उपन्यास की तरह फीचर .... शैली में लिखा जाता है।

   (क) गंभीर (ख) बहुरंगी
   (ग) हास्य शैली में लिखा जाता है (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

6. पुराने पत्र एवं पत्रिकाओं के अध्ययन से एक अच्छे फीचर की .... की जा सकती है।

   (क) कामना (ख) व्याख्या
   (ग) रचना (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

14.1.7 फ़ीचर-लेखन-विधि

पत्रकारिता की अन्य विधाओं की भाँति 'फ़ीचर-लेखन' के संदर्भ में प्राय: विद्वानों में मत-वैभिन्नय पाया जाता है। जोवेट का विचार है कि ''विषय की मूलवस्तु तक सीधे और तत्काल प्रवेश तथा अनावश्यक शब्दों एवं

नोट

विशेषणों के प्रयोग से बचना चाहिए।'' इस बात से भी विद्वान सहमत हैं। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों तथा विचारों को प्रस्तुत करना लेखक की प्रतिभा का सूचक है।

फ़ीचर-लिखने के विषय में कुछ लोगों की धारणा है कि जो सोचें, उसे लिख डालें। यह कदापि न सोचें कि क्या लिखना है? बिना झिझक लिखें, जैसे विचार और शब्द आते हैं। शब्द-चयन के चक्कर में न पड़ें। उत्तर शैली के लिए स्वचेतना के प्रति सजग रहें कि मन में क्या है और क्या कहना है? विषय-वस्तु को सदैव ध्यान में रखकर सीधे लिखें। शब्दों की तब तक चिंता न करें, जब तक वे अस्वाभाविक और अनावश्यक न लगें। कम-से-कम शब्दों में सीधे, सरल ढंग से वही लिखे जो लिखना हो। ऐसे शब्दों को ही प्रयुक्त करें, जो विषयवस्तु को छोटे आकार में और मूर्तरूप में प्रस्तुत कर सकें।

14.1.8 फ़ीचर की लेखन-शैली

फ़ीचर-लेखन में तथ्यों के बाद शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। फ़ीचर-लेखकों ने प्रायः सादगीपूर्ण लेखन पर विशेष बल दिया है। वस्तुतः सादगी उत्कृष्टता का एक अनिवार्य तत्व है, जो शब्द, वाक्य, परिच्छेद आदि सभी को संस्पर्श करती है।

पाठक की यह अभिरुचि रहती है कि तथ्य या समाचार की सही जानकारी उसके सम्मुख आकर्षक शैली में हो। यही कारण है कि जहाँ एक ओर फ़ीचर-लेखक को समाचार-बोध का ध्यान रखना पड़ता है, वहाँ दूसरी ओर पर्याप्त साहित्यिक अभिव्यक्ति पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है।

14.1.9 फ़ीचर-लेखन-शैली में कुछ ध्यातव्य बातें

फ़ीचर-लेखन-शैली के संदर्भ में उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त कुछ बातें हैं, जिनके विषय में स्पष्ट जानकारी का होना अति आवश्यक हैं वे बातें अधोलिखित हैं–

1. परिच्छेद छोटे-छोटे होने चाहिए जिससे पाठकों को पढ़ने में सुविधा हो।
2. फ़ीचर की शैली में क्लिष्ट भाषा और लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। ऐसा न होने से फ़ीचर के प्रति पाठकों के मन में अरुचि का भाव जागृत हो जाता है।
3. फ़ीचर की वाक्य-योजना सुगठित होनी चाहिए।
4. वाक्य-योजना में आकर्षक तत्वों का समावेश अपेक्षित है।
5. फ़ीचर में विषय-वस्तु का उद्देश्य मुख्य होता है। इसलिए उसे पाठकों तक संप्रेषित करने हेतु पाठकों की अभिरुचि का ध्यान रखना अपेक्षित है।
6. फ़ीचर में गति और उत्तेजना लाने हेतु सीधे-सादे वाक्यों का प्रयोग प्रभावी होता है।
7. फ़ीचर का प्रारंभ वाक्य यदि रुचिकर नहीं है तो वह पाठाकों को आकर्षित नहीं कर सकेगा।
8. फ़ीचर की शैली नीरस नहीं होनी चाहिए।
9. फ़ीचर की शैली में सामान्यतः प्रचलित शब्दों का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

नोट्स फ़ीचर लेखन में तथ्यों के बाद शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

14.1.10 फ़ीचर के प्रकार

आधुनिक हिंदी पत्रकारिता में फ़ीचर का क्षेत्र भी पर्याप्त विस्तृत है। यही कारण है कि फ़ीचर का वर्गीकरण करना एक दुष्कर कार्य है। विषय-विविधता और उनका परस्पर-व्यापी होना ही वस्तुतः इसमें प्रमुख समस्या है। फिर भी विषयों की विविधता और विस्तार की दृष्टि से फ़ीचर को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

नोट

1. **समाचारपरक फ़ीचर**–ऐसे फ़ीचर को अंग्रेजी में 'न्यूज़-फ़ीचर', 'न्यूज़ फ़ालो अप्स', 'न्यूज इन डेप्थ' तथा 'न्यूज़ बिहाइंड न्यूज़' भी कहते हैं। ये फ़ीचर मनोरंजनात्मक तथा सूचनात्मक होते हैं, और समाचार के तथ्यों तथा अन्य विवरण को समेटे रहते हैं। समाचार से सीधे संबद्ध होने के कारण ही इन्हें समाचार-फ़ीचर कहते हैं।
2. **विशेष घटनापरक फ़ीचर**–अकाल, युद्ध, दंगा, आंदोलन और दुर्घटना पर आधारित फ़ीचर इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं।
3. **व्यक्तिपरक फ़ीचर**–यथा–किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के कृतित्व तथा उसकी सामयिक उपलब्धि से संबद्ध फ़ीचर।
4. **सामान्य जनपरक फ़ीचर**–इसके अंतर्गत सिपाही, माली, कुली, सफाई-कर्मचारी, भिक्षुक, रिक्शा-चालक आदि के जीवन-यापन पर आधारित फ़ीचर आते हैं।
5. **मानवीय रुचि-विषयक फ़ीचर**–मानवीय रुचि विविधतामय होती है। इस प्रकार के फ़ीचर में लेखक पाठक के मन में कथा के द्वारा भय, घृणा, क्रोध, प्रेम, करुणा, सहानुभूति की भावना उकेर कर उसके संवेगों को सहज रूप में जागृत करता है।
6. **अनुभव और पूछ-ताछ पर आधारित विश्लेषणात्मक फ़ीचर**–इसमें रेल या हवाई जहाज में घटी घटना, खाद्यान्न का अभाव दवा की चोरबाजारी, नियन्त्रित मूल्य की दुकानों पर लगी कतार, किरायादारी एवं राहजनी आदि से संबंधित समस्याओं का गहराई में जाकर विश्लेषण रहता है।
7. **समस्यापरक फ़ीचर**–ऐसे फ़ीचर में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा दैनंदिन समस्याओं की, उनकी पृष्ठभूमि एवं भावना-परिवेश के साथ प्रस्तुति रहती है।
8. **सांस्कृतिक फ़ीचर**–मनोरंजन, लोक-नृत्य, रीतिरिवाज, वेश-भूषा, आचार-विचार-विषयक फ़ीचर इसी प्रकार के होते हैं।
9. **मौसमी फ़ीचर**–जन्म-तिथि, पुण्य-तिथि, पर्व-त्यौहार आदि से संबंधित विषय जब तथ्यपूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं, तब उसे मौसमी या मौसम-प्रधान फ़ीचर कहते हैं। यथा–होली, दीपावली, दशहरा, मुहर्रम, बड़ा दिन, कुंभ-मेला, गणतंत्र-दिवस-समारोह तथा महापुरुषों, संतों एवं कला-विशारदों की जन्म-तिथि, पुण्य-तिथि से संबंधित फ़ीचर।
10. **स्थानीय एवं अंचलपरक फ़ीचर**–किसी स्थान एवं अंचल विशेष को आधार बनाकर लिखे गए फ़ीचर स्थानीय एवं 'अंचलपरक फ़ीचर' कहलाते हैं।
11. **इतिहासपरक फ़ीचर**–ऐसे फ़ीचरों में इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों, घटनाओं तथा स्मारकों का मानवीय रुचि के अनुकूल विवरणात्मक आलेखन रहता है।
12. **यात्रापरक फ़ीचर**–वस्तुतः यात्राएँ ज्ञानार्जन और मनोरंजन का साधन हैं। मानव में अपने अनुभव से अलग कुछ और ज्ञान ग्रहण करने की प्रबल इच्छा रहती है। यात्रा-वृतांत उसकी इस लालसा को संतुष्ट करते हैं। इस प्रकार के फ़ीचरों में लेखक स्थान विशेष की दर्शनीय जगहों तथा यहाँ के लोगों के रहन-सहन के विषय में आवश्यक जानकारी मनोरंजक शैली में प्रस्तुत करता है।
13. **विज्ञानपरक फ़ीचर**–आधुनिक युग विज्ञान प्रधान है। मानव-जीवन के विविध क्षेत्रों में विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है; जैसे–कृषि, वन, संचार, आयुध आदि क्षेत्रों में आए दिन नई-नई खोजें हो रही हैं। पाठकों को उनकी जानकारी रोचक ढंग से देना विज्ञानपरक फ़ीचर का उद्देश्य रहता है।
14. **खेल-कूद तथा क्रीड़ा-विषयक फ़ीचर**–इसके अंतर्गत किसी खेल का विवरण, पूर्ण इतिहास, खिलाड़ियों के संस्मरण, उनके चित्र, खेल-शैली सुधारने के निर्देश रोचक तरीके से प्रस्तुत किए जाते हैं।
15. **साक्षात्कारपरक फ़ीचर**–साक्षात्कार या समालाप विशिष्ट एवं सामान्य दोनों तरह के लोगों से किया जा सकता है। ऐसे फ़ीचरों में रोचक तथ्यों तथा आलोचना पर लेखक द्वारा विशेष बल दिया जाता है।

नोट

16. **व्यावहारिक मार्गदर्शनपरक फ़ीचर**–ऐसे फ़ीचर की परिधि में गृह-विज्ञान, फैशन, स्वास्थ्य, शिक्षा, साज-सज्ज़ा, सौंदर्य-प्रसाधन, टिकट-संग्रहण आदि विषयों को समाविष्ट किया जाता है। वस्तुत: ये फ़ीचर विषय की विशिष्टता और उसकी क्रिया-विधि पर प्रकाश डालते हैं।
17. **चित्रपरक फ़ीचर**–इसमें चित्रों का चयन इस ढंग से किया जाता है कि वे पूरी कहानी कह देते हैं। जब चित्र बोलने लगते हैं और पूरी कहानी कहते हैं तब उनका प्रभाव अवर्णनीय होता है।
18. **हास्य-व्यंग्य-परक फ़ीचर**–वर्तमान समय में ऐसे फ़ीचर बहुत लोकप्रिय होते जा रहे हैं। हास्य-व्यंग्परक फ़ीचर में घटनाओं की ओर देखने का एक व्यापक दृष्टिकोण होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. फ़ीचर-लेखकों ने प्राय: सादगीपूर्ण लेखन पर विशेष बल नहीं दिया है।
8. फ़ीचर की शैली में सामान्यत: प्रचलित शब्दों का ही उपयोग किया जाना चाहिए।
9. किसी स्थान एवं अंचल विशेष को आधार बनाकर लिखे गए फ़ीचर स्थानीय एवं अंचलपरक फीचर कहलाते हैं।

14.2 सारांश (Summary)

- फीचर एक अत्याधुनिक लेखन विधा है जो पत्रकारिता के क्षेत्र में विकसित, पल्लवित और समृद्ध हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी-पत्रकारिता में रूपक-लेखन की नई विधा का विकास हुआ। मानवीय अभिरुचि की मनोरंजक सामग्री को अब सचित्र रूप में प्रकाशित करके आम जनता तक प्रस्तुत किया जाता है।
- इंटरव्यू साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान, कला आदि किसी भी क्षेत्र की उन विशिष्ट विख्यात, अनुभवी, मान्य विभूतियों ओर महान व्यक्तियों का लिया जाता है जिनके विचारों को जानने की जनसाधारण के हृदय में सहज जिज्ञासा होती है। 'इंटरव्यू' शब्द से आज एक ऐसी विशिष्ट कोटि की साहित्यिक विधा का बोध होता है, जिसमें एक जिज्ञासु व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में विद्यमान अन्य किसी व्यक्ति विशेषकर प्रख्यात और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से प्रत्यक्ष मिलकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करता है।
- फ़ीचर ऐसा रचनात्मक तथा कुछ सीमा तक स्वानुभूतिमूलक लेख है जिसका निर्माण किसी घटना, प्रकरण, स्थिति, विषय अथवा जीवन के किसी पक्ष के संबंध में पाठकों को मनोरंजन करने, सूचना देने तथा जनता को कार्य करने का व्यावहारिक निर्देश प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया हो। इस प्रकार रूपक अकस्मात् आने वाले समाचार के बाहर किसी भी खंड, चित्रावली या समाचार-वृत्त का श्रेणीगत नाम है।
- फ़ीचर का स्वरूप विवरणात्मक होता है। इसलिए कुछ हद तक फ़ीचर समाचार और लेख के समान ही होता है। अन्य विवरणात्मक लेखन की भाँति फ़ीचर के भी तीन प्रमुख अंग होते हैं–1. प्रस्तावना, 2. विवरण और 3. उपसंहार।

14.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **साक्षात्कार**–किसी प्रतिष्ठित, मान्य व प्रसिद्ध हस्ती से उसके विचार, दृष्टिकोण आदि जानना
2. **लोकप्रिय**–जनता के बीच प्रसिद्धि पाना, मशहूर होना

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? साक्षात्कार की परिभाषा दें।
2. इंटरव्यू (साक्षात्कार) साहित्य के उद्‌भव एवं विकास की विवेचना करें।
3. फ़ीचर क्या है? फ़ीचर की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
4. टिप्पणी लिखें।
   (क) फ़ीचर और समाचार (ख) फ़ीचर एवं लेख
5. फ़ीचर लेखन में अपेक्षित तत्वों का वर्णन करें।
6. फ़ीचर लेखन के प्रकारों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. परिचयात्मक	2. ऐतिहासिक	3. आत्मा
4. (घ)	5. (ख)	5. (ग)
7. असत्य	8. सत्य	9. सत्य

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—*शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—*वार्ष्णेय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।*

नोट

इकाई–15 : स्वातंत्र्योत्तर गद्य-साहित्य का विकास

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
15.1 स्वातंत्र्योत्तर गद्य-साहित्य तथा इसका विकास
15.1.1 नाटक
15.1.2 एकांकी नाटक
15.1.3 उपन्यास
15.1.4 ऐतिहासिक उपन्यास
15.1.5 कहानी
15.2 सारांश (Summary)
15.3 शब्दकोश (Keywords)
15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नाटक एवं एकांकी नाटक के विषय में जानने में।
- उपन्यास के विषय में जानने में।
- कहानी के विषय में जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

छायावादोत्तर युग हिंदी-गद्य की सर्वांगीण उन्नति का युग है। इस युग में भारत ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीनता की सुखद एवं स्फूर्तिदायक सांस ली। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि आलोच्य युग में विभिन्न गद्य-विधाओं ने अभूतपूर्व तथा बहुमुखी प्रगति की है। इस युग के लेखकों ने कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि क्षेत्रों में नये आयामों का उद्घाटन करने के साथ-साथ अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए रिपोर्ताज और इंटरव्यू सदृश सर्वथा नवीन साहित्य-रूपों का प्रश्रय लिया। इसके साथ ही स्वाधीनता प्राप्त करने से पूर्व जहाँ साहित्यकारों ने राष्ट्रीय चेतना पर बल दिया, वहाँ स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में नवनिर्माण पर बल दिया गया। इस युग में गद्य ही जन-जीवन की अभिव्यक्ति का सर्वप्रमुख साधन रहा। फलत: गद्य-साहित्य का सीमातीत विस्तार हुआ। कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा नये प्रतीक, उपमान अथवा बिंब ही प्रयुक्त नहीं हुए, अपितु फ्लैशबैक, चेतना-प्रवाह आदि शैलियों का भी प्रयोग किया गया। कथानक को गौण मानने तथा पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने की प्रवृत्तियों के फलस्वरूप वर्तमान लेखक मानव-मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनों

नोट

को अभिव्यक्त करने में सफल हो सके हैं। समग्रत: इस युग का गद्य-साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध है।

15.1 स्वातंत्र्योत्तर गद्य-साहित्य तथा इसका विकास

15.1.1 नाटक

आलोच्य काल में हिंदी-नाटक रंगमंच और जीवन के यथार्थ से जुड़कर नयी दिशा की ओर उन्मुख हुआ। यद्यपि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी यह प्रयास किया था, पर गद्य के उस प्रारंभिक विकास-काल में उनके नाटकों से बड़ी अपेक्षाएँ नहीं की जानी चाहिए। भारतेंदु के बाद प्रसाद को दिशा-प्रवर्तक नाटककार स्वीकार किया जाता है, किंतु उनके नाटकों को मंच नहीं मिला। फिर भी अपनी सांस्कृतिक चेतना, काव्यात्मक परिवेश, नाटकीय संघर्ष की सूझ और चरित्र-सृजन की अपूर्व क्षमता के कारण उनके नाटक अद्वितीय बन गये हैं। अपने रोमांटिक दृष्टिकोण के कारण इतिहास के अतीत के साथ समसामयिक जीवन को आदर्श के साथ जोड़कर उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया, किंतु रोमैंटिक दृष्टि की खामियाँ भी उनके साथ लिपटी रहीं। उनके समसामयिक नाटककार (लक्ष्मीनारायण मिश्र-सहित) भी रूमानियत से छूट नहीं सके। वस्तुत: **उपेंद्रनाथ अश्क** पहले नाटककार हैं जिन्होंने हिंदी नाटक को रोमांस के कठघरे से निकालकर किसी सीमा तक आधुनिक भावबोध के साथ जोड़ा। यद्यपि उनका 'जय-पराजय' (1937) प्रसाद की प्रभाव-छाया से बहिर्गत नहीं होता, फिर भी 'छठा बेटा' (1940) उस प्रभाव से मुक्त है। इसमें पिता-पुत्र के परिवर्तित संबंधों को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। अवकाश-प्राप्त पिता को छह बेटों में से कोई भी अपने पास रखने को तैयार नहीं है। जिन पुराने मूल्यों पर पिता-पुत्र का संबंध आधारित रहा करता था, वे यहाँ गायब हैं। यदि कोई संबंध शेष है तो आर्थिक संबंध। स्वप्न के माध्यम से जिस आर्थिक संबंध की स्थापना की जाती है, वह स्वयं में एक छलना है। हाँ, स्वप्न-नाटक होने के नाते छाया-सृजन का फिल्मी प्रयोग नाटकीय शिल्प की दृष्टि से श्लाघ्य है। उनके दो अन्य नाटक—'कैद' (1945) और 'उड़ान' (1946)—एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रतीक का संस्पर्श दोनों में है, पर पहले का प्रतीक अधिक सटीक और व्यापक है। 'कैद' में सामाजिक रूढ़ियों और यंत्रणाओं की कैद में घुटती हुई नारी का चित्र है, तो 'उड़ान' में रूढ़ियों से बाहर निकलकर मुक्त हवा से सांस लेती हुई नारी चित्रित है। 'अलग-अलग रास्ते' में भी एक नारी समझौतावादी है, तो दूसरी विद्रोहिणी। इसमें मध्यवर्गीय परिवार की स्थूल समस्याओं का चित्रण हुआ है। 'भंवर' (1950) की थीम नाटकीय संभावनाओं से युक्त है, किंतु लगता है कि अश्क संभावनाओं को छू सकते हैं; उनके भीतर घुसने में उन्हें भय लगता है। इसमें नायिका प्रतिभा को जिस मानसिक भँवर में डाला गया है, वह आधुनिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है, पर उस भँवर में न तो व्याकुलतापूर्ण आवर्त है और न गहराई।

'अंजो दीदी' (1954) कदाचित् अश्क की सर्वाधिक प्रौढ़ नाटकीय कृति है। इसकी केंद्रीय पात्र है—अंजो दीदी। वह बेहद अनुशासनप्रिय है, किंतु उसका अनुशासन यंत्रीकरण का पर्याय हो गया है। परिवार के प्रत्येक प्राणी के लिए उसके यांत्रिक ढाँचे में ढलना अनिवार्य है। हर चीज का समय निर्धारित है—सुबह उठने का, नाश्ते का, भोजन का, आराम का, सोने का। हर चीज़ का एक सलीका है—उठने-बैठने का, नमस्कार-प्रणाम का, खेल-पढ़ाई का। कहीं पर भी उसे प्रसाद असह्य है। दीदी के साँचे में वकील साहब ढल नहीं पाते, उन्हें आत्महत्या करनी पड़ती है। अंजो का भाई श्रीपत अंजो-विरोधी चरित्र है यानी वह अंजो की यांत्रिकता का विरोध करता है। वस्तुत: मशीनीकरण के कारण टूटते हुए व्यक्तियों का चित्रण आधुनिक जीवन का अत्यंत खतरनाक रोग है। किंतु उसे तोड़ने के लिए किसी अन्य पात्र की सर्जना सरलीकरण की प्रवृत्ति की सूचक है जिसकी सराहना नहीं की जा सकती। 'अंधी गली' और 'पैंतरे' अश्क के अन्य नाटक हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि उन्होंने हिंदी-नाटक को मंच और आधुनिक यथार्थ के साथ जोड़ा है। मंच के प्रति सतर्क होने के कारण उन्हें अपनी भाषा को रोमैंटिक अभिव्यक्तियों से बचाकर यथार्थसापेक्ष और कार्यक्षम बनाने की आवश्यकता हुई है, पर उनकी भाषा गहन मानवीय स्थितियों को रूपायित नहीं कर पाती। वह स्थिति को स्थूल स्तर पर ही नाटकीय बना पाती हैं;

नोट

तनावों के भीतर के तनावों को देख पाना उसकी शक्ति के बाहर है। इसी प्रकार कथा-तत्व की प्रमुखता भी अश्क को गहराई में नहीं पैठने देती।

विष्णु प्रभाकर–कृत 'डॉक्टर' भी इस अवधि का बहुचर्चित नाटक है–इसके पूर्व वे एक अन्य नाटक 'समाधि' की रचना कर चुके थे। 'डॉक्टर' मनोवैज्ञनिक सामाजिक नाटक है, जिसमें डॉ. अनीला के संदर्भ में भावना और नैतिक कर्त्तव्य का संघर्ष दिखाया है। उसका अंतर्द्वंद्व ऑपरेशन करते समय भी चलता रहता है, जो विश्वसनीय नहीं बन पाता। यद्यपि द्वंद्व और आंतरिक संघर्ष की संभावनाओं का पूरा इस्तेमाल लेखक नहीं कर सका है, पर अंत में चलकर तनाव अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर आधुनिकता से जुड़ जाता है और यही इस नाटक की उपलब्धि है।

मंचीय सार्थकता और नयी जटिल जीवनानुभूतियों की नाटकीय रचनात्मकता **जगदीशचंद्र माथुर के** 'कोणार्क' में लक्षित होती है। अश्क ने अपने नाटकों में सामान्यत: दो विरोधी प्रकृतिवाले पात्रों की सृष्टि की है, जो पुराना परिचित नुस्खा है पर 'कोणार्क' में इस तरह का कोई सरलीकरण नहीं है। विभिन्न प्रकार के पात्रों, घटनाओं आदि को इसमें इस प्रकार संयोजित किया गया है कि वे विशिष्ट नाटकीय स्थितियों में संश्लिष्ट हो उठते हैं। इसमें संघर्ष के कई आयाम उभरते हैं–प्रभुसत्ता और गरीब शिल्पी के बीच का संघर्ष! वस्तुत: कोणार्क का निर्माण एक गहरे अंतर्द्वंद्व का परिणाम है। मनोविज्ञान की शब्दावली में यह एक प्रकार का उदात्तीकरण है। शिल्पी विष्णु की भाषा रचनात्मकता का स्तर नहीं प्राप्त करती, फिर भी उनके बाद के नाटकों में भावी संभावनाएँ दिखायी पड़ती हैं। 'सूर्यमुख' महाभारत युद्ध के बाद द्वारिका के वातावरण पर आधारित पौराणिक नाटक है जो रचना-शिल्प की दृष्टि से भारती के 'अंधा युग' से सीधे प्रभावित है। 'कलंकी' में व्यक्ति-स्वातंत्र्य के प्रश्न को उभारने के लिए एक कल्पित कथानक में कल्कि-अवतार के मिथ का प्रयोग किया गया है। 'मिस्टर अभिमन्यु' और 'करफ्यू' आधुनिक जीवन की संवेदना को लेकर लिखे गये विचारोत्तेजक नाटक हैं जो रंगमंच पर अपनी सार्थकता प्रमाणित कर चुके हैं।

मोहन राकेश–कृत 'आषाढ़ का एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963) और आधे-अधूरे (1969) गहन मानवीय ट्रेजेडी को नाटकीय स्थितियों में रचनात्मक ढंग से आँकनेवाले नाटक हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' महाकवि कालिदास के परिवेश, रचना-प्रक्रिया, प्रेरणा-स्रोत और उनके चुक जाने से संबद्ध है। यह दो प्रकार के संघर्षों पर आधारित है–परिवेशमूलक संघर्ष और आंतरिक संघर्ष। आषाढ़ के एक दिन इस संघर्ष का आरंभ हुआ और आषाढ़ के एक ही दिन वह समाप्त हुआ। इन दो दिनों के दीर्घ अंतराल को कालिदास और मल्लिका की पीड़ा ने भरा है–कालिदास में अहं की पीड़ा है, तो मल्लिका में रचनात्मक उत्सर्ग की! कालिदास को रचना की प्रेरणा अपने गाँव के परिवेश और वहाँ की प्रकृति से मिली; और सबसे अधिक प्रभावी स्रोत रही मल्लिका। राजाश्रय प्राप्त होने पर कालिदास की प्रतिभा सूखने लगी। किंतु प्रश्न यह है कि क्या यह वही कालिदास हैं जिसका बिंब हमारे मन में विद्यमान है? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या रचना में उसी कालिदास का अवतरित होना जरूरी है? कालिदास के पूर्वनिश्चित बिंब और इस नवनिर्मित बिंब में जो विसादृश्य है, उसके फलस्वरूप उसके चरित्र में अंतर्विरोध दिखायी पड़ने लगता है। इतना महान साहित्यकार, जिसे भारतीय संस्कृति और दर्शन का चितेरा माना जाता है, व्यक्तिगत जीवन में कोरा रोमैंटिक, कायर और सेंटीमेंटल होगा, यह विश्वसनीय नहीं लगता। कालिदास की रचनाओं से भी यह सिद्ध नहीं होता कि वह इस सीमा तक कायर रहा होगा। जो मल्लिका उसे निर्मित करने में स्वयं टूट गयी, उसी को छोड़कर उसने उसकी भावना को व्यर्थ बना दिया। कालिदास और मल्लिका की भावनामयता के विरुद्ध विलोम और मल्लिका की माँ रोमांस-विरोधी पात्र है। विलोम का व्यक्तित्त्व तो इतना जबरदस्त है कि वह कालिदास को विदूषकत्व की स्थिति में ला देता है और इसके बाद वह और भी अनपहचाना लगने लगता है। इसका दायित्व लेखक के अपने विजन पर है। लेकिन जिस कालिदास को उसने अवतरित किया है, वह अनेक विरोधी संघर्षों और लयों के फलस्वरूप नाटकीय गत्यात्मकता से पूर्ण है। एक परिवेश से कटकर दूसरे में न जुड़ पाना गहन आंतरिक द्वंद्व का परिचायक है। स्वयं कालिदास के अपने परिवेश में, जिससे वह जुड़ा हुआ है, अंतर्मन्थन का अवकाश कम नहीं है। विलोम और मल्लिका की माँ ने कालिदास और मल्लिका के अंतर्द्वंद्वों को धार दी है। फलस्वरूप नाटक में गहन प्रवेगमयता और तीव्रता आ गयी है। खेद है कि इस प्रवेग और तीव्रता को एक रोमानी दु:खात्मकता (एगोनी) तक पहुँचाकर समाप्त कर दिया गया है।

नोट

'लहरों के राजहंस' (1963) राकेश का दूसरा नाटक है। इसमें राग-विराग और श्रेय-प्रेय के द्वंद्व को उभारकर चिरंतन आध्यात्मिक प्रश्न को नये संदर्भ में उठाया गया है। इसका कथानक अश्वघोष के 'सौंदरानंद' पर आधारित है। गौतम बुद्ध का सौतेला भाई कपिलवस्तु का राजकुमार नंद अपनी अनिंद्य सुंदरी पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्त है। उसका समर्पण अतिशय अहं-विरहित और असाधारण रूप से विनीत है—इतना विनीत कि सुंदरी को सोचना पड़ता है कि काश वह किंचित् दुर्विनीत् होता! पर बुद्ध के प्रति, यानी आध्यात्मिकता के प्रति भी उसका मन आकर्षित है। नाटकीय संघर्ष की स्थितियाँ इन दो व्यक्तियों और दो विरोधी जीवन-दर्शनों की टकराहट से उत्पन्न होती हैं। उसकी पत्नी सुंदरी नारी-सौंदर्य को आकर्षण का चरमबिंदु मानती है, किंतु जब एक दिन नंद ने भी बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली तब उसका मुंडित मस्तक देखकर इस सौंदर्यगर्विता का अहं पूर्णतः खंडित हो गया। जहाँ 'आषाढ़ का एक दिन' अपनी भावुकतापूर्ण तीव्रता में समाप्त होता है, वहाँ 'लहरों के राजहंस' में नंद आधुनिक भावबोध का प्रतिनिधित्व करता है। संशयशील, अकेली और अनिर्णीत स्थिति में पड़ा हुआ भी वह एक किरण की तलाश में है। 'आषाढ़ का एक दिन' की भावुकता से मुक्त होने का यह प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है।

'आधे-अधूरे' राकेश का तीसरा नाटक है, जो उनकी विकास-यात्रा की अगली मंजिल का सूचक है। इसमें इतिहास के आधार को छोड़कर समाज की विसंगतियों से सीधे जूझने का प्रयास है। वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडंबनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा-अधूरा रहकर अपने-अपने ढंग का संत्रास भोगता है। नाटककार ने संत्रास के मूल कारणों की खोज की है। यह विडंबना आर्थिक-मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की है। प्रत्येक पात्र की नियति वृत्तात्मक है—सभी लोग पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण से निकट-दूर आते हुए बाहर जाकर भी वापस लौटने की नियति से बाध्य हैं। इस वृत्तात्मकता के फलस्वरूप नाटक आद्यंत तनावपूर्ण बना रहा है। यह तनाव राकेश के पिछले नाटकों के तनावों से भिन्न है। पिछले दोनों नाटक बहुत-कुछ रोमैंटिक हो गये हैं, किंतु इसमें रोमांस की छुवन भी नहीं है। फिर भी, अपने आंतरिक तनावों के कारण सहृदय इसके साथ एकतान बना रहता है। इसकी भाषा और कथोपकथन में अद्भुत संयम है, जो यथार्थ को नाटकीय ढंग से वहन करने में पूर्ण समर्थ है। संवादों की लयात्मकता में बहुत वैविध्य नहीं है; यद्यपि लड़के की वाणी में काट खानेवाला पैना व्यंग्य है। भाषा, लय और नाटकीय संयम तनाव को गहराते जाते हैं। अंत में अपने समापन के साथ, छाया-प्रकाश के माध्यम से, सारा वातावरण संवेदना से आप्लावित हो उठता है।

छायावादोत्तर काल के प्रमुख नाटककारों की उपलब्धियों के उपर्युक्त सर्वेक्षण के अंतर 'अंधा-युग' के अतिरिक्त विरचित **गीतिनाट्यों** पर विचार कर लेना भी उचित होगा। सुमित्रानंदन पंत के गीतिनाट्य 'रजतशिखर' 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' में संगृहीत हैं, जिनमें सांस्कृतिक और कलात्मक धरातल तो है, पर वे न गीति बन सके है न नाट्य। सेठ गोविंददास-कृत 'स्नेह या स्वर्ग' (1946) यूनान के एक पौराणिक आख्यान पर आधारित गीतिनाटक है जिसमें नारी के जागरुक व्यक्तित्व का भारतीय शैली में चित्रांकन हुआ है। गिरिजाकुमार माथुर का 'कल्पांतर' भी सैद्धांतिक और सूचनापरक होने के कारण रचनात्मक नहीं बन सका। 'सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य-नाटक' में सिद्धनाथ कुमार के पाँच गीतिनाट्य संगृहीत हैं—सृष्टि की साँझ, लौह देवता, संघर्ष, विकलांगों का देश और बादलों का शाप। इनमें समसामयिक समस्याएँ गृहीत हैं, किंतु गहन आंतरिक उद्वेलन के अभाव के फलस्वरूप ये गीतिनाटक फार्मूलाबद्ध होकर सरलीकरण की ओर उन्मुख रहे हैं। दुष्यंतकुमार के गीतिनाटक 'एक कंठ विषपायी' (1963) की कथा दक्ष-यज्ञ के समय पति के अपमान को देखकर सती के दग्ध होने पर आधारित है। सती-दाह के समाचार से शंकर देवताओं से युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं, किंतु विष्णु के बीच-बचाव, स्थूल गांधीवाद, नैतिकता आदि के कारण नाटकीय संघर्षों के लिए इसमें विशेष अवकाश नहीं रह पाया। भाषा की सपाटता न तो नाटकीय बिंबों की सृष्टि कर पायी है और न वर्णनात्मकता से आगे बढ़कर क्रियात्मकता को उभार सकी है। कथानक का संयोजन इस ढंग से किया गया है कि मानवीय संघर्षशील स्थितियों के लिए अवकाश ही नहीं रह गया है।

अन्य नाटककार: छायावादोत्तर काल के अन्य नाटककारों में सेठ गोविंददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण 'प्रेमी', गोविंदवल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' प्रभृति पुराने खेमे के नाटककारों का उल्लेख

अपेक्षित है। **सेठ गोविंददास** ने 'कर्ण' (1942) 'शशिगुप्त' (1942) आदि पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों और 'हिंसा और अहिंसा' (1940), संतोष कहाँ (1941) आदि सामाजिक नाटकों की रचना की है जिनमें यथार्थ का तीखापन उतना नहीं है, जितना कि आदर्श का स्वारस्य है। **लक्ष्मीनारायण मिश्र** द्वारा रचित 'अपराजित' और 'चक्रव्यूह' पौराणिक नाटकों की परंपरा में महत्त्वपूर्ण है जिनमें मनोविज्ञान के साथ ही भारतीय जीवन-दृष्टि के प्रति अविचल श्रद्धा भी मिलती है। **हरिकृष्ण 'प्रेमी'** ने मुख्यत: मध्यकालीन ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर नाट्यरचना की है जिसमें 'आहुति' (1940), 'स्वप्नभंग' (1940), 'विषपान' (1945), 'साँपों की सृष्टि', 'उद्धार' आदि उल्लेखनीय हैं। 'अमृत पुत्री' (1972) उनका नवीनतम ऐतिहासिक नाटक है जिसमें राष्ट्रीय एकता पर बल देने के निमित्त सिकंदर के आक्रमण-काल के भारत का चित्रण हुआ है। 'बंधन' (1940) और 'छाया' (1941) प्रेमी जी के प्रमुख समस्यामूलक सामाजिक नाटक हैं जिनमें जीवन के कटुता का चित्रण होने पर भी परंपरावादी ढंग से समाधान खोजने पर अधिक बल रहा है।

गोविंदवल्लभ पंत ने आलोच्य युग में दो उल्लेखनीय नाटकों की रचना की–'सुहाग बिंदी' (1940) उनका प्रसिद्ध सामाजिक नाटक है और 'ययाति' (1947) की रचना पौराणिक कथा-संदर्भ में हुई है। स्वच्छतावादी रचना-शिल्प के प्रभावस्वरूप भावुकता, कल्पना और कवित्वपूर्ण शैली उनके नाटकों की मुख्य विशेषताएँ रही है; किंतु इन्हीं के कारण जीवन की विसंगतियों की सही पकड़ भी उनके द्वारा संभव नहीं हो सकी है। **उदयशंकर भट्ट** के नाटकों में 'शक विजय' (1953) 'क्रांतिकारी' (1954), 'नया समाज' (1955) और 'पार्वती' (1960) मुख्य हैं जिनमें बौद्धिकता, मनोविज्ञान और यथार्थमूलक व्यंग्य के साथ ही आदर्शवादी तथा स्वच्छतावादी नाट्यशैली को भी अनेकश: परिलक्षित किया जा सकता है। **जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'** के नाटकों में भी लगभग इन्हीं प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है–'समर्पण' (1950) बुद्धिवाद से प्रेरित समस्यामूलक सामाजिक नाटक है, तो 'गौतम नंद' (1952) में ऐतिहासिक घटना-संदर्भ को रोमानी कल्पना से अलंकृत करके प्रस्तुत किया गया है जिसके फलस्वरूप नाटकीय द्वंद्व की तीव्रता अपने सही रूप में नहीं उभर पायी है।

छायावादोत्तर काल की अन्य नाट्यकृतियों को स्थूल रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है– 1. स्वतंत्र भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार से संबद्ध नाटक, 2. पीढ़ीगत संघर्षों का नैतिक मूल्यों से संबद्ध नाटक, 3. चीनी आक्रमण से संबद्ध नाटक। प्रथम वर्ग के अंतर्गत **चंद्रगुप्त विद्यालंकार** के 'न्याय की रात' और **विनोद रस्तोगी** के 'आजादी के बाद' तथा 'नया हाथ' नाटकों की गणना की जा सकती है। 'न्याय की रात' समाज को विघटित करने वाले भ्रष्टाचारियों और स्वयं समाज के द्वंद्व पर आधारित है, इसीलिए इसमें संघर्ष की स्थितियाँ अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय बन पड़ी हैं। पर बाह्य व्यापारों की बहुलता इसके निर्माण पक्ष को दुर्बल बना देती है। 'आजादी के बाद' का नायक आर्थिक-सामाजिक वैषम्य को दूर करने और शोषण से मुक्ति पाने के लिए कटिबद्ध है। 'नया हाथ' का नायक भी रूढ़ नैतिकता और झूठी मर्यादा का विरोध करता है। दोनों नाटकों पर गांधीवादी जीवन-दर्शन का प्रभाव है, किंतु बाह्य संघर्षों और विचारों की इतिवृत्तात्मक बहुलता के कारण न तो इनमें नाटकीय स्तर की गहनता मिलती है और न ये आधुनिक बोध से संपृक्त हो पाये हैं। दूसरे वर्ग के नाटकों में **नरेश मेहता** के 'सुबह के घंटे' और 'खंडित यात्राएँ' शीर्षक नाटकों तथा **मन्नू भंडारी** के 'बिना दीवार का घर' का उल्लेख किया जा सकता है। 'खंडित यात्राएँ' में पुरानी पीढ़ी की यातना जरूर उभरती है, पर उसकी आंतरिक संघटना बेहद कमजोर है। **मन्नू भंडारी** की 'बिना दीवारों का घर' में पति-पत्नी के बीच जो तनाव पैदा हुआ है, उसका आधार पुष्ट और विश्वसनीय है क्योंकि आज के युग में पढ़ी-लिखी पत्नी के प्रति पति का ईर्ष्यालु हो जाना स्वाभाविक है। तीसरे वर्ग की रचनाओं में **शिवप्रसाद सिंह** ने 'घाटियाँ गूँजती हैं' में चीन-भारत-युद्ध का व्यापक फलक लिया है। इसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर इस परिवेश के अलग-अलग ढंग से प्रभाव के साथ ही उनकी क्रियाशीलता भी चित्रित है, किंतु आदर्शवादी दृष्टिकोण और टिप्पणियों के कारण नाटककार की वैचारिकता आंतरिकता में नहीं बदल पायी। **ज्ञानदेव अग्निहोत्री** ने 'नेफा की एक शाम' में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में आदिवासियों के संघटन और गोरिल्ला-युद्ध-पद्धति की सार्थकता सिद्ध की है, किंतु पिटे आदर्शों की बहुलता और परिवेश की मुखरता के कारण यह नाटक भी सामान्य स्तर से ऊपर नहीं उठ सका।

आधुनिकता की प्रक्रिया को महत्त्व देनेवाले रंग-नाटकों में विपिनकुमार के 'तीन अपाहिज' (1963), ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'शुतुरमुर्ग' (1968), गिरिराज किशोर के 'नरमेघ', सुरेंद्र वर्मा के 'द्रौपदी' (1970) और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'बकरी' का उल्लेख भी आवश्यक है। इनमें वर्तमान जीवन में व्याप्त अनास्था, उद्देश्यहीनता और विसंगतियों को अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है जिसके लिए इन नाटककारों ने यथार्थ-बोध और व्यंग्य को बड़े ही सहज ढंग से अपनाया है।

हिंदी-साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का विकास मंद गति से हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं; एक तो मंच का अभाव और दूसरा, स्वयं इस विधा का अपना स्वरूप। दूसरे तथ्य को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। नाटक का सीधा संबंध समूह, जाति और देश से होता है। यदि आज की बहुत-सी कहानियों, उपन्यासों और कविताओं का अनुवाद कर दिया जाए तो वे कथ्य और रूप-विन्यास में विदेशी लगने लगेंगे। किंतु एक भी नाटक ऐसा नहीं मिलेगा जिसके संबंध में यह कहा जा सकें। अन्य विधाओं को पाठक की उतनी चिंता नहीं रहती, पर नाटककार के सामने सामाजिक दायित्व बराबर बना रहता है। फलस्वरूप नाटक अपनी परंपरा से विच्छिन्न नहीं हो सका और हो भी नहीं सकता। इसलिए अपनी मंद प्रगति के बावजूद नाटक के विकास की काफी संभावनाएँ हैं। जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती और मोहन राकेश के नाटकों ने जहां हिंदी-नाट्य साहित्य को नयी दिशाएँ दी हैं, वहाँ अनेक भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों के अनुवादों का भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योग है।

15.1.2 एकांकी नाटक

छायावाद-युग तक हिंदी-एकांकी दो सीमांत पार कर चुका था। 1936 ई. में दिल्ली में और 1938 ई. में लखनऊ में आकाशवाणी के अस्तित्व में आने के फलस्वरूप पहले उर्दू-लेखकों और फिर 1940 ई. के लगभग हिंदी-लेखकों को भी रेडियो पर एकांकियों के प्रसारण का अवसर प्राप्त हुआ। इसके पूर्व 'हंस' के एकांकी नाटक-विशेषांक (मई, 1938) को लेकर एकांकी के संबंध में अच्छा-खासा विवाद उठ खड़ा हुआ था। इसमें हिंदी के आठ एकांकी प्रकाशित हुए थे। इसी अंक में चंद्रगुप्त विद्यालंकार का एक विस्तृत पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने साहित्य में एकांकी का कोई स्थान स्वीकार नहीं किया—"मेरी स्थापना यह है कि एकांकी नाटक की कोई निश्चित और निजी (जो और किसी की न हो) टेकनीक न तो अभी तक बन पायी है और न बन सकती है।" इसी अंक में उपेंद्रनाथ अश्क ने एकांकी को नाटक, कहानी और संभाषण से पृथक् एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकृति दी। किंतु जैनेंद्र ने इसके विरुद्ध अपना मंतव्य करते हुए लिखा—"भारत में एकांकी परिस्थितियों की सहज उपज नहीं है—विलायत वाले अपनी जानें। उनके हालात यहाँ से जुदा हैं। ··· किसी बाह्य रूप को, जब तक वह अंत:प्रेरित न हो, खींच लाने का आग्रह जरूरी नहीं है।" इसे उन्होंने अनुकरण के रूप में ओढ़ा हुआ बताया, जबकि 'हंस' के संपादक ने उनकी बातों का खंडन किया। 1940 ई. में इस विवाद को 'वीणा' में पुन: उठाया गया, जिससे स्पष्ट है कि तब तक हिंदी-एकांकी अपने अस्तित्व के लिए ही संघर्ष करता रहा था। किंतु इसके बाद उसे स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यह उल्लेखनीय है कि भुवनेश्वर, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, अश्क, सेठ गोविंददास, जगदीशचंद्र माथुर आदि एकांकी-लेखन का समारम्भ प्राय: 1935-36 के लगभग कर चुके थे, पर इनमें से अधिकांश के मुख्य एकांकी-संकलन 1940 ई. के बाद ही प्रकाशित हुए।

छायावादोत्तर काल में **भुवनेश्वर** के कुछ ही एकांकी प्रकाशित हुए, जैसे—तांबे के कीड़े, आजादी की नींद, सिकंदर आदि। किंतु **रामकुमार वर्मा** के अधिकांश एकांकी-संग्रह—रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, सप्तकिरण, रूपरंग, रजत रश्मि, दीपदान, ऋतुराज, रिमझिम, इंद्रधनुष, पांचजन्य, कौमुदी महोत्सव, मयूरपंख, जुही के फूल आदि—1940 ई. के बाद के प्रकाशन हैं। वर्माजी की एकांकियों का मूल स्वर आदर्शवादी है। उनकी काव्यात्मक अलंकृत शैली के कारण आदर्शवाद और भी मुकम्मल हो गया है। मोटे तौर पर उनके एकांकियों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय दंपत्ति के बीच उठनेवाली प्रेम-सेक्स की समस्याओं से संबद्ध एकांकी और ऐतिहासिक एकांकी। दोनों की विषय वस्तु दो हैं, पर परिणति एक ही है—आदर्श की स्थापना। इस

नोट

आदर्शवाद को छायावादी प्रगीतों की टेक समझना चाहिए। छायावादी स्वातंत्र्य के और पीछे जाकर वर्मा जी नारी को मध्यवर्गीय आदर्शों की जंजीरों में बाँधने के पक्षपाती हैं। 'एक्ट्रेस' की प्रभात कुमारी, 'परीक्षा' की अल्पवयस्का पत्नी, '18 जुलाई की शाम' की शिक्षिता उषा, 'रेशमी टाई' की ललिता आदि पति के सम्मान तथा कथित् भारतीय आदर्श की रक्षा करती दिखायी पड़ती हैं। नवीन शिक्षा और परिवेश के कारण नारी का अपना व्यक्तित्व बनता-बनता भी पुरातनता के केंचुल को न छोड़ पाने के कारण नहीं बन पाता। उनके ऐतिहासिक एकांकियों में भी त्याग, उदारता, क्षमा, बलिदान, सेवा आदि को स्थूल ढंग से उभारा गया है। इस आदर्शवाद पर गांधीवाद का प्रभाव भी माना जा सकता है, किंतु गांधी जी का आदर्श जिस राष्ट्रीय संदर्भ को समेटे हुए है, उससे वर्मा जी के एकांकी असंपृक्त हैं। स्पष्ट है कि सपाट आदर्शवादिता की टेकनीक भी सपाट होगी। आरंभ, कुतूहल, संकलन-त्रय, चरमोत्कर्ष आदि को वर्मा जी ने अति सामान्य (ओवर सिंपलीफाइड) ढंग से परिगृहीत किया है। आदर्शवाद का विस्तार और सपाट विश्लेषण उनके एकांकियों की गत्वरता, सघनता, क्षिप्रता और नाटकीयता के आड़े आते हैं। एकांकी नाटकों के क्षेत्र में वर्मा जी का ऐतिहासिक महत्त्व है, स्थायी महत्त्व नहीं।

उदयशंकर भट्ट ने 1938 ई. के लगभग एकांकी-लेखन आरंभ किया था, यों उनका प्रथम एकांकी-संग्रह 'अभिनव एकांकी' 1940 में प्रकाशित हुआ था। 'स्त्री का हृदय', 'चार एकांकी', 'समस्या का अंत', 'धूमशिखा', 'अंधकार और प्रकाश', 'आदिम युग', 'पर्दे के पीछे', 'आज का आदमी', 'सात प्रहसन' आदि उनके अन्य एकांकी-संकलन हैं। भट्ट जी ने अपने एकांकियों को नवजीवन की ज्वलंत समस्याओं से जोड़ने की कोशिश की है। उनकी दृष्टि में नाटकों में रस-संचार के अतिरिक्त किसी सुनिश्चित सामाजिक उद्देश्य का रहना बहुत आवश्यक है उच्च और मध्यवर्ग की विडंबनाओं पर गहरी चोट करना उनकी विशेषता है। 'नेता', 'उन्नीस और पैंतीस', 'वर निर्वाचन' आदि एकांकियों में मध्यवर्ग के नकली चेहरे को उतार फेंकने में उन्होंने बड़े कौशल से काम लिया है। 'नेता' में नेतृवर्ग की पर-उपदेश-कुशलता, 'उन्नीस और पैंतीस' में आज की शिक्षा-पद्धति के खोखलेपन और 'बड़े आदमी की मृत्यु' में तथाकथित बड़े लोगों की हृदयहीनता, कठोरता तथा अमानवीयता को उघाड़ा गया है। 'पर्दे के पीछे' अधिकांश एकांकियों की विषयवस्तु यह है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी लोग पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से चिपके हुए हैं और भारतीय मूल्यों के प्रति उनकी अनास्था बनी हुई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भट्ट जी सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद में विश्वास रखते हैं, वस्तुत: उनकी आस्था नये-पुराने मूल्यों के संतुलन में है। 'आदिम युग', 'प्रथम विवाह', 'वैवस्वत मनु' आदि उनके पौराणिक एकांकी हैं। इन एकांकियों को उन्होंने सांस्कृतिक चित्रण माना है, पर 'चित्रण' पर जोर देने के फलस्वरूप इनमें नाटकीय तंत्र कमजोर हो गया है।

हिंदी-एकांकीकारों में **उपेंद्रनाथ अश्क** का विशिष्ट स्थान है। 'देवताओं की छाया में', 'चरवाहे', 'पक्का गाना', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'अंधी गली', 'साहब को जुकाम है', 'पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी' आदि उनके एकांकी-संग्रह हैं। अश्क ने अपने एकांकियों की विषयवस्तु का चुनाव जीवन के अनेक क्षेत्रों से किया है, किंतु उनका मुख्य क्षेत्र पारिवारिक जीवन है। उदाहरण के लिए 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पापी' और 'सूखी डाली' शीर्षक एकांकियों को लिया जा सकता है। पहले दो एकांकी तो सामान्य हैं, पर 'सूखी डाली' में आज की कौटुंबिक प्रणाली को नए दृष्टिकोण से देखा गया है। 'वस्तु' को नाटकीय बनाने और तनावों का सृजन करने में शैली-विन्यास और मंचीय विशेषताओं ने पूरा योग दिया है। किंतु जिन एकांकियों में उनकी प्रवृत्ति रोमानी भावुकता और स्थूल समाधान प्रस्तुत करने की ओर रही है, वहाँ वे प्राय: लड़खड़ा गए हैं। अश्क ने 'जोंक', 'आपस का समझौता', 'विवाह के दिन' आदि कुछ प्रहसन भी लिखे हैं। उनके प्रहसन दिलचस्प हैं, पर व्यंग्य की क्षमता का इनमें अभाव है। 'विवाह के दिन' को उन्होंने व्यंग्य की संज्ञा दी है, पर इसमें विदूषकत्व की प्रमुखता है। अभिनेयता के प्रति अश्क काफी सजग रहे हैं, पर लंबे रंग-निर्देश अभिनेयता में कदाचित् ही कोई योग देते हों। कथोपकथन की सादगी, स्पष्टता और साफ़गोई उनकी निजी विशेषताएँ हैं। एमेचर रंगमंच पर उनके एकांकी सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं।

सेठ गोविंददास कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्ता और सरस्वती के आराधक थे। 'सप्तरश्मि', 'एकादशी', 'पंचभूत', 'चतुष्पथ' आदि उनके एकांकी-संग्रह हैं। यों उन्होंने कुछ ऐतिहासिक एकांकियों की भी रचना की है, किंतु उनके

नोट

एकांकी मुख्यत: राजनीतिक-सामाजिक हैं। पर ये एकांकी नाटकीय स्थितियों, तनावों, मोड़ों आदि से संपृक्त नहीं हो पाए हैं। **हरिकृष्ण 'प्रेमी'** के एकांकी-संकलन हैं–'मातृ मंदिर', 'राष्ट्र मंदिर', 'मान मंदिर', 'न्याय मंदिर', 'वाणी मंदिर' आदि। किंतु इन 'मंदिरों' में जो मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं उनमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की जा सकी है। **जगदीश चंद्र माथुर** के दो एकांकी-संग्रहों–'भोर का तारा' और 'ओ मेरे सपने' में जीवन की नवीन समस्याओं को रूपायित किया गया है। पुराने खेमे के एकांकीकारों में लक्ष्मीनारयण मिश्र (अशोक वन, 1950), गोविंदवल्लभ पंत (विषकन्या, 1959) और भगवतीचरण वर्मा ने भी कुछ प्रभावशाली एकांकियों की रचना की है।

टास्क एकांकी नाटक पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इधर के एकांकीकारों में **विष्णु प्रभाकर** ने आदर्शवाद, सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्यों और मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर सामाजिक एकांकियों की रचना की है। उनके एकांकी-संग्रह हैं–प्रकाश और परछाईं, इंसान, बारह एकांकी, क्या वह दोषी था, दस बजे रात, ऊँचा पर्वत गहरा सागर तथा ये रेखाएँ ये दायरे। लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती (नदी प्यासी थी), मोहन राकेश (अंडे के छिलके), भारतभूषण अग्रवाल, विनोद रस्तोगी, विमला लूथरा, रेवतीसरन शर्मा, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर (उमर क़ैद), चिरंजीत, सिद्धनाथ कुमार आदि ने एकांकियों और रेडियो-एकांकियों की रचना की है। इनमें से लक्ष्मीनारायण लाल ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इस विधा को गंभीरतापूर्वक लिया है। उनके एकांकी-संग्रह हैं–ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी और दूसरा दरवाज़ा। सामाजिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति, समस्याओं का सूक्ष्म समाधान और रंगमंचीय सार्थकता उनके एकांकी नाटकों की सहज उपलब्धियाँ हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. आलोच्य काल में .... रंग-मंच और जीवन के यथार्थ से जुड़कर नयी दिशा की ओर उन्मुख हुआ।
2. छायावादी स्वातंत्र्य के और पीछे जाकर वर्मा जी नारी को मध्यवर्गीय आदर्शों की जंजीरों में बाँधने के .... हैं।
3. भट्ट जी ने अपने .... को नवजीवन की ज्वलंत समस्याओं से जोड़ने की कोशिश की है।

15.1.3 उपन्यास

प्रेमचंद के उपरांत हिंदी-उपन्यास कई मोड़ों से गुज़रता हुआ दिखाई पड़ता है, जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है–1950 ई. तक के उपन्यास, 1950 से 1960 तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास। पहला दशक मुख्यत: फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है, दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा, आधुनिकतावादी विचारधारा से। पहले दशक में फ्रायड से प्रभावित होकर जिस कथा-साहित्य की रचना की गई, उसकी पृष्ठभूमि **जैनेंद्र** पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। जहाँ प्रेमचंद ने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत (एडजस्ट) होने के प्रश्न को अधिक महत्व दिया, वहाँ जैनेंद्र ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभारकर सामने रखा। उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह या दहेज-प्रथा जैसी समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि विवाह स्वयं में एक समस्या है; क्योंकि सारी अनिश्चितताएँ उसके बाद आरंभ होती हैं। किंतु जिस मुक्ति की समस्या पर उन्होंने बल दिया, उसके आड़े आते हैं रूढ़ संस्कार; और इस प्रकार जैनेंद्र का प्रत्येक उपन्यास अंतर्विरोधों का उपन्यास बन गया है। आलोच्य युग में प्रकाशित उनके उपन्यासों–कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन आदि–में यह

नोट

प्रवृत्ति मनोविज्ञान, दार्शनिकता, वैयक्तिकता आदि के माध्यम से विविध रूपों में उभरी है। उनके नारी-पात्र यदि एक ओर समाज की मर्यादाओं को बनाए रखना चाहते हैं, तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में आत्म-यातना के अतिरिक्त कोई राह शेष नहीं रहती। उनके पात्र समाज को न तोड़कर स्वयं टूटते हैं, किंतु अपने को तोड़कर किसी को निर्मित नहीं करते। नियति, ईश्वर, धर्म आदि में अटूट आस्था उनके उपन्यासों को आधुनिक नहीं बनने देती—वे रोमैंटिक 'एगोनी' का रूप ले लेते हैं।

अज्ञेय-कृत **'शेखर : एक जीवनी'** (1941) के प्रकाशन के साथ हिंदी-उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ आया। इस उपन्यास को लेकर आलोचकों में भारी मतभेद रहा। किसी ने इसे प्रकाशमान पुच्छल तारा कहकर प्रशंसा की, तो किसी ने अतिशय आत्मकेंद्रित बताकर इसके कथानक को असंबद्ध और विश्रृंखलित माना। इन विरोधी सम्मतियों से सिद्ध होता है कि कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से यह परंपरा से हटकर एक नया प्रयोग था। जिसे आज आधुनिकता की संज्ञा दी जाती है, उसका सर्वप्रथम समावेश इसी उपन्यास में दिखाई देता है। इसका मूल मंतव्य है—स्वतंत्रता की खोज। यह खोज अपने को सबसे काटकर नहीं की गई है, बल्कि अन्य संदर्भों में यानी मानवीय परिस्थितियों के बीच की गई है। उसकी तलाश में शेखर अनेक प्रकार के आंतरिक संघर्षों से जूझता और भीतरी तनावों से गुजरता है, किंतु अपने निषेधात्मक रोमैंटिक विद्रोह को लेकर वह बहिर्मुखी नहीं हो पाता। फलस्वरूप सारा संघर्ष मौखिक होकर रह जाता है, क्रिया (ऐक्ट) में नहीं बदलता। वैसे शेखर के विद्रोह के पीछे आज की पीढ़ी का विद्रोही स्वर है। वह कान्वेंट से छुटकारा पा लेता है, घर पर आए ट्यूटर को भगा देता है, 'टाइप' न बनकर अपनी निजी संभावनाओं को अन्वेषित करना चाहता है और शादी में भी माँ-बाप के खिलाफ अपने निजी चुनाव का पक्षधर है।

'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे खंड में अधिक व्यवस्था है। पहले भाग का विद्रोह सृजन की भूमिका मालूम पड़ता है क्योंकि इसमें उसका बिखरा व्यक्तित्व संघटित होकर रचनात्मक बनता है, किंतु राष्ट्र, राष्ट्रीयता, भाषा आदि के संबंध में उसके विचार क्रियात्मकता से न जुड़ने के कारण सतही प्रतीत होते हैं। दूसरी ओर शशि और शेखर के संबंध को लेकर जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं, वे नैतिक अधिक हैं वास्तविक कम! स्मरण रखना चाहिए कि शेखर विद्रोही है और समाज द्वारा निर्मित प्रतिमान उसे सह्य नहीं है। जिस प्रमाणिक अनुभूति की चर्चा आज की रचनाओं के संदर्भ में की जाती है, वह इस उपन्यास में पहली बार मिलती है। शेखर अपनी अनुभूतियों को निश्छल अभिव्यक्ति देता है—जो परिदृश्य उसके अनुभव के भीतर नहीं आया, वह इस उपन्यास में भी नहीं आया है। यह शेखर की कमजोरी और उपन्यासकार की ईमानदारी है। काल की दृष्टि से भी यह उपन्यास प्रयोगधर्मी है। इसमें एक रात में देखे गए विज़न को शब्दबद्ध करने का प्रयास है, फलस्वरूप परंपरामुक्त काल-क्रमिकता के स्थान पर इसमें अनुभूति के टुकड़ों को जहाँ-तहाँ से उठा लिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि चेतना-प्रवाह, प्रतीकात्मकता और भाषा की आंतरिकता के कारण यह उपन्यास अपने में अप्रतिम है, पर एक तो रौमंटिक आवेग के कारण और दूसरे, अहंकेंद्रित होने के फलस्वरूप इसका विज़न रचनात्मक बनते-बनते रह गया है।

अज्ञेय के दूसरे उपन्यास **'नदी के द्वीप'** (1951) को सामान्यत: शेखर की संवेदना का विकास माना जाता है। शेखर और भुवन तथा रेखा और राशि में एक तरह का सादृश्य लगता है, पर इस पर ज़ोर नहीं देना चाहिए—'नदी के द्वीप' को स्वतंत्र कृति के रूप में मूल्यांकित करना अधिक संगत है। शेखर की तुलना में भुवन की तेजस्विता कृत्रिम, आरोपित और अविश्वसनीय है। वह ठीक ढंग से स्थित (सिचुएट) नहीं हो पाता, फलस्वरूप आत्मकेंद्रित और दंभी बन जाता है। 'शेखर एक जीवनी' की राशि भी 'सिचुएटेड' चरित्र है, पर रेखा कहीं भी संदर्भित नहीं है। इसलिए उसकी बौद्धिक ऊंचाई स्वयं नदी का द्वीप है, प्रवाह से अलग। 'नदी के द्वीप' का प्रतीक पूर्णत: अर्थवान् नहीं बनता क्योंकि प्रवाह उसे काटता-छाँटता, उसकी रूपरेखा को बदलता चलता है; कभी-कभी तो उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। इसके सभी पात्र रेखा पर—सीधी रेखा पर—चलने के कारण बदलाव से नहीं टकराते। इस उपन्यास की भाषा, शिल्प, रूप-विन्यास आदि की काफी प्रशंसा की गयी है, किंतु भाषा के प्रति अतिरिक्त सावधानी और रचाव का ही यह फल है कि जहाँ 'शेखर : एक जीवनी' की भाषा के अपने अनगढ़पन के बावजूद सर्जनात्मक बन पड़ी है, उसका विन्यास बिखरकर भी संघटित हो जाता है; वहाँ 'नदी के

द्वीप' के संघटन में ही कुछ ऐसी रिक्तता है कि उसका शिल्प वांछित प्रभाव नहीं डाल पाता। 'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है जिसमें एक प्रकार की धार्मिक दृष्टि-संपन्नता दिखायी पड़ती है। पहले दोनों उपन्यासों में यौन-कल्ट की स्थापना के साथ-साथ उन्होंने मसीहाई दृष्टिकोण भी अपनाया है, 'अपने-अपने अजनबी' इसी की फलश्रुति है। इसमें मुख्य समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संत्रास, अकेलेपन, बेग़ानगी, मृत्यु-बोध, अजनबीपन आदि से सहज ही संयुक्त हो गयी है। स्वतंत्रता के अहंकार से जोड़कर अज्ञेय ने इसमें अस्तित्ववादी स्वतंत्रता के मूल अर्थ को ही बदल दिया है।

जैनेंद्र और **अज्ञेय** फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं, तो **इलाचंद्र जोशी** उसके मनोविश्लेषण से। यद्यपि उनका पहला उपन्यास 'घृणामयी' सन् 1929 में ही प्रकाशित हो चुका था, किंतु 'संन्यासी' (1941) के द्वारा ही उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। इस उपन्यास में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विवृति देखी जाती है। संन्यासी के अतिरिक्त उनके 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित' (1946), 'मुक्तिपथ' (1950), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955), 'ऋतुचक्र', 'भूत का भविष्य' (1973) आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। जोशी जी के उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक मोड़ की सूचना देता है। इसके पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रंथियों के विश्लेषण पर आधारित हैं—उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' और उसके बाद के उपन्यासों में परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखायी पड़ता है। फिर भी, वे कहीं भी मनोविश्लेषणात्मक प्रवत्ति और छायावादी संस्कारों से उबर नहीं पाते। 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत और छाया' में एबनार्मल चरित्रों को लिया गया है। इनके मुख्य पात्र किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि के शिकार हैं। जब तक उन्हें ग्रंथि का रहस्य नहीं मालूम होता तब तक वे अनेक प्रकार के असामाजिक कार्यों में संलग्न रहते हैं, किंतु जिस क्षण उनकी ग्रंथियों का मूलोद्घाटन हो जाता है, उसी क्षण वे सामान्य स्थिति में पहुंच जाते हैं। 'संन्यासी' में आत्महीनता की ग्रंथि है, तो 'प्रेत और छाया' में इडिपस ग्रंथि; और 'पर्दे की रानी' के पात्र भी मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त है। फ्रायड के मनोविश्लेषण का मूलाधार काम-भावना है, उसी को केंद्र में रखकर तीनों उपन्यासों के ताने-बाने बुने गये हैं। किंतु क्योंकि सभी पात्र मनोविश्लेषण के किताबी ढाँचे में ढाले गये हैं, फलस्वरूप वे अपने को स्वतंत्र रूप से विकसित नहीं कर पाते और इसीलिए ये उपन्यास सहज नहीं बन पड़े हैं।

'मुक्तिपंथ', 'जिप्सी' और 'जहाज का पंछी' में जोशी जी ने सामाजिकता का भी सन्निवेश किया है। 'मुक्तिपथ' का नायक समाजवादी विचारधारा का व्यक्ति है और नायिका का दृष्टिकोण व्यावहारिक एवं व्यक्ति-सापेक्ष है। ठीक भी है, व्यक्ति की निजी भावनाओं को सर्वथा दबाकर सामाजिक कार्यों में पूरी सफलता नहीं मिल सकती। किंतु 'जहाज का पंछी' व्यक्ति और समाज की पारस्परिक असंबद्धता का उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक ग्रंथि से बाहर निकलकर समाज की बदबूदार गलियों का चक्कर लगाता है और निस्सहायों की सहायता करता है पर उसके कार्य परिस्थितिजन्य उतने नहीं हैं, जितने बौद्धिक हैं। उसका भटकाव उसी के द्वारा नियोजित है, परिस्थितियों द्वारा नहीं। 'ऋतुचक्र' में जोशी जी पुन: रोमानी प्रेम की ओर उन्मुख हो गए हैं मानो उनका प्रतिपाद्य यह है कि जीवन के चरम सत्य की उपलब्धि सेक्स से ही होती है। इसमें प्रेम के तीन आयामों का चित्रण है—आदिम ग्रंथों का प्रेम, अस्तित्ववादी प्रेम और इन दोनों की मध्यवर्ती स्थिति का प्रेम। कथा-संरचना और अभिव्यंजना-शिल्प, दोनों की ही दृष्टि से जोशी जी इसमें छायावादी संस्कारों से मुक्त नहीं हो सके हैं और इसीलिए इसमें नये मूल्यों का सही ढंग से आकलन नहीं हो सका है।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा और सृजनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है। 'गोदान' में प्रेमचंद्र ने आदर्शवाद से बहुत-कुछ मुक्त होकर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसकी परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है। उनका प्रारंभिक जीवन क्रांतिकारी दल से संबद्ध था, फलस्वरूप मार्क्सवादी विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'अमिता' और 'दिव्या' शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यासों को छोड़कर उनके शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये हैं—दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), पार्टी कामरेड (1946), मनुष्य के रूप (1949), झूठा सच (दो भाग, 1958-1960)। 'दादा कामरेड' में पूँजीवाद, गाँधीवाद और क्रांतिकारियों के आतंकवाद का विरोध करते हुए समाजवाद का समर्थन किया गया है। स्त्री को वरण की स्वतंत्रता देने का प्रश्न भी लेखक ने उठाया है। इस संदर्भ

नोट

में शैला और हरीश के संबंध को लेकर नैतिकतावादी आलोचकों ने आपत्ति की है, किंतु उपन्यास के लक्ष्य के अनुरूप नारी को यह स्वतंत्रता तो देनी ही होगी। किंतु इस उपन्यास में कलात्मकता के अपेक्षित स्तर का अभाव है। 'देशद्रोही' सन् 1941 की क्रांति से संबद्ध उपन्यास है। कलागत सतर्कता के बावजूद इसमें पात्रों को विभिन्न परिस्थितियों में फेंका गया है और फिर वहाँ से निकाला भी गया है, फलस्वरूप सारा आयोजन सहज न होकर आयासजन्य लगने लगता है। इसकी अपेक्षा 'पार्टी कामरेड' साफ-सुथरा उपन्यास है, इसमें न तो काम-संबंधी लिजलिजापन है और न सैद्धांतिक अस्पष्टता। 'मनुष्य के रूप' में परिवर्तनशील मानवीय रूप के मूल में आर्थिक समस्या की भूमिका स्वीकार की गयी है और 'झूठा सच' की रचना राजनीतिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हुई है।

नोट्स प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में यशपाल ने अपनी विशिष्ट विचारधारा एवं सृजनात्मक शक्ति के कारण स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है।

यशपाल में कथा कहने की अद्‌भुत क्षमता है, पर पूर्वनिर्मित विचारधारा को रूपायित करने की उत्कट प्रेरणा के फलस्वरूप उनके उपन्यासों की पात्र-स्थितियाँ और परिणतियाँ भी पूर्वनिर्मित हो गयी हैं। वस्तुतः वे प्रेम को कामेच्छा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते; ऐसी स्थिति में वे अपने बाड़े के बाहर जीवन को वृहत्तर आयामों में देख पाने में असमर्थ रहे हैं। 'झूठा सच' के प्रकाशन ने सिद्ध कर दिया कि यशपाल बहुत विशाल फलक पर जीवन के विविध रूपों, आयामों, समस्याओं और जटिलताओं को अपने ढंग से प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। इसलिए इसे औपन्यासिक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है, यद्यपि इसमें जितनी व्याप्ति है उतनी गहराई नहीं है। यह उपन्यास 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' शीर्षक दो भागों में प्रकाशित हुआ है। देश-विभाजन की पृष्ठभूमि में इतनी बड़ी कृति की परिकल्पना और सामयिक, सामाजिक, राजनीतिक वातावरण को यथासंभव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित करना यशपाल के ही वश की बात थी। उपन्यास का पहला भाग देश के यथार्थ विघटन को रूपायित करता है, तो दूसरा संघटन को। विघटन का दृश्य उपस्थित करने के लिए जिस यथार्थवादी दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह यशपाल को प्राप्त है। इसलिए प्रथम खंड अपेक्षाकृत अधिक प्रमाणिक, यथार्थ और मार्मिक बन पड़ा है। संघटन के लिए यथार्थ की अपेक्षा विधायन कल्पना की आवश्यकता होती है। कहना न होगा कि यशपाल में इसकी कमी दिखायी पड़ती है और इसीलिए दूसरे खंड में चित्रित पात्रों की सफलताएँ सपाट हो गयी हैं। फिर भी, इस खंड में देशव्यापी भ्रष्टाचार को अत्यंत निपुणता से चित्रित करते हुए विश्वसनीय बनाया गया है। किंतु दोनों भागों में कम्युनिस्ट पार्टी को जो तरजीह दी गयी है वह लेखक की पक्षधरता की सूचक है। यद्यपि इस उपन्यास में स्थान-स्थान पर भाषा विडंबनात्मक (आइरेनिकल) होकर मार करनेवाली धार को और पैना बना देती है, किंतु मार्क्सवाद को केंद्रीय विषय-वस्तु मान लेने तथा जीवन और जगत् को सीधी रेखा स्वीकार करने का फल यह हुआ है कि उन्हें सत्यान्वेषण में संलग्न होने और किसी जटिल मार्ग से गुजरने की जरूरत नहीं पड़ी और न ही कलागत नवीन प्रविधियों का प्रयोग करना पड़ा। अपनी इन कमज़ोरियों के कारण 'झूठा सच' को अपेक्षित रचनात्मक ऊँचाई नहीं मिल सकी, फिर भी यह हिंदी का महाकाव्यात्मक उपन्यास माना जायेगा। यशपाल का नवीनतम उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' भारत के स्वतंत्रता-पूर्व और स्वातंत्र्योतर काल के सामाजिक-राजनीतिक जीवन पर आधारित है।

यशपाल की परंपरा के उपन्यासकारों में **रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'** का नाम उल्लेखनीय है। 'चढ़ती धूप' (1945), 'नयी इमारत' (1946), 'उल्का' (1947) और 'मरुप्रदीप' (1951) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। समाज, संस्कृति और राजनीति के संदर्भ में समकालीन परिवेश के विविध पक्षों को रूपायित करना इन उपन्यासों की मुख्य उपलब्धि है। किंतु यथार्थ के प्रति रुझान होने पर भी उपन्यासकार ने कथा-विन्यास में कल्पना की अतिशयता रखी है। यही कारण है कि इनमें जीवन की द्वंद्वात्मक चेतना अपनी पूरी शक्ति से नहीं उभर पायी।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों को प्रेमचंद की परंपरा, जो 1950 ई. तक चलती रही, के अंतर्गत रखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जहाँ समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया, वहाँ वर्मा जी भी

नोट

परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं। आलोच्य अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यासों में 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'भूले-बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा' और 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' मुख्य हैं। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में दो पीढ़ियों के अंतराल का चित्र प्रस्तुत करते हुए लेखक ने एक ऐसे परिवार का नक्शा खींचा है जो समन्वय के अभाव में विघटित हो गया। पं. रामनाथ तिवारी का व्यक्तित्व टिपिकल सामंतीय है। उनके तीनों लड़के ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हैं। फलस्वरूप पिता और पुत्रों के बीच भी अंतराल आ जाता है। तीनों लड़कों में से एक गांधीवादी है, दूसरा आतंकवादी और तीसरा साम्यवादी। ये तीनों रास्ते टेढ़े-मेढ़े हैं और यथार्थ से परे हैं। लेखक का दृष्टिकोण नयी पीढ़ी के प्रति अनास्थावान् मालूम पड़ता है। 'आखिरी दाँव' और 'अपने खिलौने' अपनी असंगतियों तथा बिखराव के कारण साधारण स्तर के उपन्यास बनकर रह गये हैं, किंतु 'भूले-बिसरे चित्र' (1959) से उन्हें यथेष्ट ख्याति मिली है। इसमें चार पीढ़ियों की परिवर्तमान जीवन-दृष्टियों की कथा है—सन् 1885 से 1930 तक! अर्ज़ीनवीस मुंशी शिवलाल का पुत्र ज्वालाप्रसाद अंग्रेज कलेक्टर की कृपा से नायब तहसीलदार हो जाता है, ज्वालाप्रसाद का पुत्र गंगाप्रसाद सीधे डिप्टी कलेक्टर हो जाता है और गंगाप्रसाद का पुत्र अपनी योग्यताओं के बावजूद सत्याग्रह-संग्राम में जुट जाता है उपन्यास के प्रथम दो खंडों में सामंतीय मनोवृत्ति और नौकरशाही का चित्र प्रस्तुत किया गया है, तृतीय खंड में दिल्ली दरबार का चित्र है और चौथे में गांधीवाद आंदोलन से संबद्ध राजनीतिक समस्याओं को अंकित करने का प्रयास किया गया है। इस तरह इसमें लंबे दिक्-काल को समेटकर इसे महाकाव्योचित बनाने की चेष्टा की गयी है। लेखक ने अनगिनत पात्रों, रोचक प्रसंगों और घटना-श्रृंखलाओं को इस तरह अंकित किया है कि अपेक्षित कालावधि को एक व्यापक परिदृश्य दिया जा सके। किंतु कुल मिलाकर उपन्यास के विभिन्न खंडों में अन्वितियों की एकतानता नहीं मिलती। इसके मूल में ऐसी कोई गहरी दृष्टि और संवेदना नहीं है जो इसे जीवन की गहन, जटिल समस्याओं से संपृक्त कर सके। इसके पात्र भी अपने-अपने समय के साँचे में ढलकर कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं बना पाते। वे सामान्यत: भावना की सतह पर तैरते रहते हैं, गहरे डूबने का साहस उनमें नहीं है। 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा' और 'सबहिं नचावत राम गुसाईं' वर्मा जी के अन्य उपन्यास हैं। यदि उनके उपन्यासों के मूल स्रोत की खोज की जाए, तो वह 'मनुष्य परिस्थितियों का दास है' में मिलेगा। परिस्थितियों को उन्होंने ऐतिहासिक अनिवार्यताओं की संश्लिष्टता में नहीं लिया है, वे प्राय: इकहरी होती हैं और मनुष्य उनसे पराभूत हो जाता है। फलत: पात्र रूपाकारहीन हो जाते हैं। प्रेमचंद की भाँति वर्मा जी तात्कालिकता को तीखेपन के साथ चित्रित नहीं कर पाते। उन्हें प्रेमचंद की परंपरा में इसी अर्थ में स्थान दिया जा सकता है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में परवर्ती ऐतिहासिक परिस्थितियों का आकलन किया है। फिर भी, बहुत-सी समस्याएँ वे ही हैं जिन्हें प्रेमचंद ने 'गोदान' के पूर्ववर्ती उपन्यासों में प्रस्तुत किया था। भगवतीचरण वर्मा को 'गोदान' की परंपरा का उपन्यासकार न मानकर 'सेवासदन', 'रंगभूमि' और 'गबन' की परंपरा का उपन्यासकार माना जायेगा।

वर्मा जी की भाँति **उपेंद्रनाथ अश्क** को भी प्रेमचंद-परंपरा का उपन्यासकार कहा जाता है, पर समग्र अर्थ में वे इस परंपरा से जुड़ नहीं पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का संबंध है वहाँ तक वे प्रेमचंद-परंपरा के उपन्यासकार हैं, बल्कि प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी और प्रमाणिक भी हैं। किंतु प्रेमचंद के वैविध्य और जीवन-चेतना का उनमें अभाव है। छायावादोत्तर काल में रचित उनके उपन्यासों में 'गिरती दीवारें' (1947) सर्वोत्तम है। यथार्थवादी परंपरा के उपन्यासों में यह अपना ऐतिहासिक स्थान रखता है इसके पूर्व यथार्थवादी परंपरा का शायद ही कोई ऐसा उपन्यास हो जो मध्यवर्ग की विवशता, हार, लाचारी और संघर्ष को वास्तविकता की भूमि पर प्रतिष्ठित कर सका हो। उपन्यास का मुख्य पात्र चेतन न केवल आर्थिक परिस्थितियों से जूझते हुए अपने आदर्शों को तोड़ने के लिए बाध्य होता है, अपितु वह काम-कुंठाओं से भी ग्रस्त है। उसकी समस्या आर्थिक उतनी नहीं मालूम पड़ती, जितनी कि कामजन्य। फिर भी, यह उपन्यास मध्यवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है और यही इसकी सफलता का रहस्य है। 'शहर में घूमता आईना' और 'एक नन्ही कंदील' इस उपन्यास के अगले खंड हैं और अपने-आपमें पूर्ण हैं। दोनों ही उपन्यासों में चेतन के जीवन के अनेकानेक संस्मरण संगृहीत हैं जिनमें तथ्यात्मकता तो दिखायी देती है, पर पाठक को इन फीके और बेस्वाद संस्मरणों से क्या लेना-देना? स्मृति कौंधी नहीं कि पिछले जीवन का काफी हिस्सा प्रकाश के वृत्त में आ गया और उपन्यास में कई पृष्ठ जुड़ गए। चेतन जहाँ कहीं ज्ञान की बातें करता है, वहाँ पूरा मिडियाकर लगता है। शिल्प के अनेकानेक उपकरणों का चुनाव इन उपन्यासों में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर

नोट

सका। 'गिरती दीवारें' की भाँति 'गर्म राख' (1952) भी अश्क का सफल यथार्थवादी उपन्यास है। 'बड़ी-बड़ी आँखें' (1957) देखने में रोमानी लगता है, पर इसका मुख्य स्वर संस्थाओं के खोखलेपन को उजागर करने से संबद्ध है। प्रेमचंद-युग में संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण थीं, पर कालांतर में वे अर्थहीन हो गयीं। 'पत्थर-अल- पत्थर' (1957) में यदि लेखक ट्रेवलॉग के चक्कर में न पड़ता, तो मानवीय आंतरिकता को उभार पाने की संभावनाएँ उसमें थीं।

इधर के उपन्यासकारों में **अमृतलाल नागर** का विशेष स्थान है। उन्होंने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक संबंधों को चित्रित किया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बांकेमल', 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूँद और समुद्र' इनमें विशेष महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। 'बूँद' और 'समुद्र' क्रमशः व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। लखनऊ के चौक के रूप में इसमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों, रीति-नीतियों, आचार-विचारों, जीवन-दृष्टियों, मर्यादाओं, टूटती और निर्मित होती हुई व्यवस्थाओं के अनगिनत चित्र हैं। इस उफनते हुए समुद्र में व्यक्ति-बूँद की क्या स्थिति है, यह उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य हैं। उपन्यास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र ताई व्यक्ति और समाज के संघातों की अत्यंत प्रभावशाली ट्रेजडी है, पर अन्य पात्र वैचारिक अधिक और जीवंत कम बन पड़े हैं। एक दूसरे स्तर पर इसमें आज के बुद्धिजीवी का संकट भी चित्रित किया गया है। हमारा समाज अनेक प्रकार के स्वार्थों और पाखंडों में लिप्त होकर मूल्यहीन हो गया है, पर बुद्धिजीवी का संघर्ष मूल्यान्वेषण में संलग्न दीख पड़ता है। लेकिन अंततोगत्वा उसे भी अपने आदर्श खोखले प्रतीत होते हैं। जो लोग इसमें आधुनिकता-बोध को खोजना चाहेंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा। यह प्रेमचंद परंपरा की–यथार्थ और आदर्श के समन्वय तथा व्यष्टि और समष्टि के पारस्परिक संबंधों की अत्यंत रोचक शैली में लिखी गयी विशिष्ट औपन्यासिक कृति है। 'अमृत और विष' उनका दूसरा वृहत्काय उपन्यास है। इसमें भी अनेक प्रकार की जीवन-स्थितियों, आंदोलनों और रीति-रिवाजों के ब्यौरों को अंकित किया गया है। किंतु अपने अतिरिक्त फैलाव के फलस्वरूप यह उपन्यास गहरे-जीवन से रिक्त होकर विवरणात्मक हो गया है। उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास है–'मानस का हंस' (1972)। इसमें गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त को सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। ऐतिहासिक संदर्भों के अनुरूप तथ्य-संपादन-मात्र की शैली न अपनाकर इसमें रोमानी कल्पना का भी सहज सन्निवेश किया गया है।

15.1.4 ऐतिहासिक उपन्यास

हिंदी-उपन्यासों के विकास के इस दौर में इतिहास-संबंधी नया दृष्टिकोण सामने आया। इसके पूर्व किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में तथ्यों और कल्पना के रचनात्मक पक्ष की चिंता न कर उनमें कौतूहल, उत्सुकता, साहसिकता, मनोरंजन और रोमांस को प्रमुखता दी थी। वृंदावनलाल वर्मा के प्रारंभिक उपन्यासों में भी ये तत्व लक्षित होते हैं, पर रोमैंटिक आदर्श और आंचलिकता के पुट के कारण वे संयमित हो गये हैं या यों कहें कि उनमें इतिहास और कल्पना का समन्वय दिखायी पड़ता है। चतुरसेन शास्त्री मूलतः गोस्वामी जी की परंपरा के उपन्यासकार हैं, पर उन तत्वों के कारण उनके उपन्यासों में परिस्थितिपरक तीव्रता भी आयी है। नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ग्रहण करनेवालों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय हैं।

वृंदावन लाल वर्मा ने यों तो सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, पर उनकी ख्याति विशेषतः 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई', 'माधोजी सिंधिया', 'भुवनविक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए है। इनमें 'झांसी की रानी' और 'मृगनयनी' मुख्य हैं। 'झांसी की रानी' में किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों-जैसा रोमांस नहीं है, किंतु अत्यधिक तथ्याश्रयी और विवरणात्मक हो जाने के कारण यह उपन्यास इतिवृत्तात्मक हो गया है। इसके विपरीत 'मृगनयनी' में तत्कालीन परिवेश को उसकी समग्रता में आकलित करने का प्रयास दिखायी पड़ता है। बीच-बीच में ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं जो आज की समस्याओं से भी जुड़ जाते हैं। किंतु पूरे उपन्यास को इस धरातल पर नहीं उतारा गया है उपन्यासकार ने ग्वालियर के महाराज मानसिंह और ग्रामीण मृगनयनी के प्रणय-रोमांस के ताने-बाने में उस समय के सांस्कृतिक वातावरण को उसके विभिन्न

नोट

आयामों में चित्रित करके एक काल-खंड को जीवंत बना दिया है। तत्कालीन धर्म, राजनीति चित्रकला, संगीत कला और वास्तुकला को इनके ब्यौरों और अंतर्विरोधों-सहित इस रूप में चित्रित किया गया है कि यह उपन्यास सांस्कृतिक उपलब्धि बन गया है। वस्तुत: स्कॉट की भाँति वर्मा जी ने भी अपने उपन्यासों में अपनी जन्मभूमि की राजनीतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक समग्रता का जो सजीव चित्र उभारा है वह अद्वितीय बन पड़ा है।

हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** का है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारुचंद्रलेख' के अतिरिक्त उनका एक अन्य उपन्यास 'पुनर्नवा' प्रकाशित हुआ है। द्विवेदी जी के उपन्यास इतिहास के तथ्यों पर आधारित नहीं हैं, उनमें कल्पना के आधार पर ऐतिहासिक वातावरण की अर्थवान् सृष्टि की गयी है। यह अर्थवत्ता उनके नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण की देन है। वे किसी कालखंड को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसे आज की ज्वलंत समस्याओं के साथ भी जोड़ते चलते हैं; और इस संदर्भ में ही समग्रत: उनका गंभीर जीवन-दर्शन भी प्रतिफलित हो जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उन्होंने मध्यकालीन जड़ता पर प्रहार करते हुए उसे आधुनिक चैतन्य से संपृक्त किया है। अनेक प्रकार की विरोधी धर्म-साधनाओं के कारण समाज अनेकश: विभक्त और खंडित हो चुका था, राजनीतिक स्थित-अस्थिर और चंचल थी। उपन्यासकार ने इन अस्थिरताओं और विघटनों के बीच नये मूल्यों की खोज करने की कोशिश की है। सारा समाज एक प्रकार के अवरोध में है। भट्टिनी, महामाया, निपुणिका, सुचरिता; यहाँ तक कि बाणभट्ट भी अवरुद्ध है। संपूर्ण मध्यकाल की इस गतिशून्यता को लक्षित करके ही बाणभट्ट ने कहा है–''न जाने क्यों मुझे लग रहा था कि नीचे से ऊपर तक सारी प्रकृति में एक अवश अवसाद की जड़िमा छायी हुई हैं।'' इसमें व्यष्टि और समष्टि का अद्‌भुत समन्वय मिलता है–प्रत्येक पात्र का अपना निजी वैशिष्ट्य है, जो समष्टि से संसिक्त होकर चमक उठता है। यह एक क्लासिकल रोमैंटिक उपन्यास है। अपने बंध, चित्रण, वर्णन-शिल्प और शैली में यह क्लासिकल है और प्राणगत ऊष्मा में रोमैंटिक। बाणभट्ट की अलंकृत शैली में लिखा जाने पर भी यह गत्यात्मक है–काव्यात्मकता ही इसकी भाषा और वस्तु दोनों हैं। दूसरी ओर, इस उपन्यास की तुलना में 'चारुचंद्रलेख' अनाकर्षक और फीका मालूम पड़ता है। इसके विन्यास के बिखराव मूलवर्ती दृष्टि का ही बिखराव है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लोककथा के तत्त्व विश्वसनीय यथार्थ बनकर रचनात्मक हो गये हैं, पर 'चारुचंद्रलेख' में इन्होंने कुतूहल, विस्मय, रोमांस और रहस्य की सृष्टि की है। संरचना के स्तर पर इनका उपयोग नहीं हो सका है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भाँति इसमें प्रतीक, बिंब, मिथक आदि का प्रयोग भी मिलता है, पर प्रथम में इनके द्वारा काव्यानुभूति की चेतना निबद्ध होती है, तो दूसरे में ये उपकरण अलंकरण बनकर रह जाते हैं।

यशपाल–कृत 'दिव्या' भी कल्पनाश्रित ऐतिहासिक उपन्यास है। लेखक ने इसे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विन्यस्त किया है, पर कलात्मक सावधानी के कारण वह अवरुद्ध नहीं दिखायी पड़ता। अभिजातीय मान्यताओं और अवरोधों के कारण दिव्या को अनेक प्रकार के संघर्ष झेलने पड़ते हैं जिनके संदर्भ में लेखक ने धर्माडंबर, वर्ण-भेद, दास-प्रथा आदि से उत्पन्न परिस्थितियों का मार्मिक दृश्यांकन किया है। भगवतीचरण वर्मा-कृत 'चित्रलेख' से तुलना करने पर इन उपन्यासों का अंतर और भी स्पष्ट हो जाता है। वर्मा जी के पास जीवन-दृष्टि का अभाव है, जबकि यशपाल उससे विरहित होकर कुछ भी नहीं लिखते। इसलिए जहाँ 'चित्रलेखा' का फलक परिस्थितियों के चौखटे में बँधकर संकीर्ण और एकांगी हो गया है और उसमें जीवन की कोई राह दिखायी नहीं देती, वहाँ 'दिव्या' में राह की खोज है। अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण यह एक हद तक रोमांस-विरोधी उपन्यास बन गया है। रोमांस-विरोधी स्थितियों ने इसके विन्यास को यथार्थवादी और नाटकीय रूप देने में मदद की है। 'अमिता' यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है, किंतु इसमें बौद्धिकता और यथार्थ की यह ऊँचाई नहीं आ पायी है।

यशपाल की भाँति **राहुल सांकृत्यायन** और **रांगेय राघव** के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि की स्थापना मिलती है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' राहुल जी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है जिनमें क्रमश: लिच्छवि गण और यौधेय गण के संघर्ष चित्रित हैं। इसी भाँति रांगेय राघव ने 'मुर्दों का टीला' में

नोट

मोहनजोदड़ो के गणतंत्र का चित्रण किया है। **चतुरसेन शास्त्री**-कृत 'वैशाली की नगरवधू' भी गणतंत्र से संबंद्ध है। इन उपन्यासों की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि जहाँ राहुल के उपन्यासों पर मार्क्सवादी जीवन-दर्शन का लदाव उनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को बहुत कुछ धूमिल और असंगतिपूर्ण बना देता है और 'वैशाली की नगरवधू' पर आधुनिक जीवन को लादकर तत्कालीन इतिहास की प्रामाणिकता को ही संदिग्ध बना दिया गया है, वहाँ 'मुर्दो का टीला' में इतिहास और मार्क्सवादी जीवन-दर्शन संबंधी उपर्युक्त असंगतियाँ नहीं मिलतीं।

क्या आप जानते हैं हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में दूसरा उल्लेखनीय नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। बाणभट्ट की आत्मकथा और चारुचंद्रलेख के अतिरिक्त उनका एक अन्य उपन्यास पुनर्नवा प्रकाशित हुआ है।

सामान्यत: सन् 1950 के बाद के दशक को भ्रमवश आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है और इन उपन्यासों को सद्य:स्वतंत्र भारत के साथ जोड़कर ऐतिहासिक दृष्टि को सरलीकृत कर लिया जाता है, किंतु वस्तुत: ये उपन्यास एक नये प्रकार के मुक्ति-आंदोलन से जुड़े हुए हैं जो एक ओर वैयक्तिक है तो दूसरी ओर सामाजिक। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में साँस लेना चाहता है और सामाजिक इसलिए कि आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के लिए अभी समाज को लंबी मंजिल तय करनी थी। देश-विभाजन के कारण जो नयी समस्याएँ उत्पन्न हुईं उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया, अत: यह स्वाभाविक था कि पूर्ववर्ती पैटर्न के साथ-साथ नये रूपाकारों की खोज की जाती। अज्ञेय-कृत 'नदी के द्वीप' (1951) को रोमैंटिक किस्म के व्यक्तिवादी उपन्यासों का चरम विकास समझना चाहिए, किंतु इस तरह के उपन्यासों की संभावनाएँ क्रमश: समाप्त हो गयीं। इसी समय के लगभग देवराज का 'पंथ की खोज', नागार्जुन का 'बलचनमा', भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', रुद्र का 'बहती गंगा' और रेणु का 'मैला आंचल' (1954) उपन्यास प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों में जूझते हुए व्यक्तियों और समाज की आस्थाओं को देखा जा सकता है। निश्चय ही ये आस्थाएँ स्वतंत्र देश के उल्लास और मनोबल से अनुप्रेरित हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से सन् 1950 के बाद उपन्यासों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, सामाजिक चेतना के उपन्यास, प्रयोगशील उपन्यास और आधुनिकता-बोध के उपन्यास।

ग्रामांचल के उपन्यास—इस श्रेणी में आनेवाले उपन्यासों को आंचलिक कहकर उन्हें सीमित कर दिया जाता है। रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था, पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया, यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। प्रश्न हो सकता है कि प्रेमचंद ने भी ग्राम-कथाएँ ली हैं, उन्हें भी आंचलिक क्यों न कहा जाए? प्रेमचंद के उपन्यासों में गाँव के निवासियों की कथाएँ तो हैं, पर जिन उपन्यासों को ग्रामांचल के उपन्यास कहा जाता है उनमें गाँव की धरती, खेत-खलिहान, नदी-नाले, डबरे, पशु-पक्षी, हल-बैल, भाषा, गीत, त्योहार आदि इनके बीच रहनेवाले व्यक्तियों के साथ समवेत रूप में वाणी पाते हैं। तात्पर्य यह कि उपन्यास के पात्रों के साथ उनका परिवेश भी बोलता है। रेणु ने अपने उपन्यासों में ग्रामांचल को जो प्रधानता दी है, उसके आधार पर केवल उन्हीं की कृतियों को 'आंचलिक' कहा जाना चाहिए।

नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है—राजनीतिक अधिक, सांस्कृतिक कम। जहाँ तक विषयवस्तु के चुनाव का संबंध है वे प्रेमचंद की परंपरा में आते हैं, पर दृष्टि-बिंदु के हिसाब से वे यशपाल की परंपरा के लेखक हैं किंतु इन दोनों को समन्वित करना कठिन हो गया है। यशपाल कथावस्तु का चुनाव अपने दृष्टि-बिंदु के अनुरूप करते हैं, इसलिए उनकी औपन्यासिकता क्षरित नहीं होती; जबकि नागार्जुन का मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की थीम पर आरोपित प्रतीत होता है। उनके उपन्यासों के कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलते हैं, फलस्वरूप उपन्यासों की सृजनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो गयी है। 'रतिनाथ की चाची', 'बल्चनमा', 'नयी पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

नोट

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास ही सही अर्थों में आंचलिक हैं। सत्य तो यह है कि 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों के जितने विशद् और सवाक् चित्र देखने को मिलते हैं, उतने अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यासों में नहीं। इन दोनों उपन्यासों में ग्रामांचल की छोटी-छोटी घटनाओं, कथाओं, आचार-विचार, रीति-नीति, राजनीतिक-नैतिक अवधारणाओं, पारस्परिक संबंधों आदि के विश्लिष्ट चित्र मिलते हैं जो पूरे अंचल के संदर्भ में संश्लिष्ट और गत्यात्मक हो गये हैं। आधुनिकतावादी उपकरणों के सन्निवेश से गाँव का वातावरण अपने-आप बदलने लगता है। इस बदलाव में ही अवसरवादी कांग्रेसियों (स्वतंत्रता के बाद अधिकांश कांग्रेसी अवसरवादी हो चुके हैं) के नक़ाब उतारकर युवा पीढ़ी के संघर्षों को जिस ढंग से चित्रित किया गया है, वह रेणु की ऐतिहासिक धारा की पहचान का सूचक है। पर यह पहचान अपने रूपायन और परिणति में रोमैंटिक तथा आदर्शवादी है। फिर भी, रेणु के आंचलिक उपन्यासों में एक विशिष्ट संपूर्णता दिखायी देती है, जो आगे लिखे जाने वाले ग्रामांचलीय उपन्यासों के विकास में बाधक सिद्ध हुई।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर', 'लहरें और मनुष्य' (1956) भी इस धारा की प्रसिद्ध कृति है। इसमें बंबई के पश्चिमी तट पर बसे हुए वरसोवा गाँव के मछुओं की जीवन-कथा वर्णित है। नगर के संपर्क में आकर गाँव की एकांगिता में दरारें पड़ने लगती हैं और वह बदलाव की प्रक्रिया से गुजरने लगता है। यह बदलाव नवीन परिस्थितियों की अनिवार्यता है। उपन्यास की रत्ना गाँव की रूढ़ियों को तोड़कर पूँजीवादी यातना में जा फँसती है। आधुनिकतावादी पूँजीवाद की मानवीय नियति यही है। **रांगेय राघव** ने 'कब तक पुकारूँ' में जरायम-पेशा नटों की जिंदगी को उजागर किया है, तो **भैरवप्रसाद गुप्त** का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया उपन्यास है। इन उपन्यासों की मुख्यत: दो विशेषताएँ हैं–परिवर्तमान गाँवों के प्रति आशावादी दृष्टिकोण तथा स्थानिक रंग। इन्हें रोमैंटिक यथार्थ के उपन्यास कहना अधिक समीचीन होगा।

ग्रामांचल को आधार बनाकर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, हिमांशु श्रीवास्तव आदि ने भी उपन्यास लिखे हैं। **राही** का 'आधा गाँव' शिया मुसलमानों की ज़िंदगी पर लिखा गया पहला उपन्यास है। इसमें भारत-विभाजन के पहले और बाद की जिंदगी को उभारा गया है। तनहाई और टूटन इसमें एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ में चित्रित हैं, जिन्हें आधुनिकता-बोध के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। पर राष्ट्रीय आकांक्षाओं के संदर्भ में यह उपन्यास तीखा दर्द उभारता है। **शिवप्रसाद सिंह** ने अपने उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने की कोशिश की है। इसमें उस परिवेश का चित्रण है जिसमें नए-पुराने मूल्यों, नई-पुरानी पीढ़ी, भिन्न-भिन्न वर्गों और जातियों की टकराहट में सारे मूल्य गड्डमड्ड हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी वैतरणी में घिर जाता है–'गा चह पार जतन बहु हेरा, पावत नाव न बोहित बेरा।' वैतरणी को पार न करने का मतलब है नरक। गाँव नरक हो गए हैं, जहाँ अलगाव और टूटन कई स्तरों पर घटित होते हैं–वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा समूचे गाँव के स्तर पर। इस उपन्यास में जिस गाँव की परिकल्पना की गई है, वह पिछली परिकल्पनाओं से भिन्न है–**रामदरश मिश्र**-कृत 'पानी की प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और **हिमांशु श्रीवास्तव** का 'रथ के पहिए' भी अपने-अपने ढंग से प्रभावशाली ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। रामदरश मिश्र का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' उत्तर प्रदेश के कछार अंचल की दमघोंट समस्याओं, विसंगतियों, अभावों और आंतरिक संदर्भों को तीव्रता से अभिव्यक्त करनेवाली एक सशक्त कृति है। आधुनिकीकरण और बाहरी सभ्यता के संक्रमण के बीच निरंतर बदल रहे गाँव के विभिन्न आयामों को इस उपन्यास में उद्घाटित किया गया है।

उदाहरण–ग्रामांचल को महत्त्व देनेवाले अन्य उपन्यासकारों में राजेंद्र अवस्थी (जंगल के फूल, जाने कितनी आँखें), विवेकीराय (बबूल), उदयराज सिंह (अँधेरे के विरुद्ध) और सच्चिदानंद धूमकेतु (माटी की महक) भी उल्लेखनीय हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास–मनोविज्ञान को प्रमुखता देनेवाले इधर के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती और देवराज मुख्य हैं। **धर्मवीर भरती** का 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफ़ी लोकप्रिय हुआ। 'पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर' 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप'

नोट

देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी की मूलवर्तिनी धारा है–विवाह के बाहर का प्रेम। देवराज ने इसे विकासमान जीवन की अनिवार्यता माना है। लोकाचार और आंतरिकता की टकराहट उनके सभी उपन्यासों में है। 'पथ की खोज' और 'बाहर भीतर' में इस टकराहट का स्वरूप बहुत-कुछ रोमानी ही है, पर 'अजय की डायरी' में दार्शनिकता का आधार लेते हुए लेखक ने धर्म और नैतिकता को आंतरिक में अंतर्भुक्त कर दिया है। मनोविश्लेषण और व्यक्ति-चेतना पर बल देने वाले अन्य उपन्यासों में 'अंतराल' और 'बीच का समय' भी उल्लेखनीय है।

सामाजिक चेतना के उपन्यास–मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेंद्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। इनमें से पहले तीन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रतिबद्ध लेखक हैं। **मन्मथनाथ गुप्त** का 'बहता पानी' (1955), **भैरवप्रसाद गुप्त** के 'मशाल' और 'गंगा मैया' तथा **अमृतराय**-कृत 'बीज', 'नागफनी का देश' और 'हाथी के दाँत' वर्ग-संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक उपन्यास हैं। देश के शैक्षिक वातावरण से संबद्ध 'अपना मोर्चा' (काशीनाथ सिंह) भी इसी शैली का मार्क्सवादी उपन्यास है। **लक्ष्मीनारायण लाल** ने 'मन वृंदावन', 'धरती की आँखें', 'काले फूलों का पौधा' और 'रूपाजीवा' में उच्च स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश की है। 'धरती की आँखें' एकदम रोमानी है–अनेक विसंगतियों और घटनाओं से भरा हुआ, किंतु 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है। 'प्रेम बोलते हैं', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' (मन्नू भंडारी के साथ सहयोग लेखक) **राजेंद्र यादव** के उपन्यास हैं। 'उखड़े हुए लोग' में कथा-विन्यास सुसंबद्ध है। आज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था व्यक्ति के आदर्शवादी सपनों को नष्ट कर उसे समझौतावादी बनने के लिए किस प्रकार बाध्य करती है, यही इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। यदि कथा के साथ वैचारिकता का अंतराल न होता तो इसकी औपन्यासिकता और अधिक सार्थक प्रतीत होती। 'एक इंच मुस्कान' खंडित व्यक्तित्ववाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-ट्रैजेडी है–आत्मनिर्वासन से ग्रस्त अमर और अमला प्रेम के छलावे में पड़कर निषेधात्मक मूल्यों तक ही पहुँचते हैं। यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा यह उपन्यास कहीं अधिक समकालीन और महत्त्वपूर्ण है। सामाजिक चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति देने वाले कुछ अन्य उपन्यास हैं–'गली आगे मुड़ती है' (शिवप्रसाद सिंह), 'धूपछांही रंग' (गिरीश अस्थाना) और 'उसका घर' (मेहरुन्निसा परवेज)।

प्रयोगशील उपन्यास–कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी, उपन्यास आदि में भी नए प्रयोग हुए। पूर्ववर्ती लेखकों में जैनेंद्र और अज्ञेय ने प्रयोगों में कहानी और चरित्र का पूरा ध्यान रखा था, पर इस दौर में कहानी का तत्व क्षीण हो गया जिससे कथानक का पुराना रूप विघटित हो गया तथा अपने क्रिया-कलाप के प्रति सचेत एवं तराशे हुए पात्र नहीं रह गए। जिंदगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना-प्रवाह और स्वप्न-सृष्टि के साथ जुड़ गई। प्रतीक, टाइम-शिफ्ट आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए। प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के उपन्यास इसी श्रेणी के हैं। इस संदर्भ में **माचवे** के 'परंतु', 'साँचा' और 'द्वाभा' का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें न तो व्यवस्थित कथानक है और न चरित्र-निर्माण। लेखक ने चेतना-प्रवाह-प्रणाली से पुराने नैतिक मूल्यों पर प्रहार करते हुए नए मूल्यों की तलाश की है, किंतु शिल्पगत अनेक प्रयोगों के बावजूद वैचारिकता की प्रधानता ने इनकी औपन्यासिकता को ढँक लिया है। **भारती** ने 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में जो प्रयोग किया है, वह सोद्देश्य है। छोटे फलक पर विस्तृत जीवनानुभूतियों को चित्रित करने की बाध्यता के कारण उन्हें यह ढंग अपनाना पड़ा। 'अलिफलैला' और 'पंचतंत्र' के ढंग पर लिखी गई सात अलग-अलग कहानियाँ किस्सागो माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व से जुड़कर उपन्यास बन जाती हैं। इसकी रचना आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि में हुई है। बीच-बीच में आए हुए व्यंग्य ने उपन्यास की धारा को और तेज कर दिया है। पर सपने भेजनेवाले सूरज के सातवें घोड़े से उपन्यास की यथार्थता क्षतिग्रस्त हो गई है।

रुद्र की 'बहती गंगा' में काशी के दो सौ वर्षों के अविच्छिन्न जीवन-प्रवाह को सत्रह तरंगों में आकलित किया गया है। अर्थात् इसमें कुल सत्रह कहानियाँ हैं जो अपने में पूर्ण और स्वतंत्र होने पर भी धारा-तरंग-न्याय से एक-दूसरे से संबद्ध हैं। काशी की मस्ती को बिंबित करनेवाली जीवंत बोली-बानी में इसमें वहाँ का दो सौ वर्षों का गत्यात्मक इतिहास साकार हो उठा है। **गिरिधर गोपाल** ने 'चाँदनी रात के खंडहर' में चौबीस घंटों की जिंदगी

नोट

का विश्लेषण किया है। इसमें पाँच वर्षों के बाद लंदन से शिक्षा प्राप्त करके लौटे हुए नायक के मध्यवर्गीय परिवार की खोखली आर्थिक स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा गया है, जिसके लिए नायक वसंत खुद जिम्मेदार है। चौबीस घंटे की कालावधि के कारण इसमें चुनी हुई परिस्थितियों, घटनाओं और मनोदशाओं पर तीव्र प्रकाश डालकर उन्हें प्रभावशाली बनाने में सुविधा हुई है। **सर्वेश्वरदयाल सक्सेना**-कृत 'सोया हुआ जल' में एक यात्रीशाला में ठहरे हुए यात्रियों की एक रात की जिंदगी का वर्णन है। इसमें अंतश्चेतना की भूख, आकुलता और अतृप्ति का चित्रण है; जो व्यक्ति-मानस की अशांति और क्षोभ के कारण है। यह चेतना-प्रवाह-शैली और सिनेरियो-टेकनीक में लिखा गया प्रतीकात्मक उपन्यास है। शैली-चमत्कार के कारण ही इसका महत्त्व है, कथ्य अथवा मूल्यों के कारण नहीं। नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' और ख्वाजा बदीउज्जामाँ का 'एक चूहे की मौत' भी अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं।

आधुनिकता-बोध के उपन्यास–यंत्रीकरण, दो महायुद्धों और अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप, आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसे लेकर भी पिछले दशक में उपन्यासों की रचना हुई है। आस्थाविहीन समाज, अनिश्चय की स्थिति में लटके हुए इंसान और आत्मनिर्वासन की अभिव्यक्ति देने की पहल **मोहन राकेश** ने अपने उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' (1961) में की। इसके अनुसार प्रेम कोई शाश्वत-उदात्त मूल्य नहीं रह गया है-वैयक्तिक, महत्त्वाकांक्षाएँ और आधुनिक जीवन की सफलताएँ प्रेम की आंतरिक विवशता में दरारें पैदा कर देती हैं। उनका दूसरा उपन्यास 'न आनेवाला कल' आधुनिकता से अधिक प्रभावित है। उसका नायक सब-कुछ को छोड़कर या अस्वीकार करके एक निषेधात्मक स्थिति में जा पहुँचता है, पर यह अस्वीकार उसे कहीं भी ले जाने में असमर्थ है और जड़ जीवन को जीने की सड़ांध उसकी नियति हो जाती है। **निर्मल वर्मा** का 'वे दिन' आधुनिक संवेदना से संपन्न उपन्यास है। पश्चिम के अर्थहीन परिवेश में जिन छोटे सुख की तलाश इस उपन्यास में की गई है, वह आज के संदर्भ में गैरमौजूद नहीं लगती। इसे रोमैंटिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि तीन दिन के संपर्क में 'मैं' और 'रायना' का शरीरी सुख रोमैंटिक अर्थ में प्रेम नहीं, बल्कि रोमानी प्रेम से अलग प्रेम की आधुनिकतावादी परिकल्पना है। अंत में रायना के प्रति जो मोह उसमें उत्पन्न होता है, वह भावुकता न होकर 'मैं' का बचा हुआ वह मनुष्य है जिसमें वह अलग हो गया है। **राजकमल चौधरी** का उपन्यास 'मछली मरी हुई' समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। विषयवस्तु के अनोखेपन तथा तटस्थतापरक लेखकीय दृष्टिकोण के कारण इस उपन्यास का अलग अस्तित्व है। इस प्रकार की विषयवस्तु को चुनने पर भी इसमें अश्लीलता नहीं मिलती। श्रीकांत वर्मा-कृत 'दूसरी बार', महेंद्र भल्ला-कृत 'एक पति के नोट्स', कमलेश्वर-कृत 'डाक बंगला' और 'काली आँधी', गंगाप्रसाद विमल-कृत 'अपने से अलग' आदि उपन्यास भी आधुनिकता के झोंके में लिखे गए हैं–ठीक उसी प्रकार जैसे मार्क्सवादी झोंके में लिखी गई रचनाएँ। आज के जीवन-सत्य की आंशिक झलक देते हुए भी इन्हें चुकी हुई संभावनाओं के उपन्यास कहा जाएगा। आधुनिकता के कुछ चुनिंदा नुस्खों, अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ मुहावरों, ज्याँ जेने सादे, कामू, काफ्का की भंगिमाओं के आधार पर लिखे गए इन उपन्यासों को देखने पर निराशा ही हाथ लगेगी। इनमें मोहन राकेश का 'अँधेरे बंद कमरे' ही ठीक-ठिकाने का उपन्यास माना जाएगा। अपनी विषय-वस्तु और तटस्थता में 'मछली मरी हुई' भी विशिष्ट है।

नरेश मेहता का उपन्यास 'यह पथ बंधु था' तथा 'नदी यशस्वी है' रचनात्मक स्तर पर आधुनिक हैं, पर उनमें न तो आधुनिकतावादी नुक़ते हैं, न अकेलेपन की गुहार है और न ही आधुनिकता के भाषायी मुहावरे। 'यह पथ बंधु था' प्रेमचंद की परपंरा का ऐसा उपन्यास है जिसमें मूल्यों के प्रति निष्ठावान् व्यक्तियों का टूट जाना उनकी नियति है। टूटे मूल्यों के आधार पर ही नए मूल्यों की परिकल्पना संभव है, पर इस उपन्यास की त्रुटि यह है कि यह रोमांस से मुक्त नहीं हो सका है। **श्रीलाल शुक्ल**-कृत 'राग दरबारी' रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से संबद्ध है, फिर भी यह आंचलिक नहीं है। इसमें स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का, जो नारों के रूप में ही जीवंत हैं, गहरा मखौल उड़ाया गया है। इसे ऐंठी हुई रोमैंटिकता या ऐंठी हुई आधुनिकता भी कहा जा सकता है। पुनरावृत्ति इस उपन्यास की कमजोरी है। इसमें उपलब्ध व्यंग्य को अच्छा मज़ाक तो कह सकते हैं, पर उससे गहरी व्यथा का आक्रोश उत्पन्न नहीं होता।

आधुनिकता-बोध के उपन्यासों की उपर्युक्त परंपरा में 'लाल टीन की छत' (निर्मल वर्मा) और 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) भी काफी प्रसिद्ध हैं। इनमें कहीं वैयक्तिक, तो कहीं पारिवारिक-सामाजिक विषमताओं का

नोट

मुखर विरोध मिलता है। इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी उपन्यासकारों की एक लंबी कतार है जिसमें भीष्म साहनी (तमस), रामकुमार भ्रमर, कृष्ण बलदेव वैद, गिरिराज किशोर (जुगलबंदी), शिवानी, कृष्णा सोबती (डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजा), उषा प्रियंवदा (पचपन खंभे लाल दीवारें), रमेश बक्षी (अठारह सूरज के पौधे) लक्ष्मीकांत वर्मा, मधुकर गंगाधर, जगदंबाप्रसाद दीक्षित (मुर्दाघर), आरिगपूडि बालशौरि रेड्डी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. शेखर की तुलना में भुवन की क्या कृत्रिम, आरोपित और अविश्वसनीय है?
   (क) तेजस्विता (ख) पारदर्शिता
   (ग) अधर्मिता (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
5. जैनेंद्र और अज्ञेय फ्रायड के .... से प्रभावित हैं, तो इलाचंद्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से।
   (क) मत (ख) चमत्कार
   (ग) आविष्कार (घ) मनोविज्ञान
6. नये ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ग्रहण करनेवालों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, ...और रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय हैं।
   (क) मुशी प्रेमचंद (ख) वृदांवन लाल वर्मा
   (ग) अमृत लाल नागर (घ) यशपाल
7. क्या द्विवेदी जी के .... इतिहास के तत्थों पर आधारित है?
   (क) प्रयास (ख) काव्य
   (ग) उपन्यास (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

15.1.5 कहानी

कविता और कहानी छायावादोत्तर काल की केंद्रीय विधाएँ रही हैं जिनको लेकर बहुत-से साहित्यिक आंदोलन हुए, गोष्ठियाँ हुईं और पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक निकले। इसका मुख्य कारण यह है कि इन दोनों ने समकालीनता को गहरे अर्थ में रेखांकित करने का प्रयास किया और जीवन की जटिलताओं को उनकी समग्रता में आँकने की कोशिश की। नई कविता के वजन पर कहानी को भी 'नई कहानी' कहा जाने लगा और फिर, सचेतन कहानी तथा 'अ-कहानी' आंदोलन भी चलाए गए। छायावाद-युग के अनंतर हिंदी-कहानी में आरंभ में प्रगतिवादी और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं। इसी समय आधुनिकता-बोध की प्रवृत्ति भी उभरी, जिसके प्रमाणस्वरूप भुवनेश्वर की 'सूर्यपूजा' और 'भेड़िए' शीर्षक कहानियों को जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने पल्लवित किया। 1950 ई. के बाद की कहानियों में क्रमश: वैयक्तिकता का दबाव बढ़ता गया। कुछ देर के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति का उल्लास आंचलिक कहानियों में अभिव्यक्त हुआ, पर वह कहानी की विकास-यात्रा का अस्थायी पक्ष था। शीघ्र ही स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख के प्रति रोमानी मोह टूट गया और व्यक्ति एक तरह के कटाव या अलगाव के कठघरे में खड़ा हो गया। छठे दशक में जो तनाव या अलगाव आया वह मूल्यों से पूर्णत: विच्छिन्न नहीं हुआ था, किंतु सन् 1962 में चीन-भारत युद्ध के समय रोमैंटिक सरकार ने हमें अंतिम रूप से मोहमुक्त कर दिया। इसीलिए मार्क्स और फ्रायड के प्रभावों से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया, जिससे सातवें दशक में संत्रास, अलगाव, बेगानेपन और ऊब से संबद्ध कहानियाँ लिखी गईं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, प्रारंभ में प्रगतिवादी विचारधारा प्रमुख होकर आई। इस धारा के प्रतिनिधि कहानीकार **यशपाल** हैं। उन्होंने जहाँ मार्क्सवाद के अनुरूप धन की विषमता पर प्रहार करते हुए भौतिकवादी नैतिक मूल्यों का समर्थन किया, वहाँ उन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव पड़ा। फलत: यौन-चेतना के खुले चित्र भी उनकी कहानियों में मिलते हैं। यशपाल के कहानी-संग्रहों में उल्लेखनीय है—पिंजड़े की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृत चिनगारी, फूलों का कुर्ता, उत्तर की माँ, सच बोलने की भूल, तुमने क्यों कहा कि मैं सुंदर हूँ आदि। कहानी को दृष्टांत के रूप में ग्रहण करते हैं, इसलिए उनकी कहानियाँ बहुत-कुछ पूर्व-नियोजित (कांट्राइव्ड) होती हैं। इस नियोजन का मुख्य आधार विचार और कल्पना है। उनकी रचना-प्रक्रिया प्रेमचंद की रचना-प्रक्रिया से मिलती-जुलती है—दोनों के मन में पहले कोई विचार उठता है; फिर पात्र, स्थिति, घटना आदि को अन्वेषित कर लिया जाता है। पर यशपाल की कहानियों में कथा रस सर्वत्र मिलता है। वर्ग-संघर्ष, मनोविश्लेषण और पैना व्यंग्य उनकी कहानियों की अनन्य विशेषताएँ हैं। किसी सामाजिक अथवा नैतिक रूढ़ि पर प्रहार करते हुए वे पाठकों के रूढ़ संस्कारों पर गहरा आघात करते हैं। शॉक ट्रीटमेंट का यह तरीका प्राय: उनकी प्रत्येक कहानी में मिलेगा।

अज्ञेय ने मुख्यत: व्यक्ति के आत्मसंघर्ष तथा व्यक्ति और परिवेश के संघर्ष का चित्रण किया है। यशपाल जहाँ समाज की विकृतियों के लिए अधिक असामंजस्य तथा वर्गीय दिखावे (हिपोक्रेसी) को उत्तरदायी मानते हैं वहाँ अज्ञेय ने व्यक्ति के अपने नैतिक संघर्ष और दायित्व को उसकी मुख्य समस्या माना है। उनकी प्रारंभिक कहानियों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति उभरी हुई प्रतीत होती है, किंतु 'गैंग्रीन', 'पठार का धीरज' आदि कहानियाँ रोमांस से मुक्त नए यथार्थ पर आधारित हैं। अज्ञेय की भाषा में परिवेश-निर्माण की अद्भुत क्षमता है। बिंबों, प्रतीकों और नाटकीय स्थितियों के चित्रण द्वारा उन्होंने अपनी कहानियों को अर्थ के विभिन्न स्तर दिए हैं। 'विपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमल वल्लरी' और 'ये तेरे प्रतिरूप' उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

इलाचंद्र जोशी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक केस-हिस्ट्री पिरोयी है। इस दिशा में अग्रसर होनेवाले वे अकेले कहानीकार हैं, पर उनकी कहानियों में अधिकतर किताबी सूरतें, किताबी स्थितियाँ और ग्रंथियाँ परिलक्षित होती हैं। इसीलिए उनकी कहानियाँ प्राय: नीरस, असंवेदनीय और अपठनीय हो गई हैं। 'खंडहर की आत्माएँ', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'आहुति' और 'दीवाली' उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। जोशी जी के विपरीत **अश्क** की कहानियों में विविधता के दर्शन होते हैं। यह वैविध्य विषयवस्तु और शिल्प दोनों में है। पर मनोविश्लेषण, प्रतीक, सेक्स आदि के आधार पर लिखी गई कहानियों में फार्मूलाबद्धता अधिक दिखाई देती है। इस तरह की कहानियों में जो गहन मनोवैज्ञानिक पकड़ अपेक्षित होती है, वह **अश्क** में नहीं है। यदि उन्होंने कहानी-लेखन की अपनी खुद की धारा बनाने की चेष्टा की होती—जैसा कि प्रेमचंद, जैनेंद्र और अज्ञेय ने किया है—तो वे 'डाची' और 'कांगड़ा का तेली' जैसी स्वस्थ सामाजिक कहानियाँ लिख सकते थे। वैसे इसमें संदेह नहीं कि क्रियात्मक सामाजिक दृष्टि के कारण उनकी कहानियों में कलात्मक परिपक्वता भी मिलती है।

विष्णु प्रभाकर, कमल जोशी, निर्गुण, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि अपेक्षाकृत नई पीढ़ी के कहानीकार हैं। **विष्णु** नए बनने के प्रयास में भी पुराने संस्कारों को छोड़ नहीं पाते, फिर भी 'धरती अब भी घूम रही है' संग्रह की इसी शीर्षक की कहानी नये बोध के निकट है। कमल जोशी की 'शीराजी' और 'पत्थर की आँखें', अपने समय मे काफी चर्चित हुई थीं, पर इधर नयी कहानी लिखने के प्रयास में उन्हें असफलता ही मिली है। निर्गुण अपनी कहानियों में भावुकता के चित्र उकेरते रहते हैं, तो भैरवप्रसाद गुप्त और अमृतराय की कहानियाँ मार्क्सवादी नुस्खों से बनायी गयी हैं। चंद्रकिरण सौनरिक्सा ने इस दृष्टि से कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। राधाकृष्णन की कुछ कहानियाँ भी थीम के अछूतेपन और पैने व्यंग्य के कारण स्मरण की जायेंगी। 'रामलीला' इसी तरह की कहानी है। उन पर वनफूल का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

परंपरा का नया मोड़—रोमैंटिक यथार्थ : सन् 1950 के बाद की हिंदी-कहानियों में दो विरोधी स्वर सुनायी पड़ते हैं—मूल्यवादी स्वर और विघटित मूल्यों के परिवेश में चीख, त्रास या बदले हुए रिश्तों का स्वर। छठे दशक में पहला स्वर मुख्य रहा और नये बदलाव का सूचक दूसरा स्वर सातवें दशक की विशेषता है। लंबे संघर्ष के बाद सन् 1947 में देश के स्वतंत्र होने पर हिंदी-कहानियों में भी इस नये उल्लास और नवीन आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हुई। नये मूल्यवाले चरित्रों की सृष्टि की जाने लगी, जिनका महत्त्व इसलिए है कि वे किसी-न-किसी

नोट

संघर्ष से संपृक्त हैं। इसे प्रेमचंद की परंपरा का नया मोड़ माना जा सकता है। साथ ही जैनेंद्र और अज्ञेय के प्रभाव को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु जहाँ उनमें मनोविश्लेषण और अवसाद की मुख्यता है, वहाँ छठे दशक की कहानियाँ आत्मसंघर्ष और नाटकीय तनाव के कारण उनसे अलग हो जाती हैं। इस दशक की कहानियों को लेकर बहसें और आंदोलन भी कम नहीं हुए। सन् 1955 में 'कहानी' पत्रिका के प्रकाशन ने इस दौर को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया; और 1956-57 में तो नयी कविता के वजन पर इसका नाम भी 'नयी कहानी' रख दिया गया।

क्या आप जानते हैं	छायावाद-युग के अनंतर हिंदी-कहानी में आरंभ में प्रगतिवादी और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं।

छठे दशक में ग्रामांचल की कहानियों ने ही पहले ध्यान आकृष्ट किया। इसके साथ-साथ कस्बों और नगरों की कहानियाँ भी लिखी गयीं, किंतु इन्हें एक-दूसरे की प्रतिक्रिया में रचित मानना उचित नहीं है। फिर भी, जिन अंचलों से कहानी की विषयवस्तु ली जाती है, उनका प्रभाव उसके रूपायन (फॉर्मेशन) पर पड़ता ही हैं। ग्रामांचल के कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु के नाम मुख्य हैं। इनकी कहानियों में गाँव की मिट्टी की जो सोंधी महक और गाँव के लोगों का जो जीवन देखने को मिला; वह जैनेंद्र और अश्क की परंपरा की कहानियों से भिन्न था। इसके पहले गाँव अपने परिपार्श्व की पूर्णता में चित्रित नहीं हो पाये थे, किंतु इन लेखकों ने गाँव के जो चित्र या चरित्र प्रस्तुत किये, वे मूलत: रोमैंटिक थे। ये लेखक स्वयं अपने-अपने गाँवों से शहरों में आ गये थे, इसलिए पीछे छूटे हुए गाँव की यादों का रूमानियत से भर उठना स्वाभाविक था। शिवप्रसाद सिंह की प्रारंभिक कहानियाँ प्राय: अतीतोन्मुख हैं। दादा, दादी, भाई आदि के माध्यम से उन्होंने जिन ध्वंसोन्मुख मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है, वे एक ओर जहाँ रोमैंटिक हैं वहाँ पूर्वजों के मूल्यगत प्रतिमानों ने उन्हें मोहग्रस्त भी बना दिया है पर यह यथार्थ उनका भोगा हुआ न होकर केवल देखा या सुना हुआ है। किंतु जहाँ वे अतीतोन्मुख नहीं हैं वहाँ उनकी कहानियाँ अधिक यथार्थपरक रही हैं। उन्होंने प्राय: परिवार के भीतर पैठकर अंतर्वैयक्तिक संबंधों का विश्लेषण किया है। 'आरपार की माला', 'मुर्दा सराय', 'इन्हें भी इतंजार है' आदि उनके कहानी-संग्रह हैं। मार्कण्डेय की ग्रामांचल की कथाओं में भी शुरू में अतीतोन्मुखता ही दिखाई पड़ी। 'गुलरा के बाबा' और 'हँसा जाई अकेला' में अतीत के प्रति रोमानी दृष्टिकोण अख्तियार किया गया है। बाद में उन्होंने गाँवों में उगते हुए वर्ग-संघर्ष को पहचानने और चित्रित करने की भी कोशिश की। शहरी जीवन से संबद्ध कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं, पर ऐसा लगता है कि यह विषय-वस्तु उनके घेरे के बाहर है। 'महुए का पेड़', 'हँसा जाई अकेला', 'भूदान', 'माही' आदि उनके प्रकाशित कहानी-संग्रह हैं। रोमैंटिक यथार्थ का सर्वाधिक चटकीला, समग्र और आत्मीयतापूर्ण रंग रेणु की कहानियों में मिलता है। वे आदिम रसगंधों के कथाकार हैं। गाँव की धूल-माटी, आँगन की धूप, बैलों की घंटियाँ, धान की झुकी हुई बालियाँ, गमकता चावल, मेला-ठेला, हँसी-ठिठोली आदि के वर्णन में गाँव ही नहीं, पूरा अंचल उभर आता है। इस दृष्टि से 'लाल पान की बेगम' और 'तीसरी कसम' विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

ग्रामांचल से हटकर भी परंपरा के इसी मोड़ पर रांगेय राघव, भीष्म साहनी, शेखर जोशी, अमरकांत, श्रीमती विजय चौहान, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, शानी आदि आते हैं। इन्होंने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाया है। शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' रोमानी स्पर्श से रिक्त न होते हुए भी अधिक यथार्थ है, अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक' आधुनिकता-बोध के जीवंत आयाम को छूती है, पर रांगेय राघव की 'गदल' संघर्षशील मूल्यों के कारण श्लाघ्य होते हुए भी अतिनाटकीय हो गई है।

युगीन संक्रमण और तनावों की स्थितियाँ—आलोच्य अवधि के कहानीकारों ने एक ओर पुराने मूल्यों के प्रति रोमानी दृष्टि की अभिव्यक्ति की, तो दूसरी ओर युगीन संक्रमण के अधिकाधिक दबाव का अनुभव भी किया। इस दबाव के फलस्वरूप तनाव, मूल्यों की तलाश और विविध संदर्भों की कहानियाँ लिखी गईं। मोहन राकेश

तनावों के कहानीकार हैं, राजेंद्र यादव की कहानियों में वैयक्तिकता पर सामाजिकता हावी रहती है और कमलेश्वर तनावों के बीच मूल्यान्वेषण के लिए सचेष्ट रहते हैं। **मोहन राकेश** की कहानियों में 'मलबे का मालिक' को विशेष ख्याति मिली। यह सन् 1947 के भारत-विभाजन के फलस्वरूप पैदा हुई मनः स्थिति पर आधारित है। देश के विभाजन की परिणति व्यापक रक्तपात में ही नहीं हुई, बल्कि दो संप्रदायों के बीच दुराव, संदेह, त्रास, डर, घृणा आदि मानसिक अवधारणाओं में भी हुई। अज्ञेय, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, अश्क आदि ने भी इस विषय पर कहानियाँ लिखीं, किंतु जहाँ अज्ञेय की कहानियाँ फार्मूलों पर टिकी हैं, विद्यालंकार की कहानी 'एक और हिंदुस्तानी का जन्म हुआ' दर्द को उभारने में असफल रही है और अश्क की 'टेबुल लैंड' रोमैंटिक भावुकता से पूर्ण आदर्शवादी कहानी बनकर रह गई है, वहाँ 'मलबे का मालिक' के रचाव में अपेक्षित सांकेतिक और तनाव है। पर राकेश की प्रतिनिधि कहानी 'एक और जिंदगी' है। यह आज के ट्रेजिक तनाव को पूरी गहराई में आँकती है—मनुष्य न तो छूटी हुई जिंदगी को छोड़ पाता है और न चुनी हुई जिंदगी को अपना पाता है, अपितु दोनों ओर खींचा जाकर क्षत-विक्षत हो जाता है। राकेश की जिन कहानियों में सामाजिकता-वैयक्तिकता का तनाव नहीं है, वहाँ ठहराव आ गया है। 'जख्म' और 'ठहरा हुआ चाकू' ऐसी ही कहानियाँ हैं। उनके कहानी-संग्रह हैं—नए बादल, जानवर और जानवर, एक और जिंदगी आदि।

राजेंद्र यादव की कहानियों में आधुनिक भाव-बोध को व्यापक सामाजिकता से संदर्भित करने की कोशिश मिलती है। उन्होंने निर्वैयक्तिकता पर विशेष बल दिया है और 'एक समानांतर दुनिया' बनाने की चेष्टा की है, किंतु इस समानांतरता ने कहानियों को व्यक्तित्व भले ही दिया है, पर इसी के कारण वे असंप्रेषित रह गई हैं। यादव 'ह्विल विदिन ह्विल' के कहानीकार हैं, फलस्वरूप उनकी कहानियों में उलझाव आ जाता है जिसका एक कारण यह भी है कि वे मूलतः औपन्यासिक चेतना के कथाकार हैं। 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'अभिमन्यु की आत्मकथा', 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'किनारे से किनारे तक', 'प्रतीक्षा', 'टूटना और अन्य कहानियाँ', 'अपने पार' आदि उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। **कमलेश्वर** की कहानियों में युगीन संक्रमण का मूल्यान्वेषी स्वर मिलता है। उनकी विकास-यात्रा में बोध के विभिन्न संदर्भ और जीवन के विविध आयाम दिखाई देंगे। उदाहरणार्थ, 'देवा की माँ' में पुरानी पीढ़ी के जीवन का सशक्त चित्रण हुआ है, तो 'नीली झील' में मानवीय संवेदना को उसकी विस्तृति में लिया गया है। 'खोई हुई दिशाएँ' आज के महानगरीय बोध, अकेलेपन और बेगानगी की ट्रेजेडी है, तो 'मांस का दरिया' में 'यामा द पिट' की झाँकी मिल सकती है। कमलेश्वर इस काल-खंड के अत्यंत सशक्त कहानीकार हैं। यह शक्ति रूमानियत से अलग होने और भाषा-संरचना संयम में निहित है। संपूर्ण संरचना में इतनी निःसंगता किसी अन्य कहानीकार में नहीं आ पाई है।

कवि-कहानीकार—आलोच्य काल में नरेश मेहता, रघुवीर सहाय (रास्ता इधर से भी है), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण, रामदरश मिश्र (खाली घर, एक वह) आदि ने अपने-अपने ढंग की कहानियाँ लिखी हैं। कविता का अभ्यासी साहित्यकार जब कहानी-लेखन की ओर उन्मुख होता है तो यह आशंका बराबर बनी रहती है कि कहीं कविता कहानी पर हावी न हो जाए। नरेश मेहता की 'तथापि', 'निशाजी' आदि पर काव्यगत रोमानियत की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर के संबंध में भी यह कम सच नहीं है। 'भारती ही ऐसे कवि-कथाकार हैं जिन्होंने कविता से कहानी को अलग करने की चेष्टा की है। यह चेष्टा 'गुलकी बन्नो', 'सावित्री नं. 2' और 'बंद गली का आखिरी मकान' में स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। इन कहानियों में आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर जाने के लिए कथा-तत्व की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। 'गुलकी बन्नो' पर रोमानियत का आरोप लगाया जाता है, पर इसमें जिस परिपार्श्व और परिवेश को लिया गया है वह विश्वसनीय और यथार्थ है। एक विशेष स्थिति में समूचे टोले-मुहल्ले का दर्द उभारा गया है—गुल-गपाड़े, व्यंग्य-विनोद तथा विद्रूप-बौछारों की पृष्ठभूमि में यह दर्द उन मानवीय मूल्यों को चित्रित करता है जो औद्योगिक सभ्यता में आज भी सुरक्षित हैं, दुर्लभ हैं।

लेखिकाओं का संसार—मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, शिवानी, उषा प्रियंवदा, रजनी पन्निकर, मेहरुन्निसा परवेज, विजय चौहान आदि कहानी-लेखिकाओं का अपना संसार है जो किसी सीमा तक पुरुषों के संसार से अलग है। सामान्यतः स्त्रियों का संसार पुरुष-संसार से किंचित् भिन्न होता है, किंतु इन लेखिकाओं ने इस भिन्नता को कुछ

नोट

कम करने की चेष्टा की है। फिर भी, जहाँ मन्नू भंडारी (कृषक), सोबती और शिवानी (पुष्पहार) ने आधुनिक नारी की मन:स्थिति, पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के संबंध आदि विषयों को लेकर अनुभव के सीमित दायरे के अंतर्गत कहानी-रचना की है; वहाँ उषा प्रियंवदा में वैविध्य और आधुनिक जीवन के अनेक आयाम दिखाई पड़ते हैं। इनकी कहानियों को सातवें दशक का पूर्ववर्ती रूप मानना चाहिए।

मन्नू ने बड़ी ही ईमानदारी के साथ नारी के मन में उठनेवाले भावों, स्थिति विशेष के मन में जगनेवाली शंकाओं, ईर्ष्याओं आदि को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' और 'यही सच है' उनके कहानी-संग्रह हैं। कृष्णा सोबती सेक्स-जन्य भावुकता को ही उभारकर रह जाती हैं। शिवानी की कहानियों में सेक्स भी है और किसी सीमा तक नारी-मनोविज्ञान को आधुनिक जीवन के नए आयामों में देखने की इच्छा भी है। वातावरण को उसकी संपूर्ण संवेदना के साथ उभारने में शिवानी को विशेष सफलता मिली है। उषा प्रियंवदा आधुनिकता-बोध की कहानीकार हैं। उनका बोध भी नया है और भाषा भी अपेक्षाकृत संयमित है। वे न कमजोर लड़की की कहानी कहती हैं और न भवाविष्ट क्षणों की सच्चाई को सच्चाई मानती हैं, अपितु उन्होंने विशेष परिस्थितियों में अकेलेपन, बेबसी, हार और लाचारी की मानवीय नियति को आकलित किया है। 'जिंदगी और गुलाब के फूल' तथा 'एक कोई दूसरा' उनके कहानी-संग्रह हैं।

चीख, क्षण, मूड और मिथक–छठे दशक के अंत में उभरनेवाली और सातवें दशक के आरंभ में पूरी तरह छा जानेवाली कहानी-लेखन की इन प्रेरक स्थितियों की गूँज अनेक कहानीकारों में मिलती है। निर्मल वर्मा ने इसके लिए हिंदी-कहानी की परपंरा को छोड़कर अपने को पाश्चात्य परंपरा से जोड़ा है। फलस्वरूप उनकी कहानियाँ अपनी भूमि, अपने देश की परंपरा, यहाँ की गरीबी और जहालत से कटकर रोमानी रुचि से ओत-प्रोत है। 'परिंदे' कहानी-संग्रह की इसी शीर्षक की रचना और 'लवर्स' ऐसी ही कहानियाँ हैं। सूराखी परिवेश उनकी कहानियों में इतने विविध रूप-रंगों में उभरता है कि उनकी प्रारंभिक कहानियाँ छायावादी कविता के निकट पहुँचकर एक ''रोमैंटिक एगोनी'' की अभिव्यक्ति करती हैं। पर 'लंदन की एक रात' और 'कुत्ते की मौत' उनकी कहानियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनमें जीवन की अनिश्चितता, घुटन, निरर्थकता, रंगभेद और बेगानगी को जिस संपृक्तता में उठाया गया है वह किन्हीं स्वीकृतियों या प्रतिबद्धताओं की ओर भी संकेत करती हैं।

आधुनिकता-बोध को लेकर कहानी लिखनेवालों में रामकुमार, विजय चौहान और राजकमल चौधरी का उल्लेख भी आवश्यक है। कथाओं, घटनाओं और चरित्रों द्वारा निर्मित होनेवाली कहानियों के पिछले ढाँचे को तोड़ते हुए इन्होंने जिंदगी के छोटे-छोटे टुकड़ों, तेजी से बदलते हुए दृश्यों, छोटी-छोटी घटनाओं और अर्थपूर्ण प्रतीकों द्वारा युगीन जीवन को रेखांकित किया है। जिसके लिए इन्होंने अपने को प्रतिबद्धताओं से मुक्त रखने की यथासंभव कोशिश की है। श्रीकांत वर्मा की कहानियों को ब्रेन ट्यूमर की कहानियाँ कहा जा सकता है, किंतु यह ट्यूमर प्राय: प्रेम के चारों ओर चक्कर लगाता है। उनकी कहानियों में स्थिति की अनिर्णयात्मकता, एकचित्तता का अभाव, बेहद बेचैनी आदि हैं जिसका अर्थ यह भी है कि अभी वे रोमानियत को नहीं छोड़ पाए हैं और न उसे अस्वीकार करके यथार्थ को प्राप्त कर सके हैं।

सातवें दशक को मोहभंग कहना उचित होगा। इस दशक के कहानीकरों ने रोमांस-मुक्त होकर नए यथार्थ का साक्षात्कार किया। मूल्यों के पूर्ण विघटन के साथ-साथ व्यक्तित्वों का खंडित होना स्वाभाविक था, जिसकी झलक सबसे अधिक नेतृत्व में दिखाई पड़ी। मूल्यहीनता की चरम परिणति कांग्रेस के विभाजन में हुई, यों सन् 1962 में चीन के हमले के समय ही मोहभंग हो चुका था। पुरानी पीढ़ी के प्रति क्षोभ-आक्रोश का समारंभ यहीं से हुआ। बुद्धिजीवी वर्ग का संकट और भी गहरा था। उसकी आवाज सुननेवाला कोई भी नहीं था। पुरानी पीढ़ी से संवाद की कोई स्थिति ही नहीं रह गई। अकेलेपन और निर्वासन का एहसास गहरा हो गया, किंतु इनकी अपेक्षा ऊब की स्थिति अधिक उभरी। वैसे यह स्पष्ट ही है कि अकेलेपन और निर्वासन में जहाँ गहन रचनात्मक दृष्टिकोण है, वहाँ ऊब में विघटनात्मक और सतही विद्रोहात्मक रवैया अधिक दिखाई पड़ता है। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, गिरिराज किशोर, रवींद्र कालिया, महेंद्र भल्ला, ज्ञानप्रकश, काशीनाथ सिंह आदि इस दशक के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं।

नोट

ज्ञानरंजन अपनी वस्तुनिष्ठता, संतुलन और संयम के कारण सबसे अलग और विशिष्ट हैं। 'फेंस के इधर और उधर' में संगृहीत कहानियाँ इसकी परिचायक हैं। दूधनाथ सिंह-कृत 'रक्तपात' में कटाव, अलगाव और निर्वासन चरम सीमा पर पहुँच गया है। उनकी कहानियाँ अनायास ही इस विचार को जन्म देती हैं कि जहाँ एक समय ऐसा था जब आदर्श चरित्र निर्मित होते थे, दूसरा समय ऐसा आया जब प्रामाणिक चरित्र निर्मित किए जाने लगे; वहाँ एक समय यह भी है जब अभिशप्त चरित्रों की सृष्टि होने लगी है। गंगाप्रसाद विमल की कहानी 'एक और विदाई' में भी गुमशुदा पहचान की तलाश है, पर यह कहानी सिद्धांत के जाल में उलझकर कहानीपन खो देती है। बदले हुए रिश्तों को लेकर जो कहानियाँ लिखी गईं उनमें से अधिकांश में दो पीढ़ियों की टकराहट दिखाई पड़ती है। विमल की 'प्रश्नचिह्न' और ज्ञानरंजन की 'पिता' ऐसी ही कहानियाँ हैं।

गिरिराज किशोर आज की परिस्थितियों में निर्णय न ले सकने वाले उन व्यक्तियों के कहानीकार हैं जो तिलस्म में फँसे हुए हैं और बंद होने वाली दिशा में दरवाजा खोलते हैं। 'पेपरवेट' में संकलित कहानियों में उन्होंने बाबू तबके के अंतर्विरोध और विसंगतियों को चित्रित किया है, पर प्रायः वे अपने संदर्भों में ही ठिठककर रह गए हैं। रवींद्र कालिया की कहानियों में स्पष्टतः रोमांस विरोधी मुद्रा दिखाई पड़ती है। वे हर तरह की शिष्टता (डिसेंसी) और अभिजात्य का मजाक उड़ाते हैं। किसी अन्य लेखक ने विदूषकीय मुद्रा और विडंबना को इस मात्रा में अपनी रचना का आधार नहीं बनाया है। सब मिलाकर उनकी कहानियों में ऊब (बोरडम) के चित्र ही अधिक मिलते हैं। अपने भाषायी सामर्थ्य को मूल्य-चेतना से जोड़ पाने में भी वे विफल रहे हैं। महेंद्र भल्ला-कृत 'एक पति के नोट्स' में आत्मनिर्वासन का वह दर्द है जिसे वह खुद झेलता है। जिस जिंदगी को वह नहीं चाहता, वही जीनी पड़ती है। यह उसकी अपनी ही नियति नहीं है, बल्कि आधुनिकता-बोध से संपृक्त प्रत्येक व्यक्ति की नियति है। इसमें नैतिक मूल्यों के लिए कोई स्थान है। 'तीन चार दिन' भी पति-पत्नी के संबंधों को लेकर लिखी गई ऐसी ही कहानी है। ज्ञानप्रकाश की कहानियाँ 'अँधेरे के सिलसिले' में संगृहीत हैं जिनमें जीवन की जड़ता और व्यर्थता को प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। काशीनाथ सिंह की कहानियों में इधर एक नया बदलाव आया है—आधुनिकता से अभ्युदिष्टता की ओर। यह बदलाव उस महत्त्वपूर्ण मोड़ का सूचक है जिसे आठवें दशक का आरंभ कह सकते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण वे अस्वीकार से स्वीकार की ओर उन्मुख हुए हैं। 'चायघर में सत्य', 'चोट' और निबंधों में सही भूमि मिल गई है। जैनेंद्र की दार्शनिकता बहुत-कुछ निजी है; और इस निजीपन के कारण ही उनके निबंध ऊब पैदा नहीं करते। नई अर्थवत्ता के प्रति जागरूक रहने के साथ ही उन्होंने निबंधों में सरसता का भी पूरा ध्यान रखा है। उनके विचारों की विस्तृत सीमा में अनेक प्रकार के विषय समाहित हो जाते हैं। धर्म, राजनीति, संस्कृति, साहित्य, सेक्स, काम, प्रेम, विवाह आदि विषयों पर व्यक्त किए गए उनके विचारों से यह प्रतीत होता है कि वे अपने चतुर्दिक फैली हुई समस्याओं से निरंतर जूझते रहे हैं। 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'सोच-विचार', 'मंथन', 'ये और वे', 'इतस्ततः' आदि उनके निर्बंध-संग्रह हैं। गाँधीवादी होने के कारण वे 'सत्य, अहिंसा, आत्मसमर्पण और हृदय-परिवर्तन' में विश्वास करते हैं। इसलिए बदले हुए जमाने में भी उनकी परिणतियाँ कहीं-कहीं युगानुरूप नहीं बन पातीं। उनके कुछ निबंध, निबंध हैं और कुछ विचारप्रधान, किंतु भाषा की व्याकरणिकता की चिंता उन्होंने कहीं भी नहीं की—अभिव्यक्ति के सहज प्रवाह पर ही उनका बल रहा है। निर्बंध निबंधों में उनकी अंतरंगता दिखाई पड़ती है, तो विचारात्मक निबंधों में वस्तुनिष्ठता। वैसे, वस्तुनिष्ठता में भी निजीपन का रंग है।

हिंदी में प्रभाववादी समीक्षा के अग्रदूत **शांतिप्रिय द्विवेदी** ने समीक्षात्मक निबंधों के अतिरिक्त साहित्येतर विषयों पर निबंध भी लिखे हैं। उनके समीक्षात्मक निबंधों में भी निर्बन्ध निबंधों का स्वाद मिलता है। वे प्रकृति से तरल, आत्मनिष्ठ और भावुक साहित्यकार थे—छायावादी काव्य के मानवीकरण अलंकार! उनकी तरलता, सहृदयता और अंतरंगता के दर्शन उनके निबंधों में सर्वत्र होते हैं। 'संचारिणी' (1939), 'युग और साहित्य' (1941), 'सामयिकी' (1944), 'धरातल' (1948), 'प्रतिष्ठान' (1953), 'साकल्य' (1955), 'आधान' (1957), 'वृंत और विकास' (1951) आदि उनके प्रमुख निबंध-संग्रह हैं। अपने जीवन में वे अभावग्रस्त और उपेक्षित रहे, फिर भी निरंतर साहित्य-साधना में जुटे रहना उनके जीवट का परिचायक है। वे सौंदर्य-संस्कारिता के उपासक थे। संस्कारिता के अभाव में बाह्य उपकरणों द्वारा न तो समाज का कल्याण हो सकता है न व्यक्ति का, ऐसा उनका विश्वास था। प्रगतिशीलता के विरोधी में कभी भी नहीं रहे; पर गरीबी, अभाव और पीड़ा को वे सृजन के मार्ग में बाधक नहीं मानते थे। उनके समीक्षात्मक निबंधों में जगह-जगह सूक्ष्म पकड़ और अंतदृष्टि दिखाई पड़ती है।

नोट

भावुकता और संवेदना के कारण विषय का आत्मीयतापूर्ण प्रतिपादन और भाषा की रागात्मकता उनके निबंधों की सहज विशेषताएँ हैं।

रामधारीसिंह 'दिनकर' भी समय-समय पर महत्त्वपूर्ण निबंध लिखते रहे हैं। अधिकांश निबंधों में उनका विचारक-पक्ष ही अधिक उभरकर आया है, पर कुछ ऐसे निर्बन्ध निबंध भी हैं जो उनके अंतरंग को अधिक उद्घाटित करते हैं। 'अर्धनारीश्वर', 'मिटटी की ओर', 'रेती के फूल', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय सहित्य' आदि उनके निबंध-संग्रह हैं। उनके निबंधों में मानवीय आस्था का प्रतिफलन हुआ है, जिसका मूल आधार या तो मनोवैज्ञानिक है या सांस्कृतिक। पर ये दोनों आधार सहज में ही उनके अपने बन जाते हैं, फलस्वरूप वे अपनी बात को पूर्ण विश्वसनीयता के साथ पाठकों तक संप्रेषित करते हैं। किंतु प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण की रचनाओं पर विचार करते समय उनका कवि अपनी व्यूह-रचना में फँसकर तटस्थ नहीं रह सका, फिर भी ये निबंध उनके स्वतंत्र काव्य-चिंतन और विचारणा के सूचक हैं।

समीक्षात्मक निबंधकारों में वैयक्तिकता का सर्वाधिक संस्पर्श **डॉ. नगेंद्र** के निबंधों में मिलता है। कवि-कल्पना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि उनके व्यक्तित्व के अपरिहार्य अंग हैं। इसीलिए 'यौवन के द्वार पर' प्रभृति निबंधों में व्यक्ति-व्यंजक निबंधों की निर्बंधता और आत्मीयता आ गई है। 'चेतना के बिंब' के निबंधों में भी यह विशेषता समाविष्ट है, फलस्वरूप उनकी भाषा भी राग-दीप्त हो उठी है। समीक्षात्मक निबंधों में भी उनका व्यक्तित्व सर्वत्र परिलक्षित होता है, पर इनमें वैयक्तिकता का रंग कुछ भिन्न है। विषय-प्रतिपादन में उनमें नि:संग आग्रह मिलता है, अथवा यों कहें कि वे अपने ही आग्रह के प्रति नि:संगता बरतते हैं। बार-बार अपने ही से सवाल पूछना और अपनी ही मान्यताओं के प्रति शंकालु हो उठना नि:संगता के अभाव में संभव नहीं है। नि:संगता और आग्रह के बीच की तनावपूर्ण स्थितियाँ ही उनके निबंधों का सृजन कराती हैं। कार्य-कारण की विश्लिष्ट शृंखला, पैने तर्कों और विश्लेषण की अद्भुत क्षमता ने उनके निबंधों को विश्वसनीय बनाने में पूरा योग दिया है। 'आस्था के चरण' उनके निबंधों का बृहत् संग्रह है।

अज्ञेय अपने निबंधों में अपना अनुभूत लिखते हैं–'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद' और 'हिंदी-साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य' में संगृहीत निबंधों में अनुभूत को वैचारिक विश्लेषण मिलता है। 'आत्मनेपद' के निबंध वैयक्तिक संदर्भों में लिखे जाकर भी निर्वैयक्तिक आधुनिक संदर्भों की सृष्टि करते हैं। निजीपन उनकी विशेषता है, तो वही खामी भी है क्योंकि उसी के कारण वे रह-रहकर उपमा और उत्प्रेक्षा के कोष लुटाते चलते हैं। इस प्रकार इसमें भाषायी अलंकरण विचारों का आवरण बन गया है। 'हिंदी-साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य' के अधिकांश निबंधों को उनके चिंतन के अगले चरण के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यहाँ उनकी भाषा में संश्लिष्टता आ गई है, इसलिए विचार भी संश्लिष्ट हो सके हैं। अज्ञेय ने कुछ निबंध 'कुट्टिचातन' के नाम से भी लिखे हैं। कुट्टिचातन के नाम से उनके ललित निबंधों का एक संग्रह 'सब रंग' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ है। अज्ञेय के नवीनतम प्रकाशित निबंध-संग्रह हैं–'आलवाल' (1971), 'भवन्ति' तथा 'लिखि कागद कोरे' (1972)।

नोट्स रामधारीसिंह दिनकर के अधिकांश निबंधों में विचारक पक्ष ही अधिक उभरकर सामने आया है।

साहित्येतर विषयों पर ललित निबंधों की रचना की ओर अनेक लेखक प्रवृत्त हुए हैं। **रामवृक्ष बेनीपुरी** के निबंध 'गेहूँ और गुलाब' (1950) तथा 'वंदे वाणी विनायकौ' (1957) में संगृहीत हैं। 'गेहूँ' भूख का प्रतीक है, तो गुलाब कला और संस्कृति का। मानवीय जीवन में भूख का जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व कला और संस्कृति का भी है। बेनीपुरी जी की भाषा में या तो आवेगमयता है या प्रशांति; उसमें जटिलता कहीं भी नहीं है। **श्रीराम शर्मा** ने शिकार-संबंधी रोचक निबंधों की रचना की है जिनमें साहसिक वृत्तांतों को ग्रामीण पृष्ठभूमि, प्रकृति के ब्योरेवार दृश्यचित्रण और अछूते मानवीय जीवन के मर्मस्पर्शी आयामों में चित्रित किया गया है। **देवेंद्र सत्यार्थी**

नोट

के निबंधों में धरती की सोंधी गंध और लोकजीवन की ताजगी मिलती है, जिसका श्रेय उनकी घुमक्कड़ जिंदगी को है। 'धरती गाती है', 'एक युग-एक प्रतीक' और 'रेखाएँ बोल उठीं' उनके निबंध-संग्रह हैं। घुमक्कड़ी जीवन की निर्बंधता **भदंत आनंद कोसल्यायन** के निबंधों में भी मिलती है। दृष्टांत-कथाओं द्वारा विषय का स्पष्टीकरण, गाँधीवादी दृष्टिकोण और प्रगतिशील राजनीतिक चेतना का समावेश उनके निबंध-संग्रह 'जो भूल न सका' की विशेषताएँ हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने जहाँ 'पृथिवी-पुत्र' तथा 'कला और संस्कृति' के निबंधों में भारतीय संस्कृति के विविध आयामों को विद्वत्तापूर्ण ढंग से उद्घाटित किया है, वहाँ यशपाल ने अपने कथा-साहित्य की भाँति निबंधों में भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया है। समानता और समाजवाद के विरोध में पड़नेवाले धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य आदि की उन्होंने कड़ी भर्त्सना की है। 'चक्कर क्लब', 'देखा सोचा समझा', 'बात बात में बात', 'गाँधीवाद की शव-परीक्षा', 'न्याय का संघर्ष' आदि में उनके शताधिक निबंध संगृहीत हैं। **गुलाबराय** के निबंध 'मन की बातें' (1954) और 'मेरे निबंध' (1955) में संगृहीत हैं, किंतु उनमें निबंध भावुकता के स्थान पर विचारात्मकता अधिक है। **बनारसीदास चतुर्वेदी** के निबंध-संग्रहों–साहित्य और जीवन, हमारे आराध्य–में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। किंतु **माखनलाल चतुर्वेदी**-कृत 'अमीर इरादे-गरीब इरादे' (1960) में भावुकता का प्राधान्य है। **कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर** के निबंधों–'जिंदगी मुस्काई', 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'महके आँगन चहके द्वार' आदि में संकलित–ये भी करुणा, व्यंग्य और भावुकता का लगभग ऐसा ही सन्निवेश मिलता है, किंतु चतुर्वेदी जी की तुलना में उनकी शैली में अधिक स्पष्टता है। **भगवतशरण उपाध्याय** ने 'ठूँठा आम' और 'सांस्कृतिक निबंध में' इतिहास और संस्कृति की पृष्ठभूमि में निबंध लिखे हैं और अश्क के 'मंटो-मेरा दुश्मन' में आत्मीयता और खरापन' दोनो दिखाई पड़ते हैं।

इधर के लेखकों में प्रभाकर, माचवे, विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह, कुबेरनाथ राय, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि के ललित निबंधों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। **माचवे** के 'खरगोश के सींग' में व्यंग्य की जगह विनोद अधिक है। **विद्यानिवास मिश्र** ने ललित निबंधों को गंभीरतापूर्वक लिया है। 'छितवन की छाँह' (1953), 'तुम चंदन हम पानी' (1957), 'आँगन का पंछी और बनजारा मन', 'मैंने सिल पहुँचाई', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आदि में संगृहीत निबंधों में भारतीय सहित्य और संस्कृति को लोकजीवन के साथ जोड़ने का उन्मुक्त प्रयास किया गया है। **भारती** के निबंधों पर पांडित्य का लदाव नहीं है। वे आडंबरहीन भाषा में प्रकृति से गहन सान्निध्य स्थापित कर सकते हैं, दार्शनिक चिंतन कर सकते हैं और हल्के-फुल्के व्यंग्य विनोद द्वारा हिपोक्रेसी का पर्दाफाश करते हुए भी लिख सकते हैं। 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी-अनकहनी', 'पिश्यंती' आदि उनके निबंध-संग्रह हैं। शिवप्रसाद सिंह का 'शिखरों के सेतु' भावात्मक ललित निबंधों का अच्छा संकलन है। विद्यानिवास मिश्र की तरह **कुबेरनाथ राय** भी हजारीप्रसाद द्विवेदी संस्थान के निबंधकार हैं, फर्क यह है कि मिश्र जी द्विवेदी जी के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं जबकि कुबेरनाथ राय उनसे मुक्त होकर नई भंगिमा अपनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। उनके निबंध-संग्रहों–'प्रिया नीलकंठी', 'रस आखेटक', 'गंधमादन' और 'विषाद-योग'–में सांस्कृतिक संदर्भों से फूटते हुए जीवन के आधुनिक आयामों तथा उनमें से झाँकते जीवन को देखा जा सकता है। **ठाकुरप्रसाद सिंह** के निबंधों में व्यंग्य की बड़ी मारक शक्ति है। उन्होंने कड़वे-तीखे भोग को सामाजिक समस्याओं से संदर्भित करते हुए शब्दबद्ध किया है। उनकी भाषा में लाक्षणिकता की जो धारा दिखाई देती है, वह उनके व्यंग्य को दूरगामी और पैना बना देती है। ललित निबंधों की परंपरा को समृद्ध करनेवाले अन्य रचनाकार हैं–विवेकी राय (फिर बैतलवा डाल पर), लक्ष्मीकांत (मैंने कहा), केदारनाथ अग्रवाल (समय-समय पर), लक्ष्मीचंद्र जैन (कागज की किश्तियाँ) आदि।

हास्य-व्यंग्य-लेखकों में **बेढब बनारसी** पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने निबंधों द्वारा इस दिशा में पहल की। यद्यपि उनका उद्देश्य प्रकाश्य रूप में हँसी और विनोद का सृजन था, फिर भी परोक्ष रूप से राजनीतिक और समाज की विसंगतियों पर वे गहरा व्यंग्य करते थे। श्रीनारायण चतुर्वेदी ने भी विनोद शर्मा के छंदनाम से 'राजभवन की सिगरेटदानी' में परिपक्व व्यंग्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। वर्तमान व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई, केशवचंद्र वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, भीमसेन त्यागी, रवींद्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली आदि ने भी काफी संख्या में व्यंग्यात्मक निबंधों

नोट

की सृष्टि की है। इनमें **हरिशंकर परसाई** का नाम प्रमुख है। इनके व्यंग्य सामान्यत: मूल्यगत विसंगतियों से संबद्ध होते हैं—मूल्य चाहे राजनीतिक हों चाहे सांस्कृतिक या पीढ़ीगत। 'भूत के पांव', 'सदाचार का ताबीज' और 'निठल्ले की डायरी' में उनके व्यंग्य-लेख संगृहीत हैं। केशवचंद्र वर्मा, रवींद्रनाथ त्यागी प्रभृति लेखकों ने व्यंग्य-लेखन की यही पद्धति अपनाई है। सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए इन्होंने कहीं नाटकीय ढंग अपनाया और कहीं अपने विचारों को वैयक्तिक धरातल पर उन्मुक्त ढंग से प्रस्तुत किया है।

समीक्षात्मक निबंध की रचना भी इधर बहुल परिमाण में हुई है, किंतु इस दिशा में निबंधकारों की उपलब्धियों का मूल्यांकन छायावादोत्तर हिंदी-आलोचना के संदर्भ में ही उचित होगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

8. छठे दशक में ग्रामांचल की कहानियों ने ही पहले ध्यान आकृष्ट किया।
9. नरेश मेहता की तथापि, निवाजी आदि पर काव्यगत रोमानियत की स्पष्ट छाप नहीं देखी जा सकती।
10. सातवें दशक के कहानीकारों ने रोमांस-मुक्त होकर नए यथार्थ का साक्षात्कार नहीं किया।
11. संस्कारिता के अभाव में बाह्य उपकरणों द्वारा न तो समाज का कल्याण हो सकता है न व्यक्ति का ऐसा उनका विश्वास था।
12. साहित्योत्तर विषयों पर ललित निबंधों की रचना की ओर अनेक लेखक प्रवृत हैं।

15.2 सारांश (Summary)

- कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा नये प्रतीक, उपमान अथवा बिंब ही प्रयुक्त नहीं हुए, अपितु फ्लैशबैक, चेतना-प्रवाह आदि शैलियों का भी प्रयोग किया गया। कथानक को गौण मानने तथा पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने की प्रवृत्तियों के फलस्वरूप वर्तमान लेखक मानव-मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनों को अभिव्यक्त करने में सफल हो सके हैं। समग्रत: इस युग का गद्य-साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध है।
- हिंदी-साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का विकास मंद गति से हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं, एक तो मंच का अभाव और दूसरा, स्वयं इस विधा का अपना स्वरूप। दूसरे तथ्य को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। नाटक का सीधा संबंध समूह, जाति और देश से होता है। यदि आज की बहुत-सी कहानियों, उपन्यासों और कविताओं का अनुवाद कर दिया जाए; तो वे कथ्य और रूप-विन्यास में विदेशी लगने लगेंगे। किंतु एक भी नाटक ऐसा नहीं मिलेगा जिसके संबंध में यह कहा जा सके। अन्य विधाओं को पाठक की उतनी चिंता नहीं रहती, पर नाटककार के सामने सामाजिक सरोकार बराबर बना रहता है।
- समीक्षात्मक निबंध की रचना भी इधर बहुल परिमाण में हुई है, किंतु इस दिशा में निबंधकारों की उपलब्धियों का मूल्यांकन छायावादोत्तर हिंदी-आलोचना के संदर्भ में ही उचित होगा।

15.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सर्वथा**–हमेशा, सदैव बिलकुल, हर तरह से, अत्यंत आदि
2. **मंद प्रगति**–धीमी उन्नति
3. **निस्सहायों**–जिनकी मदद करने वाला कोई न हो

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. नाटक से क्या अभिप्राय है? विस्तार से समझाएँ।
2. एकांकी नाटक के विकास में विभिन्न एकांकी लेखकों की रचनाओं एवं योगदान का समीक्षात्मक वर्णन करें।
3. प्रेमचंदोत्तर उपन्यास लेखन परंपरा के विकासक्रम का मूल्यांकन करें।
4. ऐतिहासिक उपन्यास का विस्तृत वर्णन करें।
5. टिप्पणी लिखें–

   (क) मनोवैज्ञानिक उपन्यास (ख) प्रयोगशील उपन्यास
6. कहानी का क्या अभिप्राय है? कहानी के विविध रूपों एवं भावों की विस्तृत व्याख्या करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. हिंदी-नाटक	2. पक्षपाती	3. एकांकियों	4. (क)
5. (घ)	6. (घ)	7. (ग)	8. सत्य
9. असत्य	10. असत्य	11. सत्य	12. सत्य

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।*
2. हिंदी साहित्य का इतिहास–*टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।*
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*

नोट

इकाई–16: आधुनिक युग का गद्य साहित्य

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
16.1 उपन्यास
16.2 कहानी
16.3 कविता
16.4 आलोचना
16.5 नाटक, फिल्म, व्यंग्य
16.6 स्त्री-दलित विमर्श
16.7 आत्मकथा, जीवनी, डायरी, पत्र, साक्षात्कार और यात्रा वृत्तांत
16.8 ग्रंथावली/रचनावली/संचयन
16.9 सारांश (Summary)
16.10 शब्दकोश (Keywords)
16.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
16.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आधुनिक युग के गद्य साहित्य को समझने में।
- आधुनिक युग के उपन्यास, कहानी, कविता को समझने में।
- आधुनिक युग की आलोचना, नाटक, फिल्म, व्यंग्य तथा स्त्री-दलित विमर्श को जानने में।
- आधुनिक युग की आत्मकथा, जीवनी, डायरी, पत्र साक्षात्कार और यात्रा वृत्तांत को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अब जब तेजी से दुनिया बदल रही है, कहानी का पारंपरिक स्वरूप नहीं बदले यह हो ही नहीं सकता। इसलिए भी कि कविता और कहानी ही जीवन के सबसे निकट होती है। कविता से असंतुष्ट कुछ कवि तेजी से कहानी की ओर लपके। उनमें कुछ तो ठीक-ठाक रहे, बाकी ने फार्मूलाबद्ध कहानियाँ लिखना शुरू किया संपादकों की मांग और उनकी मानसिकता के आधार पर। जयश्री राय की इधर प्रकाशित कई कहानियों को पढ़कर सुखद आश्चर्य होता है।

16.1 उपन्यास

नोट

सत्ता में राजनीतिक पार्टियों के वर्चस्व बनाए रखने के लिए जोड़-तोड़ की कोशिश की तरह साहित्यिक विधाओं में भी वर्चस्व की लड़ाई चलती रहती है। विधाएँ प्रायः अपना रूप-रंग बदलती रहती हैं–भाषा और शिल्प के स्तर पर कभी कविता साहित्य के केंद्र में आ जाती है तो कभी कथा साहित्य। कभी कविता कहानी बन जाती है तो कभी कहानी कविता या उपन्यास या महाकाव्य। इस सच्चाई के बावजूद कि हाल के वर्षों में कविता और कथा साहित्य में काफी तोड़-फोड़ हुई है। चूँकि साहित्य का स्रोत जीवन-समाज होता है, न विषयवस्तु और न ही रचना की अंतर्वस्तु बदलती है। यह बात अलग है कि एक अच्छा साहित्यकार अपने समय के देश-काल में यथार्थ का अन्वेषण करता है, संवेदना के धरातल पर।

पिछले वर्ष डेढ़-दो दर्जन उपन्यास प्रकाशित हुए बुजुर्ग, वयस्क और युवा लेखकों के इन उपन्यासों में लगभग आधा दर्जन उपन्यास रेखांकित करने योग्य हैं। इन उपन्यासों की विषयवस्तु में विविधता ही नहीं, अतीत और वर्तमान की संश्लिष्ट जटिलताओं का ऊहापोह भी है, इनमें इतिहास, संस्कृति, भूमंडलीकरण से उत्पन्न पूंजीवाद का संकट के साथ हाशिए पर रह रहे लोगों का जीवन-संघर्ष भी है, सबसे अच्छी बात यह है कि इनमें हमारे जीवन का राग-रंग भी है। इस साल के उत्तरार्द्ध में नाटककार-उपन्यासकार सुरेंद्र वर्मा का नया उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पदुमपंखुरी की धार से' (भारतीय ज्ञानपीठ) आया। उन्हें 'मुझे चांद चाहिए' से उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्धि मिली लेकिन उनके दूसरे उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, इस उपन्यास पर वरिष्ठ आलोचक डॉ. गोपाल राय की टिप्पणी थी–तीसरा गुलदस्ता लेखक के लिए अपने नए उपन्यास, जो एक दृश्य-काव्याख्यान है, में सुरेंद्र वर्मा ने महाकवि कालिदास के जीवन-संघर्ष को केंद्र में रखा है और पाँच खंडों में विभक्त इस उपन्यास को नई शिल्प प्रविधि में 95 दृश्योच्छ्वासों में लिखा है। चूँकि उन्होंने इस उपन्यास के लिए पर्याप्त शोध किया है इसलिए पूरा विश्वास है कि न केवल यह उपन्यास चर्चित होगा, इससे उन्हें पर्याप्त यश भी मिलेगा।

रवींद्र कालिया अपनी व्यस्तताओं के कारण रचनात्मक लेखन के लिए ज्यादा समय नहीं निकाल पाते 'खुदा सही सलामत है' के बाद उनका दूसरा छोटा उपन्यास 'एबीसीडी' आया और अब तीसरा उपन्यास '17 रानाडे रोड' 2010 में। इस उपन्यास के केंद्र में मुंबई (तब बंबई) के समुद्र तट पर स्थित भुतहा मकान में रहने वाला संपूरन जैसा जीवंत पात्र है, जिसके लिए अतीत नहीं वर्तमान की मौज-मस्ती और रागरंग है, उपन्यास बेहद दिलचस्प है और 'गालिब छूटी शराब' की तरह जीवन जीने और लिखने की सूफियाना शैली अब्दुल बिस्मिल्लाह का नया उपन्यास 'रावी लिखता है' उनके पिछले उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' से आगे जाता है। इस उपन्यास में एक निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की कई पीढ़ियों की जीवन-गाथा है, उपन्यास रोचक है, लेकिन उनके ही उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' का अतिक्रमण नहीं करता। सारा राय अब तक कहानियाँ लिखती रही हैं, 'चील वाली कोठी' उनका पहला उपन्यास है जिसमें उन्होंने बनारस स्थित अनाथालय में रह रही मीनाक्षी के जीवन-संघर्ष को उठाया है, यह उपन्यास इसलिए विशिष्ट है कि इसमें अतीत की परछाइयाँ ही नहीं हैं, अलग-अलग आवाजों में गुंथी स्वप्न, स्मृति और यथार्थ की अनेक परतें भी हैं। उपन्यास की भाषा का आकर्षण विषयवस्तु को ढंकता नहीं है, बल्कि एक नई चमक से भर देता है।

विनोद कुमार श्रीवास्तव हिंदी संसार में 'सच मैंने बनाए नहीं' कविता संग्रह से जाने गए थे। इस वर्ष उनका पहला उपन्यास 'वजह बेगानगी नहीं मालूम है' आया है, जिसमें इतिहास भी है–हमारा वह समय भी, जिसने हमें सांप्रदायिक सौहार्द से अलग किया है। अपनी काव्यात्मक भाषा के कारण भी यह उपन्यास पाठकों का ध्यान आकर्षित करेगा। सुपरिचित कथाकार **तेजिन्दर** का नया उपन्यास 'सीढ़ियों पर चीता' पिछले वर्ष राजकमल प्रकाशन से आया। उनके इस आत्मकथात्मक उपन्यास में कई पार्श्वच्छवियाँ हैं जिनमें एक तरफ अमीर हैं तो दूसरी तरफ हाशिए के लोग, इस उपन्यास के आरंभ में उन्होंने अंग्रेजी कवि टी.एस. इलियट की पंक्तियाँ उद्धृत की हैं जो उपन्यास की संरचना के मेल में हैं। तेजिन्दर बहुत अच्छा लिखते हैं, उनके अनुभव में यथार्थ नहीं, यथार्थ के अनुभव उनकी सृजनात्मकता को धार देते हैं। 'शिगाफ' **मनीषा कुलश्रेष्ठ** का पहला ही उपन्यास है जिसमें उन्होंने कश्मीर-समस्या को केंद्र में रखा है और हिंदू-मुस्लिम समाज में उत्पन्न दरार को संवेदना की चौहद्दी से पाटने की कोशिश की है।

नोट

युवा लेखकों में इधर उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी है, चर्चित कहानीकार कुणाल सिंह का पहला उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि राजनीतिक उपन्यास होते हुए भी इसमें बंगाल के गाँव और गंवई लोगों की मानसिकता, निर्दोषता को बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में बिना शोरगुल मचाए हुए प्रस्तुत किया गया है। पंकज सुबीर का भी यह पहला ही उपन्यास है–'ये वो सहर तो नहीं' जो स्मृति का सिर्फ आख्यान मात्र नहीं, वर्ष 1957 और 2007 के समय की पड़ताल भी है, उपन्यास बेहद रोचक है और पाठक इसे अवश्य पसंद करेंगे।

पिछले वर्ष प्रकाशित अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं–क्रांति कक्का की जन्म शताब्दी (रवींद्र वर्मा), मैंकलुस्की गंज (विकास झा), जलतरंग (सिम्मी हर्षिता), टेम्स की सरगम (संतोष श्रीवास्तव), यहीं कहीं था घर (सुधा अरोड़ा), कृतिका (शुभा वर्मा) और मुखबिर (राजनारायण बोहरे)।

इस वर्ष प्रकाशित फ्रेंच से हिंदी में अनूदित अतिक रहिमी की पुस्तक 'संगेसबूर' उल्लेखनीय है। आज अफगानिस्तान में तालिबानों का कहर किस तरह बरपा किया जा रहा है, उसका लोमहर्षक विवरण है इस उपन्यास में, उपन्यास छोटा है लेकिन दुखद वृत्तांतों से भरा हिलाने वाला, प्रसिद्ध गुजराती उपन्यास 'सरस्वती चंद्र' (गोवर्धन राम माधव राम त्रिपाठी) का डॉ. नवनीत ठक्कर का अनुवाद भी पढ़ने लायक है।

16.2 कहानी

अब जब तेजी से दुनिया बदल रही है, कहानी का पारंपरिक स्वरूप नहीं बदले, यह हो ही नहीं सकता, इसलिए भी कि कविता और कहानी ही जीवन के सबसे निकट होती है। कविता से असंतुष्ट कुछ कवि तेजी से कहानी की ओर लपके, उनमें कुछ तो ठीक-ठाक रहे। बाकी ने फॉर्मूलाबद्ध कहानियाँ लिखना शुरू की। संपादकों की माँग और उनकी मानसिकता के आधार पर जयश्री राय की इधर प्रकाशित कई कहानियों को पढ़कर सुखद आश्चर्य होता है। वस्तुतः कविता हमें संवेदित करती है लेकिन एक अच्छी कहानी हमें उद्वेलित करती है। पिछले दिनों भोपाल से प्रकाशित पत्रिका 'राग भोपाली' में कवि-कहानीकार कुमार अंबुज की 'सनक' कहानी पढ़ी। इस कहानी को पढ़कर पाठक सुदूर अपने बचपन में चला गया। तब प्राथमिक कक्षा के गणित में रत्ती-माशा का हिसाब रहता था। अंबुज की यह कहानी इसलिए भी अच्छी लगी कि इसमें वर्तमान के बीच अतीत की उपस्थिति का विस्मृत सुखद अहसास है।

नोट्स कविता हमें संवेदित करती है लेकिन अच्छी कहानी हमें उद्वेलित करती है।

इस वर्ष ढाई दर्जन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें उल्लेखनीय हैं–यहाँ तक (राजी सेठ), पियरी का सपना (मैत्रेयी पुष्पा), मिट्टी के लोग (एस.आर. हरनोट), कुछ रंग बेनूर (सूर्यनाथ सिंह), यूटोपिया (वंदना राग), एक घर की डायरी (रमेश उपाध्याय), कॉल गर्ल (विमल कुमार), रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ (रणेन्द्र), कब्रगाह का मुनाफा (तेजेन्द्र शर्मा), आखिरी बूंद खुशबू (जाहिदा हिना), भूख तथा अन्य कहानियाँ (सुभाष शर्मा), सरकती रेत (नीलम शंकर), सावंत आंटी की लड़कियाँ और पिंकस्लिप डैडी (गीता चतुर्वेदी), कितनी शीरी हैं तेरे लब की (राजेंद्र राव), शुभारंभ तथा अन्य कहानियाँ (ओमा शर्मा), आगदारी तीली (निरंजन श्रोत्रिय), राजपाट तथा अन्य कहानियाँ (अर्चना वर्मा), किरदार जिंदा है (रेखा किश्तवार) और रेणु की संपूर्ण कहानियाँ।

टास्क हिंदी गद्य साहित्य की कहानी विधा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इसी वर्ष रवींद्र कालिया के संपादन में तीन कहानी संग्रह–हिंदी की श्रेष्ठ कहानियाँ, युवा पीढ़ी की प्रेम कहानियाँ और लोकरंगी प्रेम कथाएँ–आए, जिससे हिंदी कहानी का संसार समृद्ध हुआ। कुछ पत्रिकाओं द्वारा युवा कहानी पर केन्द्रित अंक जिस तरह छप रहे हैं, उससे लगता है कि 'समकालीन कहानी' आज बाजार बन गया है। और कवि भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में–'जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ', आप गीत की जगह कहानी रख लें। कोई फर्क नहीं पड़ता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. भाषा के स्तर पर कभी कविता साहित्य के केंद्र में आ जाती है तो कभी ....।
2. विनोद कुमार श्रीवास्तव .... संसार में 'सच मैंने बनाए नहीं' कविता संग्रह से जाने गए थे।
3. प्रसिद्ध गुजराती उपन्यास 'सरस्वती चंद्र' गोवर्धन राम त्रिपाठी का डॉ. नवनीत ठक्कर का .... भी पढ़ने लायक है।

16.3 कविता

कविता का असली घर संवेदना है और 'शमशेर बहादुर सिंह की प्रतिनिधि कविताएँ' की भूमिका लिखते हुए यदि **डॉ. नामवर सिंह** ने लिखा इस घर में प्रवेश करने में डर लगता है तो गलत नहीं था। कविता हमारे जीवन-समाज की सबसे सघन-संक्षिप्त अनुभूति होती है जिसे पढ़कर हम न केवल उदीप्त होते हैं, बल्कि वह हमारी चेतना को झकझोरती है। 'हंस' के पिछले अंक में एक विदेशी कवि की अनूदित कविता 'झील' की पंक्तियाँ उद्धृत थीं–'लहर बनने में सलिल को क्लेश होता है' कविता हमारे जीवन में गुंथी ही नहीं होती, हमारे समय का उद्घोष होती है।

पिछले वर्ष कविता के लगभग तीन दर्जन संग्रह प्रकाशित हुए। इन संग्रहों में बुजुर्ग कवि भी थे युवा कवि भी। जयपुर के बोधि प्रकाशन ने लगभग राजस्थान के आधा दर्जन कवियों के संग्रह पेपरबैक में दस ₹ मूल्य में छापे हैं, वयोवृद्ध कवि नंद चतुर्वेदी का संग्रह 'जहाँ एक उजाले की रेखा खिंची है' में उनकी लगभग 50 कविताएँ संकलित हैं, लेकिन दुख की बात यह है कि उन्हें हिंदी समाज ने कवि का सम्मान नहीं दिया। बिजेन्द्र वरिष्ठ कवि हैं, उनका नया संग्रह 'भीगे डैनों वाला गरुड़' इसी प्रकाशन से आया है, विजेंद्र अच्छे कवि हैं लेकिन हिंदी समाज ने ठीक से उनके कवि का मूल्यांकन नहीं किया। चंद्रकांत देवताले के इस वर्ष दो कविता संग्रह आए–'आकाश की जात बता भइया' और 'पत्थर फेंक रहा हूँ' (वाणी प्रकाशन) देवताले महत्त्वपूर्ण कवि हैं लेकिन उन पर भी हमने ठीक से ध्यान नहीं दिया। सुदीप बनर्जी अच्छे कवि थे लेकिन उनके जीवन में उनके कवि को हमने सम्मान नहीं दिया, इस वर्ष मरणोपरांत उनके दो संग्रह आए–'उसे लौट आना चाहिए' और 'आसमान का समकालीन'। यह दुखद बात है कि जब कवि नहीं रहता है, हम उसे याद करते हैं। विष्णु नागर बेहद अच्छे कवि हैं, उनका संग्रह 'घर के बाहर घर' भी इसी वर्ष आया। लीलाधर मंडलोई दशकों से कविता की दुनिया में रमे हुए हैं। इस वर्ष उनके कई कविता संग्रह आए–'महज शरीर नहीं पहन रखा था उसने' और लिखे में दुक्ख। मंडलोई की कविता में हमारा समय ही नहीं, समय की बिडंबना और विद्रूपताएँ भी भयंकरता के ग्रंथ सामने लाती हैं। विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर बद्रीनारायण का संग्रह खुदाई में हिंसा, बोधिसत्व का 'खत्म नहीं होती बात' आलाप में गिरह (गीत चतुर्वेदी), इसी हवा में अपनी भी दो-चार साँस है (अष्टभुजा शुक्ल) लोकार्पित हुए।

पिछले वर्ष प्रकाशित अन्य कविता संग्रहों में उल्लेखनीय हैं–द्वाभा (नंदकिशोर नवल/सिद्धिनाथ मिश्र), गहन है यह अंधकारा (उपेन्द्र कुमार), लोग ही चुनेंगे रंग (लाल्टू), नचनिया (रवींद्र भारती), सीढ़ियों का दुख (रश्मि रेखा), वितान (शहंशाह आलम), देखना तुम साँझ तारे को (आलोक श्रीवास्तव) आत्महत्या के पर्याय (वंदना देवेंद्र), कुछ सुनती ही नहीं लड़की (वंदना मिश्रा), जिंदगी का मुकदमा (स्वप्निल श्रीवास्तव), सीढ़ियों पर बैठा

पहाड़ (अश्वघोष), प्रपंच-सार सुबोभनी (हेमंत शेष), इतिहास बन गया (भोलानाथ कुशवाहा), रुकावट के लिए खेद है (किरण अग्रवाल) और कठिन समय में (अमित मनोज)। किताबघर ने कालिदास की कालजयी कृति 'ऋतुसंहार' को भव्य साज-सज्जा के साथ हिंदी (श्याम विमल) और अंग्रेजी (सुनीता जैन) के साथ मूल संस्कृत में प्रकाशित किया।

16.4 आलोचना

आलोचना साहित्य का विवेक है। बेशक, आलोचक साहित्य का दारोगा नहीं होता, लेकिन पढ़ी गई साहित्यिक कृतियों पर उसको फैसला सुनाने का हक हासिल है। यदि आलोचक नहीं होता तो हमें कैसे पता चलता कि कौन कृति अच्छी या बुरी है। यह सच है कि आलोचक रचना/कृति के समानांतर नहीं चलता लेकिन वही हमें बताता है किसी कृति के महत्त्व के बारे में। समकालीन आलोचना को लेकर ढेर सारी शिकायतें और आरोप हैं, फिर भी आलोचना के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। रचनाकार बहुत कुछ नहीं पढ़ता है, जबकि आलोचक के लिए सब कुछ पढ़ना अनिवार्य होता है।

पिछले वर्ष सबसे ज्यादा ओलाचना की पुस्तकें निकलीं। डॉ. नामवर सिंह की एक साथ चार पुस्तकें–हिंदी का गद्य पर्व, प्रेमचंद और भारतीय समाज, कविता की जमीन और जमीन की कविता और जमाने से दो-दो हाथ, आशीष त्रिपाठी ने परिश्रमपूर्वक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी सामग्री और उनके व्याख्यानों को यत्नपूर्वक प्रस्तुत किया। यह इस वर्ष की एक बड़ी उपलब्धि है, इस वर्ष प्रकाशित अन्य पुस्तकें हैं–हाशिया (नंदकिशोर नवल), कहानी समय (कृष्ण मोहन), समकालीनता और साहित्य (राजेश जोशी)। कठिन समय में अगिन सुराख (सं. विश्वरंजन) इस वर्ष 'मन्नू भंडारी : सृजन के शिखर' का संपादन किया सुधा अरोड़ा ने। धनंजय वर्मा पर एकाग्र पुस्तक–शिलाओं पर तराशे मजमून का संपादन भी विश्वरंजन ने किया। इस वर्ष आधुनिक हिंदी उपन्यास के दो खंड निकले–भीष्म साहनी और डॉ. नामवर सिंह द्वारा संपादित। लेकिन ये दोनों खंड साधारण समीक्षाओं से भरे हैं, इस वर्ष नाट्यकर्मी देवेंद्र राज अंकुर की दो पुस्तकें आईं–'सातवां रंग' और 'दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज'। मुझे लगता है नेमिचंद्र जैन के बाद अंकुर में नाटक की दुनिया में प्रवेश करने का और उस दुनिया से हासिल प्राप्त करने का हौसला है। यह एक अच्छी शुरुआत है। जयदेव तनेजा की पुस्तक भी ध्यान आकृष्ट करती है।

क्या आप जानते हैं रचनाकार बहुत कुछ नहीं पढ़ता, जबकि आलोचक के लिए सब कुछ पढ़ना अनिवार्य होता है।

आलोचना की अन्य जो पुस्तकें हैं, वे हैं–नलिन विलोचन शर्मा संकलित निबंध-संकलन-गोपेश्वर सिंह विष्णु चंद्र शर्मा का 'रामविलाश शर्मा का लोकपक्ष' और प्रमीला के.पी. का–'स्त्री : यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता'।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न–

4. विजेन्द्र अच्छे .... हैं लेकिन हिंदी समाज ने ठीक से उनकी कविता का मूल्यांकन नहीं किया।
   (क) उपन्यासकार (ख) नाटककार (ग) कवि (घ) साहित्यकार
5. कौन दशकों से कविता की दुनिया में रमे हुए हैं?
   (क) नामवर सिंह (ख) लीलाधर मंडलोई (ग) भीष्म साहनी (घ) राजेश जोशी
6. रचनाकार बहुत कुछ नहीं पढ़ता है, जबकि .... के लिए सब कुछ पढ़ना अनिवार्य है।
   (क) इतिहासकार (ख) आलोचक
   (ग) नाटककार (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

16.5 नाटक, फिल्म, व्यंग्य

पिछले वर्ष विष्णु नागर का व्यंग्य संग्रह–'भारत एक बाजार है' आया। ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्य-बाण चलाए–'अलग' संग्रह में। हृषीकेश सुलभ के नए-पुराने नाटक संग्रह 'अमली' और 'धरती आवा' प्रकाशित हुए, विनोद कुमार के 'दस रंगनाटक' और पंद्रह व्यंग्य नाटक भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए। इस वर्ष फिल्म पर कई अच्छी किताबें आईं। राजकपूर की फिल्मों के सिनेमोटोग्राफर राधू करमाकर की जीवनी 'कैमरे की तीसरी आँख, टेलीविजन और क्राइम रिपोर्टिंग–वर्तिका नंदा, राजकपूर –सृजन प्रक्रिया–जयप्रकाश चौकसे और जगदीश नारायण चौबे का व्यंग्य संग्रह 'स्कूल खोला जाए' भी आए।

16.6 स्त्री-दलित विमर्श

स्त्री-दलित विमर्श अब साहित्य के एजेंडे पर ही नहीं, संसद और बुद्धिजीवियों के मन-प्राण में भी है, इस वर्ष कंवल भारती की पुस्तक-दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, आधुनिक भारत में पिछड़ा वर्ग–संजीव खुदशाह, धर्म के आरपार–सं. नीलम कुलश्रेष्ठ साहित्य के दलित सरोकार–कृष्ण दत्त पालीवाल, नागपाश में स्त्री (गीताश्री), जनसंख्या समस्या के स्त्री-पाठ के रास्ते–रवींद्र कुमार पाठक, पत्तों में कैद औरतें–शरद सिंह और दलित मुक्ति संघर्ष और कथा साहित्य–इकरार अहमद–आए। और उर्दू कविता में नारीवाद–नगमा जावेद मलिक और जाहिदा हिना की पुस्तक–'पाकिस्तानी स्त्री : यातना और संघर्ष' का भी उल्लेख जरूरी है।

16.7 आत्मकथा, जीवनी, डायरी, पत्र, साक्षात्कार और यात्रा वृत्तांत

हिंदी के पाठकों की सबसे ज्यादा रुचि इन्हीं विधाओं में होती है, पिछले वर्ष प्रसिद्ध पत्रकार प्रभाष जोशी पर केन्द्रित दो पुस्तकें–'प्रभाष जोशी : याद, संवाद, विवाद और प्रतिवाद' आलोक तोमर और कृपाशंकर के संपादन में और 'हद से अनहद गए' : प्रभाष जोशी : स्मृति संचयन (संपादन-रेखा अवस्थी, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, स्मित पराग) निकली। अखिलेश ने मकबूल फिदा हुसैन की जीवनी प्रस्तुत की। इसी वर्ष निर्मल वर्मा की दो पुस्तकें निकलीं–देहरी पर पत्र और चिट्ठियों के दिन। पिछला वर्ष आत्मकथाओं और संस्मरणों का भी रहा। बल्कि यात्रा-संस्मरणों का भी। अजित कुमार की पुस्तक 'अंधेरे में जुगनू' और ममता कालिया की पुस्तक 'कितने शहरों में कितनी बार'–संस्मरणात्मक हैं और आत्मीय संस्पर्शों के साथ लिखी गई हैं। श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन कंधे पर', महेश दर्पण का यात्रा-वृत्तांत 'पूश्किन के देश में', 'लगता नहीं है दिल मेरा' (आत्मकथा–कृष्णा अग्निहोत्री) इस वर्ष प्रकाशित उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा, जिसे किसी आलोचक ने लोकार्पण के अवसर पर आत्मकथात्मक उपन्यास कहा था, इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि तुलसीराम ने इस आत्मकथा को अपने जीवन-संघर्ष के बीच डूबकर लिखा है, बिना किसी दुराव-छिपाव के। सत्यनारायण की डायरी 'तारीख की खंजड़ी' में लेखक के अनुभव के बीच हमारा समय सरगम की तरह बजता है। नवीन पंत की पुस्तक 'दिल्ली ओ दिल्ली' में बेशक दिल्ली है लेकिन महेश्वर दयाल की पुस्तक 'दिल्ली जो एक शहर है' से आगे नहीं। शेखर जोशी की संस्मरणात्मक पुस्तक 'स्मृति में रहें वे' सचमुच पठनीय है। महाश्वेता देवी की पुस्तक 'एक ही जीवन में' (आत्मकथा) भी पाठकों को आकर्षित करेगी। कुँवर नारायण की भेंट वार्ताएँ–'तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं' भी उल्लेखनीय है। पेंगुइन द्वारा प्रकाशित 'नौटंकी की मलिका : गुलाबबाई' बेहद दिलचस्प पुस्तक है, लीला सेठ की आत्मकथा–'घर और अदालत' जो इस वर्ष पेंगुइन से ही प्रदीप तिवारी द्वारा अनूदित एवं प्रकाशित हुई है, विशेष रूप से उल्लेखनीय है, इसलिए भी कि इस पुस्तक में उन्होंने अपने जीवन के रोम-रोम को पूरी ईमानदारी के साथ उद्घाटित किया है। मूल पुस्तक अंग्रेजी में 'ऑन बैलेंस' नाम से पेंगुइन से ही 2003 में छपी थी। राजेंद्र यादव की साक्षात्कार की नई पुस्तक 'यातना, संघर्ष और मुक्ति', अजय नावरिया द्वारा संपादित, इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि राजेंद्र जी के लंबे लेखकीय अनुभव का ताप ही इसमें नहीं है, कुछ नई विचारोत्तेजक बातें भी हैं।

अभी पेंगुइन से ही अंग्रेजी में प्रकाशित ए. रेवती की आत्मकथा 'द ट्रूथ अबाउट मी' अच्छी है। हिजड़ों (किन्नर)

के जीवन पर खुशवंत सिंह ने अपनी पुस्तक दिल्ली में कुछ लिखा है, लेकिन यह पुस्तक उससे बहुत आगे ट्रांसजेंडर की जिंदगी के दुखद पृष्ठों को खोलती है।

16.8 ग्रंथावली/रचनावली/संचयन

पिछले वर्ष की एक बड़ी उपलब्धि सात खंडों में हरिऔद्य ग्रंथावली (प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली) का तरुण कुमार द्वारा संपादन है, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के इस वर्ष भारतेंदु रचना संचयन (चयन एवं संपादन–गिरीश रस्तोगी), गुलेरी रचना संचयन (संपादन–पीयूष गुलेरी/प्रत्यूष गुलेरी) और डॉ. कमल किशोर गोयनका के संपादन में प्रेमचंद कहानी रचनावली का छह खंडों में प्रकाशन। 'मानसरोवर' के आठ खंडों में प्रेमचंद की कुल 203 कहानियाँ संकलित हैं। आरंभिक दो खंडों का संपादन खुद प्रेमचंद ने किया था और शेष खंडों को उनके मृत्योपरांत श्रीपत राय ने। गोयनका द्वारा संपादित इस खंड में प्रेमचंद की 298 उपलब्ध कहानियाँ संग्रहित हैं, भारतीय ज्ञानपीठ ने पिछले वर्ष अज्ञेय रचना संचयन (संपादक–डॉ. कन्हैयालाल नंदन और मोहन राकेश संचयन संपादक–रवींद्र कालिया) निकालकर बड़ा काम किया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ–

7. हृषीकेश सुलभ के नए-पुराने नाटक संग्रह अमली और धरती आवा प्रकाशित हुए।
8. शेखर जोशी की संस्मरणात्मक पुस्तक 'स्मृति में रहें वे' सचमुच पठनीय है।
9. मानसरोवर के आठ खंडों में प्रेमचंद की कुल 260 कहानियाँ संकलित हैं।

16.9 सारांश (Summary)

- भाषा और शिल्प के स्तर पर कभी कविता साहित्य के केंद्र में आ जाती है तो कभी कथा साहित्य।
- एक अच्छा साहित्यकार अपने समय के देश-काल में यथार्थ का अन्वेषण करता है।
- अपने नए उपन्यास, जो एक दृश्य-काव्याख्यान है, में सुरेंद्र वर्मा ने महाकवि कालिदास के जीवन-संघर्ष को केंद्र में रखा है और पाँच खंडों में विभक्त इस उपन्यास को नई शिल्प प्रविधि में 95 दृश्योच्छ्वासों में लिखा है।
- वस्तुत: कविता हमें संवेदित करती है लेकिन एक अच्छी कहानी हमें उद्वेलित करती है।
- कविता हमारे जीवन-समाज की सबसे सघन-संक्षिप्त अनुभूति होती है जिसे पढ़कर हम न केवल उदीप्त होते हैं, बल्कि वह हमारी चेतना को झकझोरती है।
- डॉ. नामवर सिंह की एक साथ चार पुस्तकें–हिंदी का गद्य पर्व, प्रेमचंद और भारतीय समाज, कविता की जमीन और जमीन की कविता और जमाने से दो-दो हाथ यत्नपूर्वक प्रस्तुत किया।
- इस वर्ष आधुनिक हिंदी उपन्यास के दो खंड निकले–भीष्म साहनी और डॉ. नामवर सिंह द्वारा संपादित। लेकिन ये दोनों खंड साधारण समीक्षाओं से भरे हैं, इस वर्ष नाट्यकर्मी देवेंद्र राज अंकुर की दो पुस्तकें आईं–'सातवां रंग' और 'दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज'।

16.10 शब्दकोश (Keywords)

1. **मरणोपरांत**–मृत्यु के बाद
2. **आलोचना**–गद्य के विभिन्न पक्षों की आलोचनात्मक समीक्षा
3. **अतिक्रमण**–कब्जा करना, स्थान घेरना

16.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आधुनिक काल के गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के बारे में विस्तार से समझाइए।
2. आधुनिक काल में उपन्यास, कहानी और आलोचना से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिए।
3. आत्मकथा, जीवनी, डायरी, पत्र, साक्षात्कार और यात्रा वृत्तांत पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. कथा साहित्य	2. हिंदी	3. अनुवाद	4. (ग)
5. (ख)	6. (ख)	7. सत्य	8. सत्य
9. असत्य			

16.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास–*कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।*
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास–*त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।*
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास–*धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।*
4. हिंदी साहित्य का इतिहास–*शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।*